

अध्यात्मसहस्री प्रवचन द्वितीय भाग

सहजानंद शास्त्रमाला

# अध्यात्मसहस्री प्रवचन

## द्वितीय भाग

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी “सहजानन्द” महाराज

प्रकाशक

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास गांधीनगर, इन्दौर

Online Version : 001

## प्रकाशकीय

प्रस्तुत पुस्तक 'अध्यात्मसहस्री प्रवचन द्वितीय भाग' अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री मनोहरजी वर्णी की सरल शब्दों व व्यवहारिक शैली में रचित पुस्तक है एवं सामान्य श्रोता/पाठक को शीघ्र ग्राह्य हो जाती है। श्री सहजानन्द शास्त्रमाला सदर मेरठ द्वारा पूज्य वर्णीजी के साहित्य प्रकाशन का गुरुतर कार्य किया गया है। ये ग्रन्थ भविष्य में सदैव उपलब्ध रहें व नई पीढ़ी आधुनिकतम तकनीक (कम्प्यूटर आदि) के माध्यम से इसे पढ़ व समझ सके इस हेतु उक्त ग्रन्थ सहित पूज्य वर्णीजी के अन्य ग्रन्थों को <http://www.sahjanandvarnishashtra.org/> वेबसाइट पर रखा गया है। यदि कोई महानुभाव इस ग्रन्थ को पुनः प्रकाशित कराना चाहता है, तो वह यह कम्प्यूटर कॉपी प्राप्त करने हेतु संपर्क करे। इसी ग्रन्थ की PDF फाइल <http://is.gd/varniji> पर प्राप्त की जा सकती है।

इस कार्य को सम्पादित करने में श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास गांधीनगर इन्दौर का पूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ है। ग्रन्थ के टंकण कार्य में श्रीमती प्रीति जैन, इंदौर एवं प्रूफिंग करने हेतु श्री शांतिलालजी बड़जात्या, इन्दौर का सहयोग रहा है — हम इनके आभारी हैं।

सुधीजन इसे पढ़कर इसमें यदि कोई अशुद्धि रह गई हो तो हमें सूचित करे ताकि अगले संस्करण (वर्जन) में त्रुटि का परिमार्जन किया जा सके।

**विनीत**

विकास छाबड़ा

53, मल्हारगंज मेनरोड़

इन्दौर (म०प्र०)

Phone-0731-2410880, 9753414796

[Email-vikasnd@gmail.com](mailto:Email-vikasnd@gmail.com)

[www.jainkosh.org](http://www.jainkosh.org)

शान्तमूर्तिन्यायतीर्थ पूज्य श्री मनोहरजी वर्णी“सहजानन्द” महाराज द्वारा रचित

## आत्मकीर्तन#

हूँ स्वतंत्र निश्चल निष्काम। ज्ञाता दृष्टा आत्मराम॥टेक॥

मैं वह हूँ जो हैं भगवान, जो मैं हूँ वह हैं भगवान।  
अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यह राग वितान॥

मम स्वरूप है सिद्ध समान, अमित शक्ति सुख ज्ञान निधान।  
किन्तु आशावश खोया ज्ञान, बना भिखारी निपट अजान॥

सुख दुःख दाता कोई न आन, मोह राग रूप दुःख की खान।  
निज को निज पर को पर जान, फिर दुःख का नहीं लेश निदान॥

जिन शिव ईश्वर ब्रह्मा राम, विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम।  
राग त्यागि पहुँचू निजधाम, आकुलता का फिर क्या काम॥

होता स्वयं जगत परिणाम, मैं जग का करता क्या काम।  
दूर हटो परकृत परिणाम, 'सहजानन्द' रहूँ अभिराम॥  
अहिंसा परमोधर्म

## आत्म रमण

में दर्शनज्ञानस्वरूपी हूँ, मैं सहजानन्दस्वरूपी हूँ॥टेक॥

हूँ ज्ञानमात्र परभावशून्य, हूँ सहज ज्ञानघन स्वयं पूर्ण।  
हूँ सत्य सहज आनन्दधाम, मैं दर्शन० ,मैं सहजानंद०॥१॥

हूँ खुद का ही कर्ता भोक्ता, पर मैं मेरा कुछ काम नहीं।  
पर का न प्रवेश न कार्य यहाँ, मैं दर्शन० ,मैं सहजा०॥२॥

आऊं उतरूं रम लूं निज में, निज की निज में दुविधा ही क्या।  
निज अनुभव रस से सहज तृप्त, मैं दर्शन० ,मैं सहजा०॥३॥

## Table of Contents

प्रकाशकीय .....	- 2 -
आत्मकीर्तन.....	- 3 -
आत्म रमण .....	- 4 -
अध्यात्मसहस्री प्रवचन द्वितीय भाग .....	1

## अध्यात्मसहस्री प्रवचन द्वितीय भाग

**गुणमुखेन वस्तु का परिचय-** इस ग्रन्थ के पहिले परिच्छेद में आनन्द पाने का उपाय बताते हुए यह बात स्थापित की थी कि आनन्द का उपाय पाने के लिए आनन्द का और आत्मा का स्वरूप जानना आवश्यक है। जब आत्मा का स्वरूप जानना आवश्यक है, जब आत्मा का स्वरूप जानने का प्रसंग चला तो वहाँ सामान्य रूप से पदार्थ का संक्षिप्त स्वरूप बताया गया। पदार्थ में साधारण और असाधारण गुण कहे गए। तो अब उन ही असाधारण गुणों के सम्बंध में इस परिच्छेद में वर्णन किया जा रहा है। गुण कहते किसे हैं? पहिले तो यह समझना चाहिए। गुण कहते हैं उसे जो वस्तु में शाश्वत तन्मय हो और वस्तु का तिर्यक् अंश हो अर्थात् सदैव रहने वाला पदार्थ का परिकल्पित अंश। जैसे जीव कहा तो यह तो द्रव्य हुआ। अब इस जीव को तन्मय समझने वाले अंशों का जो वर्णन होगा कि जिसमें जानने देखने की शक्ति है, आनन्द की शक्ति है, विश्वास की शक्ति है वह जीव है। तो यों जीव में शक्ति भेद करना और उन शक्तियों के द्वारा जीव को निरखना, यह कहलाया गुण के द्वारा पदार्थ की पहिचान। यहाँ मुख्य प्रसंग यह चल रहा है कि पदार्थ का परिचय करना चाहिए। आत्मा की पहिचान होना चाहिए। तो परिचय का उपाय यही है कि आत्मा की शक्तियों का परिचय किया जाय। तो उन्हीं शक्तियों का नाम गुण है। ये सब गुण जीव में शाश्वत तन्मय हैं, जो जीव के बताये गए हैं। इन गुणों के परिणमन होते है जिनकी बात आगे कही जायगी। इस समय इस आत्मा को इस तरह निरखिये कि आत्मा एक अवक्तव्य पदार्थ है और उसका जब हम परिचय करने के लिए चलेंगे तो भेद करके ही परिचय पा सकेंगे। तो उस अभेद अखण्ड आत्मा का परिचय इस तरह दिया जाता है कि आत्मा में ज्ञान है, दर्शन है, चारित्र है, आनन्द है, श्रद्धान है। यह गुणमुखेन परिचय हुआ। उस ही परिचय के लिए नास्तित्व आदिक भी बताये जाते है।

**नास्तित्व आदि प्रतियोगी धर्मों के सम्बंध में विचार-** नास्तित्व आदि के सम्बंध में यह जिज्ञासा हो सकती है कि गुणों का परिचय यह बताया है कि जो पदार्थ में शाश्वत तन्मय हो, और जिसके अविभाग प्रतिच्छेद हो अर्थात् परिणमन हो वह गुण रहता है, तो क्या इसी प्रकार नास्तित्वादिक धर्मों में भी ये दो लक्षण है कि वे पदार्थ में तन्मय हो और उनका अविभाग प्रतिच्छेद हो? ऐसी जिज्ञासा होना प्राकृतिक है, जब कि यह सीमा कर दी गई कि गुण कहते ही उसे हैं कि जो पदार्थ में शाश्वत तन्मय हो और अविभाग प्रतिच्छेद वाला हो। अविभाग प्रतिच्छेद का मतलब है परिणमन। जिससे यह ज्ञात होता है कि यह इसका शुद्ध परिणमन है, उत्कृष्ट परिणमन है, अशुद्ध परिणमन है। यह अविभाग प्रतिच्छेदों से ही जाना जाता है। जैसे

ज्ञान गुण के अविभाग प्रतिच्छेद जिनके कम विकसित है उनके कम ज्ञान है, जिनके पूर्ण विकसित हैं उनके सम्पूर्ण ज्ञान है। इन अविभाग प्रतिच्छेदों से ही इन दृश्यमान पदार्थों में यह समझा जाता है कि यह हल्का नीला है, यह गहरा नीला है। तो जैसे नीला रंग रूप गुण की पर्याय है और उसमें भी यदि उस गुण के अविभाग प्रतिच्छेद कम विकसित हैं तो उसे कहेंगे कि यह हल्का नीला, हल्का पीला आदिक है। विशेष विकसित है तो कहेंगे कि इसका अविभाग प्रतिच्छेद अधिक है और पूर्ण विकसित है, उत्कृष्ट गहरा रंग है तो ऐसे ही प्रत्येक पदार्थों में जो भी गुण होते हैं उनका अविभाग प्रतिच्छेद होता है। इस न्याय से क्या नास्तित्व आदिक गुणों में भी अविभाग प्रतिच्छेद होता है और क्या वह पदार्थ में शाश्वत तन्मय रहा करता है? ऐसी जिज्ञासा होने पर उसका उत्तर यों होगा कि नास्तित्व आदिक जो गुण हैं ये प्रतियोगी गुण हैं। प्रतियोगी गुण वस्तुतः गुण नहीं कहलाते किन्तु धर्म कहलाते हैं।

**धर्म और गुण में व्यापक-व्याप्य रूपता का मर्म-** धर्म सभी गुण नहीं होते पर गुण धर्म होते हैं। धर्म व्यापक चीज है और गुण व्याप्य चीज है। जो धर्म गुण स्वरूप होते हैं उनका तो अविभाग प्रतिच्छेद है और वह पदार्थ में तन्मय रूप से है, किन्तु जो प्रतियोगी धर्म है, प्रतिजीवी गुण है याने अभावस्वरूप धर्म है उनके अविभाग प्रतिच्छेद नहीं होते, क्योंकि वे तो अभाव रूप धर्म है और वह अभाव जिस गुण के सद्भाव रूप है उसकी तन्मयता है पदार्थ से और उसके सम्बंध से अभाव के नास्तित्व की तन्मयता कही जा सकती है। जैसे घट में पट आदिक का नास्तित्व है तो यह नास्तित्व घट के स्वरूप के अस्तित्वरूप है। सो जैसे अस्तित्व की घट में तन्मयता है इसी प्रकार पर के नास्तित्व की भी तन्मयता है। पर अस्तित्व पृथक् हो, नास्तित्व पृथक् हो और फिर ये दोनों तन्मय हो यों नहीं कहा जा सकता। तो नास्तित्व आदिक धर्म ये धर्म कहलाते हैं, गुण नहीं कहलाते। और नास्तित्व आदिक धर्म ये किसी के सद्भाव रूप होते हैं। इस कारण नास्तित्व की तन्मयता पदार्थ में है तो सही, पर वह किसी अस्तित्वरूप होकर तन्मय है। हाँ, नास्तित्व की हानि वृद्धियां नहीं होती है। जैसे घट में पररूप का नास्तित्व है तो क्या यों कहा जायगा कि इस नास्तित्व की डिग्रियाँ इस घट में कम है और इसमें ज्यादा? प्रत्येक पदार्थ पररूप की अपेक्षा से पूर्णतया नास्ति होता है। तो यों धर्म और गुण में अन्तर जानना चाहिए।

**गुणों के कार्य का वर्णन-** गुण के सम्बंध में इतना जानने के बाद अब यह समझिये कि गुण का कोई कार्य होता है या नहीं? गुणों की अवस्था व्यक्ति प्रगटरूपता होती है। गुण वस्तु के अंश हैं, इस अपेक्षा से वे सत् हैं और सत् की परिणति प्रति समय कुछ न कुछ होती ही है। तो जब एक अखण्ड द्रव्य को अखण्ड रूप से निरखते हुए परिणति देखते हैं तो परिणति भी अखण्ड विदित होती है। और जब उस वस्तु के अंश को निरखते हैं तो परिणति भी अंशरूप दिखेगी। जैसे जीव में ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदिक शक्तियों को देखा तो अब यों भी दिखेगा कि ज्ञानशक्ति के परिणमन तो ज्ञान हैं मति श्रुत आदिक और दर्शन शक्ति के परिणमन हैं चक्षु दर्शन आदिक। आनन्द शक्ति के परिणमन हैं सुख दुःख आनन्द, तो गुण वस्तु के अंश हैं इस अपेक्षा से वे भी सत् हैं। एक अखण्ड सत् के अंश हैं। तो परिणति उनकी भी प्रति समय कुछ न कुछ होती है। बस

परिणति कहो, कार्य कहो एक ही बात है। पदार्थ का जो परिणमन सो अन्य का कार्य। यों ही गुणों का जो परिणमन सो गुणों का कार्य है। वस्तुतः परिणमन के सिवाय और कुछ कार्य होता ही नहीं है, पर किसी निमित्त से किसी पदार्थ में कुछ परिणमन हुआ तो उन दोनों का नाम लेकर उपचार से कार्य कहते हैं, पर वस्तुतः प्रत्येक द्रव्य का अपना परिणमन ही उसका कार्य कहलाता है। जैसे एक कारीगर ने ईंटें जमाकर भीत बनाया तो कहा यों जाता है कि कारीगर ने भीत का निर्माण किया, किन्तु वास्तविक बात यह है कि कारीगर मायने कारीगर का यदि आत्मा कहेंगे तो इस कारीगर ने अपने आपमें विकल्प भाव परिणाम बनाया और कारीगर मायने यदि शरीर लगे तो उसने अपने हाथ पैर चलाया। ईंटों में कुछ भी नहीं किया, किन्तु उस विकल्प का निमित्त पाकर उसके हाथ पैर आदिक की क्रिया का संयोग का निमित्त पाकर उन ईंटों में परिणमन हुआ और वे भीत रूप बन गए। यह उपचार से कहा जाता है कि कारीगर ने भीत बनाया। वस्तुतः ईंट ने ईंट का अपना परिणमन रूप कार्य किया। कारीगर ने अपने में अपने भावरूप परिणमन का कार्य किया। तो परिणमन होने का नाम कार्य है। तो गुणों का भी प्रति समय परिणमन होता है, इस दृष्टि से गुणों के परिणमन को गुणों का कार्य कहते हैं।

**जीव के दर्शन गुण का कार्य-** संक्षेप में गुण और परिणमन की बात जानकर अब यह समझिये विशेष रूप से कि जीव में जो दर्शन, ज्ञान, श्रद्धा, चारित्र, आनन्द आदिक गुण बताये गए हैं उनका कार्य क्या है? देखिये कार्य जानने के लिए स्वरूप भी समझना होगा। जो गुण जिस स्वरूप वाला है उस स्वरूप के अनुसार उस गुण की परिणति होती है। तो स्वरूप समझिये- दर्शन का स्वरूप है सामान्य प्रतिभास। इसमें किसी भी पदार्थ का विकल्प नहीं है, इसमें किसी भी पदार्थ का जानन भी नहीं है। तब यह दर्शन आत्मा का सन्मुख प्रतिभास है। स्वयं की ओर उन्मुख होकर जो प्रतिभास होता है, जिसमें किसी भी प्रकार का जानन विकल्प नहीं है ऐसे प्रतिभास को दर्शन कहते हैं। जैसे शीघ्र समझने के लिए यों कल्पना करो कि कोई पुरुष अभी पुस्तक को जान रहा था, अब पुस्तक का जानना छोड़कर चौकी को जानने के लिए तैयार हुआ तो उस प्रसंग में ऐसी स्थिति बनती है कि पुस्तक के जानने का कार्य तो छोड़ दिया याने उपयोग तो छोड़ दिया और अभी चौकी को जानने का उपयोग नहीं बना सका, ऐसी बीच की स्थिति में जो एक प्रतिभास मात्र स्थिति रहती है, जिसमें न चौकी आयी, न पुस्तक आयी, ऐसे सामान्य प्रतिभास को दर्शन कहते हैं। यहाँ यह बात विशेषतया समझियेगा कि ज्ञान गुण जीव में शाश्वत है तो ज्ञान गुण का परिणमन भी निरन्तर है। तो इस नीति से ज्ञान गुण का परिणमन तो रहेगा प्रति समय, पर छद्मस्थ जीवों के उपयोग क्रमशः होते हैं। जब ज्ञान में उपयोग है तब दर्शन में नहीं है, जब दर्शन में उपयोग है तब ज्ञान में नहीं है। तो उपयोग की दृष्टि के यह क्रम है, परन्तु परिणमन की दृष्टि से यह क्रम नहीं है कि पहिले दर्शन का परिणमन हो, फिर ज्ञान गुण का परिणमन हो। तो उपयोग की अपेक्षा से ही यहाँ दर्शन का स्वरूप बताया जा रहा है। कोई मनुष्य पुस्तक को जान रहा था। अब पुस्तक का जानना छोड़कर चौकी को जानने चला तो पुस्तक को जानने का विकल्प तो छूटा। चौकी का जानन उपयोग नहीं हुआ। इस बीच में जो सामान्य प्रतिभास होता है उसका नाम दर्शन है।



दर्शन परिणमन होने पर भी दर्शन विषय का मोहियों के उपयोग में अग्रहण- दर्शन का विषय ग्रहण में यह जीव नहीं लेता। न ले ग्रहण में, किन्तु दर्शन का परिणमन और दर्शन का उपयोग सभी जीवों के हो रहा है। उस हो रहे दर्शन के योग में दर्शन को यदि यह जीव ग्रहण कर ले, समझ ले तो इसको सम्यग्ज्ञान सम्यक्त्व हो जायगा, पर दर्शन का परिणमन, दर्शन का उपयोग होता ही रहता है, लेकिन उसे आत्मरूप से या अनुभवन के रूप से ग्रहण नहीं कर पाता। दर्शन की इस व्याख्या में आप जान गए होंगे कि यह ऐसा सामान्य प्रतिभास है जिसे न सम्यक् कहा जा सकता, न मिथ्या कहा जा सकता। और तब यह सिद्ध होता है कि दर्शन गुण सब जीवों में है तो उसका परिणमन भी सब जीवों में है, और यहाँ तो यह भी बताया गया कि दर्शन और ज्ञान का उपयोग भी सब जीवों में है, चाहे वह बहिरात्मा क्यों न हो, पर हाँ इतनी विशेष बात है कि जो दर्शन के इस विषय को याने दर्शन में जो ग्रहण किया गया उस तत्त्व को, जो आत्म रूप से श्रद्धा करता है वह अन्तरात्मा है, और दर्शन होकर भी दर्शन के विषय को अपने लक्ष्य में जो नहीं ले सकता है वह बहिरात्मा है। और यही आत्मा का अंतःवैभव जब परखा जाता है तब विषाद की बात यहीं उपस्थित होती है कि सर्व रत्न होकर भी, वैभव ऋद्धि समृद्धि होकर भी यह जीव उसे नहीं जान पा रहा और पदार्थों से आनन्द की अभिलाषा करके भिखारी बन रहा है। जैसे कोई पुरुष जिसके घर में धन गड़ा हुआ है, लेकिन उसे इसका पता नहीं है तो घर में विशेष धन होने पर भी वह तो दरिद्र है, भिखारी है। अनुभव तो दरिद्रता का करता है। हाँ है उसके घर में धन। कभी बुद्धि जगे, कोई प्रसंग बने तो खोदने से वहाँ धन प्राप्त हो जायगा। यों ही जानों कि इस जीव में यह दर्शन गुण दर्शन सामान्य प्रतिभास है, जिसमें आकुलता नहीं, विकल्प नहीं, क्षोभ नहीं। ऐसे विशुद्ध स्वरूप का ज्ञान नहीं है जीव को। अतएव यह अपने को दरिद्र बनाये हुए है। बाह्य पदार्थ इसके समागम में रहें कैसे? वे तो बाह्य ही है। कदाचित् पुण्य के उदय में कुछ बाह्य पदार्थ समागम में भी आ गए तो उनका विश्वास ही क्या है कि ये पदार्थ सदा साथ रहेंगे। कुछ दिन साथ भी रहें तो उन दिनों में भी इन बाह्य समागमों ने शान्ति से, चैन से न रहने दिया। वहाँ भी विविध आकुलतायें इसके होती रही। तो यह जीव अपने आपमें दर्शन सामान्य प्रतिभास जैसे विशुद्ध भवन हो रहे हैं, फिर भी परिज्ञान न होने से यह आशा करके भिखारी बन रहा है। तो दर्शनगुण इस जीव में है जिसका स्वरूप और कार्य सामान्य प्रतिभास है। यद्यपि सिद्धान्त में दर्शन के चार भेद किए गए हैं- चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन। पर यह नाम उपचार से निमित्त सम्बंध से किया गया है। चक्षुइन्द्रियजन्य ज्ञान से पहिले जो दर्शन होता है उसे चक्षुदर्शन कहते हैं। उस दर्शन में चक्षु का दर्शन नहीं है। आँखों से देखने का नाम चक्षुदर्शन नहीं है। वह तो चाक्षुष ज्ञान है। उस चाक्षुष ज्ञान से पहिले जो सामान्य प्रतिभास हो या कहो- जिस दर्शन के बाद चाक्षुष ज्ञान होता है, उपचार से उसे हम चक्षुदर्शन कहते हैं। तो दर्शन में स्वतः सही रूप से कोई भेद नहीं है। यह उपचार से भेद किया गया है। इसी प्रकार अचक्षुदर्शन को भी समझिये। चक्षुइन्द्रिय को छोड़कर बाकी इन्द्रिय और मन से जो ज्ञान किया जाता है उस ज्ञान से पहिले होने वाले दर्शन को अचक्षुदर्शन कहते हैं। यहाँ पर भी किसी स्पर्शन आदिक इन्द्रिय का कार्य नहीं है दर्शन। वह तो निर्विकल्प

है, सामान्य प्रतिभासरूप है। वह यत्न जिस ज्ञान के लिए होता है उस ज्ञान की जो विशेषता है उस ही नाम से इस दर्शन को पुकारने लगते हैं।

**दर्शन में ज्ञान की होने वाली यत्नरूपता-** अब यहाँ दर्शन के सम्बंध में एक दूसरा तथ्य भी प्रकट होता है। दर्शन है ज्ञान के लिए होने वाला यत्न। एक ज्ञान को छोड़कर जब हम दूसरे पदार्थ का ज्ञान करने के लिए चलते हैं तो यह दर्शन नवीन ज्ञान की प्राप्ति का यत्न बनता है। और यद्यपि दर्शन और ज्ञान की पद्धति में अन्तर है और मुकाबले में उल्टी सी बात है कि ज्ञान तो होता है विकास और पर के उन्मुख रूप से अपने विस्तार को फैलाता हुआ, और दर्शन होता है स्व के उन्मुख केन्द्र में समाये जाने की पद्धति से, लेकिन यह दर्शन ज्ञान की निष्पत्ति का यत्न है। जैसे जब बालक लोग ऊँची कूद करते हैं तो तीन-चार फिट ऊपर डोरी बाँध देते हैं। कूदने वाले की यह पद्धति होती है कि जिस जगह से उठकर वह कूदेगा उस जगह पर नीचे वह गड़ने का यत्न करेगा और जितना नीचे की ओर गड़ाव होगा उतना उसका उठाव और कूदना बनेगा। तो वह नीचे का गड़ाव ऊँचे उठने का प्रयत्न है। ऐसे ही द्रव्यों का, परपदार्थों का, वस्तुओं का जानने का यह यत्न है- दर्शन। इससे एक शंका का भी समाधान बन जाता। कोई यह तर्क करे कि जिस वस्तु का जानना छूटा, जिसे कि हम चक्षु से जान रहे थे। उसके बाद हम स्पर्शनइन्द्रिय से चौकी को जानने चले तो दर्शन तो भीत में रहा। उस दर्शन को अचक्षुदर्शन कहते हैं। नवीन ज्ञान चूंकि अचक्षु से होगा इस कारण अचक्षुदर्शन है। तो यह प्रश्न होता है कि जिस ज्ञान को छोड़कर चले उसके नाम पर दर्शन का नाम क्यों नहीं रखा गया? तो उसका समाधान इसमें ही प्रविष्ट है कि दर्शन होता है नवीन ज्ञान को उत्पन्न करने का यत्न। इस कारण नवीन ज्ञान के नाम पर ही दर्शन का नाम होता है।

**जीव के ज्ञान गुण का कार्य-** वस्तु है और वह निरन्तर परिणमती रहती है, इतना मात्र मर्म है पदार्थ का। अब वस्तु है इसको जब भेद दृष्टि से देखते हैं तो अनेक शक्यात्मक प्रतीत होती है, क्योंकि परिणमन अनेक प्रकार से देखा जाता है। तो जब वस्तु निरन्तर परिणमती है तो इसका अर्थ है कि वस्तु में जितनी भी शक्तियाँ हैं उन सब शक्तियों का निरन्तर परिणमन होता है। तब यहाँ यह ज्ञातव्य है कि किस शक्ति का क्या कार्य है? कार्य कहो अथवा परिणमन कहो या होना कहो, सबका मतलब यहाँ एक है। कार्य शब्द तो लोकव्यवहार की दृष्टि से है। वस्तुतः करना किसी का नाम नहीं है, क्योंकि एक पदार्थ दूसरे पदार्थ में कुछ कर सकता नहीं है क्योंकि भिन्न-२ अस्तित्व है। प्रत्येक पदार्थ अपने ही प्रदेशों में कुछ परिणमन करेगा तो एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं करता। इस कारण दो द्रव्यों के प्रसंग में तो कार्य शब्द का कोई मतलब नहीं रहा। अब एक द्रव्य की होने की बात में देखिये- कोई द्रव्य है और वह प्रकृति से अपने सत्त्व के ही कारण निरन्तर परिणमता रहता है तो एक पदार्थ ने एक में कार्य किया। तो कार्य शब्द उपचार से माना गया है, फिर भी चूंकि जो शब्द लोकव्यवहार में प्रसिद्ध हो जाता है उसको अलग हटाया नहीं जा सकता, तब क्रिया ढूँढ़ना इसका अर्थ है परिणमन ढूँढ़ना। पदार्थ की शक्तियों के क्या परिणमन होते हैं यह इस प्रकरण में कहा जा रहा है। यहाँ दर्शन गुण का कार्य तो बताया गया था, अब ज्ञान गुण की जिज्ञासा हो रही है। ज्ञान

गुण का कार्य क्या है? जानन ज्ञान गुण का कार्य है। ज्ञानशक्ति का परिणमन जानन है। जानन अर्थात् ज्ञेय का प्रतिभास होना। जानन का क्या तात्पर्य है? सो शब्दों में कहा गया कि सबके अनुभव में है कि ज्ञान का कार्य इस प्रकार जानन होना है। ऐसा जानन जो कि जानन मात्र है वह है ज्ञानशक्ति का कार्य। कितना विशुद्ध कार्य यहाँ कह रहे हैं। चाहे कोई भी जीव हो। ज्ञान का कार्य क्या है? जब यह पूछा जायगा तो उत्तर होगा- यह सिर्फ जानन। उसके साथ जो रागद्वेष लगे हैं अथवा कोई विकल्प लगे हैं वे सब ज्ञान गुण के कार्य नहीं हैं। जैसे बिजली का कार्य क्या है? प्रकाश करना। अब लट्टू के सम्बंध से हरा, पीला आदिक प्रकाश हो रहा है, पर प्रकाश में जो विशुद्ध प्रकाश है याने हरा, पीला आदिक की अपेक्षा बिना बिजली की शक्ति के प्रभाव में जो कुछ भी कार्य है प्रकाश, वह प्रकाश सर्वत्र है, चाहे कैसे ही लट्टू का प्रकाश हो रहा हो। ऐसे ही ज्ञान में जो जानन है वह जानन भेदरहित है, जाननमात्र है। उसमें न विकार है, न शुभ अशुभपना है। इसी कारण ज्ञान न स्वरूप से सम्यक् है और न मिथ्या है। स्वरूप से जो जाननमात्र है। सम्यक् होना और मिथ्या होना यह तो नैमित्तिक प्रभाव है, सांसारिक असर है। जब मिथ्यात्व भाव रहता है तब तो ज्ञान मिथ्या कहलाता है और जब सम्यक्त्व भाव रहता है तब ज्ञान सम्यक् कहलाता है।

**ज्ञान के प्रकार-** ज्ञान के जो परिणमन है उन परिणमनों को अनेक दृष्टियों से अनेक भागों में बताया जा सकता है। फिर भी जो एक आचार्यसम्मत प्रसिद्ध दृष्टि है उसकी अपेक्षा से ज्ञान के प्रकार 5 होते हैं। ज्ञान शक्ति का जो विकास होता है वह विकास कहीं ज्ञानावरण के क्षयोपशम से हुआ और कहीं ज्ञानावरण के क्षय से होता है। तो क्षयोपशम में अविधता होती है, अतएव क्षयोपशम से उत्पन्न हुआ ज्ञान नाना जातियों में हो सकता है और ज्ञानावरण के क्षय से होने वाला ज्ञान केवल एक निज विशुद्ध स्वरूप ही होगा। तब ज्ञान के परिणमन 5 हैं- मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान। मति, श्रुत, अवधि मिथ्यात्व का सम्बंध पाकर कुमति, कुश्रुत और कुअवधि कहलाते हैं। तो आत्मा में मुख्य धर्म हुआ ज्ञान। ज्ञानशक्ति से आत्मा की पहिचान होती है अथवा निरख लीजिए कि आत्मा ज्ञानमात्र है। ज्ञान हो, चैतन्य हो तब ही वहाँ चारित्र, श्रद्धा अथवा अन्य साधारण असाधारण धर्मों की अवस्था सोची जा सकती है। उस ज्ञान शक्ति का कार्य है जानना। वह जानना निमित्त भेद से 8 प्रकार से होता है। सम्यग्दृष्टि के 5 ज्ञान और मिथ्यादृष्टि के कुमति, कुश्रुत, कुअवधि ये तीन ज्ञान होते हैं। ज्ञान के उत्पन्न होने की विविध पद्धतियाँ हैं। कहीं इन्द्रिय और मन के निमित्त से जान पाते हैं वह है मतिज्ञान। कहीं मन की प्रधानता आश्रय से समझ पाते हैं वह है श्रुतज्ञान। कहीं इन्द्रिय मन की सहायता बिना कुछ सीमा में नियमित रूपी पदार्थों को जान पाते हैं- वह भूत और भविष्य तथा क्षेत्रों की सीमा लिए हुए है। उसे कहते हैं अवधिज्ञान। और जो सीमा लिए हुए है दूसरे के मन में आये हुए विचार को पदार्थों को जान लेता है वह है मनःपर्ययज्ञान। जहाँ केवल सर्व ज्ञानावरण का विनाश हो जाता है, केवल आत्मविकास रह जाता है उस समय जो ज्ञान परिणति है उसे कहते हैं केवलज्ञान और मति, श्रुत, अवधि मिथ्यात्व के सम्बंध में कहलाते हैं कुमति, कुश्रुत, कुअवधिज्ञान। इन सब ज्ञानों में जो जाननपरिणति है वह है ज्ञान का कार्य।

**दर्शन और ज्ञान का अन्तर और अन्तर परिचायक स्वरूप-** यहाँ तक दर्शन और ज्ञान के कार्य बताये गए। इन दोनों के स्वरूप और कार्य को सुनकर यह जिज्ञासा होनी स्वाभाविक है कि दर्शन और ज्ञान के अन्तर क्या है? तो इसका अन्तर संक्षिप्त रूप से यों कहना चाहिए कि अन्तर्मुख चित्रकाश को दर्शन कहते हैं और बहिर्मुख चित्रकाश को ज्ञान कहते हैं। जो प्रतिभास स्व अंतःअभिमुख हो रहा है कि स्व के बारे में भी विकल्प नहीं उठाया जाता है, जहाँ कोई विकल्प नहीं उठता वहाँ आश्रय स्व ही होता है। पर इस स्व में भी उस तत्त्व का प्रतिभास हो रहा है। जहाँ ज्ञेयाकार रूप से स्व का विकल्प नहीं है ऐसे अन्तर्मुख चित्रकाश को दर्शन कहते हैं।

बहिर्मुख चित्रकाश जानने वाला यह आत्मा है और जान रहा है खुद में ही मिला करके। इतने पर भी यह जो खुद में जानन उपयोग हो रहा है यह बहिर्मुख पद्धति से हो रहा है। लो पर को जाना तब तो बहिर्मुख रूप से चित्रकाश होता ही है, किन्तु जब स्व को भी जाना तो जानन का नाता ऐसा है कि जहाँ बहिर्मुख पद्धति हो ही जाती है। तो यों अन्तर्मुख चित्रकाश का नाम दर्शन है और बहिर्मुख पद्धति का नाम ज्ञान है। यों दर्शन और ज्ञान का विषय सुनकर यह विचार उठना प्रासंगिक है- तो क्या एक अन्तर से हम ये समझें कि दर्शन का विषय तो आत्मा ही है और ज्ञान का विषय बाह्य पदार्थ ही है? ऐसा विचार उठना एक विवेक मार्ग से होता है, क्योंकि दर्शन में है अन्तर्मुखता और ज्ञान में है बहिर्मुखता। तो इस विधि से जब हम समन्वय करते हैं तो वहाँ यह बात विदित होती है कि एक अपेक्षा से तो ज्ञान का विषय आत्मा व बाह्य पदार्थ है, चाहे आत्मा को जाना अथवा बाह्य पदार्थ को जाना, जाना बहिर्मुखता की पद्धति से, क्योंकि जानने की प्रक्रिया ही ऐसी है कि वह अपेक्षाकृत बहिर्मुख पद्धति में रहती है। यद्यपि बहिर्मुख के अन्य भी अर्थ हो सकते हैं और ऐसा बहिर्मुख होना जो मिथ्यात्व में ही सम्भव है, उस बहिर्मुखता की बात नहीं कह रहे। निर्विकल्पता से हटकर ज्ञेयाकार ग्रहण रूप विकल्प होना यह है बहिर्मुखता। तो आत्मा भी बहिर्मुख पद्धति से जाना जाय अथवा बाह्य पदार्थ बहिर्मुख पद्धति से जाने जायें, वह सब ज्ञान कहलाता है।

**दर्शन का विषय आत्मा या आत्मा एवं बाह्य पदार्थ-दर्शन में चूंकि अन्तर्मुखता है, इस कारण उसका विषय आत्मा ही हो सकेगा।** दर्शन के सम्बन्ध में यद्यपि ऐसा भी कथन है कि पदार्थों में भेद न करके, पदार्थों का आकार ग्रहण न करके जो सामान्य ग्रहण होता है उसे दर्शन कहते हैं। तो पदार्थों का सामान्य ग्रहण दर्शन कहलाता है। ऐसे विवेचन में भी अर्थ यही आया कि आत्मा का जो अन्तर्मुख चित्रकाश है वह है दर्शन। देखिये जब किसी भी बाह्य पदार्थ का आकार कल्पना में न लिया और बाह्य पदार्थ में कोई भेद न किया तब इस दृष्टा की क्या पद्धति होती है कि उसके लक्ष्य में बाह्य पदार्थ नहीं रहते, क्योंकि आकार ग्रहण नहीं कर रहा। तो बाह्य पदार्थ जब इसके लक्ष्य में न रहा तो आत्मा तो ज्ञान दर्शन दोनों का वास्तविक आधार है, ज्ञान दर्शन शक्तियाँ तो आत्मा की अभेद शक्तियाँ हैं। तो बाह्य पदार्थ छूट गए उपयोग में, लेकिन यह स्व कहाँ जाये? यह तो है ही। तब जहाँ बाह्य पदार्थ का आकार ग्रहण न किया गया वहाँ विषय बना यह स्व आत्मा। तो एक दृष्टि से यह कहा जायेगा कि ज्ञान का विषय आत्मा व बाह्य पदार्थ दोनों होते हैं और दर्शन का

विषय आत्मा होता है। पर एक दृष्टि से निरखा जाता है कि बाह्य पदार्थों का सामान्य ग्रहण भी दर्शन बताया गया है। तो वहाँ यह विदित होगा कि ज्ञान का भी विषय आत्मा व बाह्य विषय दोनों पदार्थ हैं और दर्शन का भी बाह्य आत्मा और बाह्य दोनों पदार्थ हैं।

**ज्ञान और दर्शन के स्वरूप के परिचय में दो दृष्टियों का आलम्बन-** उक्त प्रकार से दो दृष्टियों से ज्ञान एवं दर्शन के बारे में दो बातें विदित होने पर अब यह जिज्ञासा होती है कि पहिली दृष्टि से क्या भाव निरखा जाता है? जिस दृष्टि में ज्ञान का विषय आत्मा व बाह्य पदार्थ है और दर्शन का विषय आत्मा है-वहाँ परखा क्या गया? क्या भाव उसका हुआ? भाव यह है कि भेद दृष्टि से प्रतिभास होने का नाम ज्ञान है और अभेद दृष्टि से प्रतिभास होने का नाम दर्शन है। सो इस नीति के अनुसरण में यह बात तो प्रकट ही है कि बाह्य का प्रतिभास तो भेद दृष्टि से ही होता है क्योंकि जानने वाला यह आत्मा है और जानने में जो आया ज्ञेय पदार्थ वह पर है। तो यह उपादान उन पर विषयों को अभेद रूप से कैसे ग्रहण करेगा? तो बाह्य पदार्थों का प्रतिभास तो भेददृष्टि से ही होता है। यही बात उस पहिली दृष्टि से कही गई। ज्ञान और दर्शन के स्वरूप की बात है। अब दर्शन की बात देखो तो अभेद दृष्टि में प्रतिभास होने का नाम दर्शन है। देखिये- आत्मा को जाना ज्ञान ने भी, लेकिन आत्मा में ज्ञान, दर्शन, श्रद्धा, चारित्र आदिक गुण ही आत्मा की पर्याय देखे गए तो वहाँ भी वह आत्मा का प्रतिभास भेद दृष्टि से हुआ। हाँ, गुणपर्यायों का भेद न करके, आत्मा में आत्मतत्त्व का भेद न करके क्रियाकारक आदिक भेदों का सम्बंध न करके जब केवल अभेद आत्मा का सामान्यतया प्रतिभास होता है तो वहाँ दर्शन है और उसका विषय आत्मा ही पड़ा। यह भाव हुआ इस सामान्य का कि ज्ञान का विषय आत्मा व बाह्य पदार्थ दोनों होते हैं और दर्शन का विषय आत्मा होता है। अब उस दृष्टि से परखिये- जिस दृष्टि में यह निरखा गया कि ज्ञान का भी विषय बाह्य व आत्मा दोनों हैं तथा दर्शन का भी विषय बाह्य व आत्मा दोनों हैं। उसमें ज्ञान तो स्व पर प्रकाशक है ही, यह अनेक ग्रन्थों में सहमत है, स्व और पर का व्यवसाय करने वाला ज्ञान होता है, यह पहिली दृष्टि में भी कह दिया गया और दर्शन स्व पर प्रकाशक है यह भी कह दिया। अब यहाँ देखिये कि दर्शन ने कैसे स्व का प्रतिभास किया? ज्ञान को जो प्रतिभास किया ऐसे प्रतिभास में रहने वाले आत्मा को दर्शन ने प्रतिभासा तो इसका अर्थ यह हुआ कि स्व और पर का प्रकाश करने वाले ज्ञान से तन्मय आत्मा को दर्शन ने प्रतिभासा, सो स्व और पर का प्रतिभास लिया। जैसे कोई मनुष्य बाहर अगल बगल पीछे दृष्टि फैलाकर निरखता है तो उसे पीछे की सब घटनायें जानने में आ रही है। कौन खड़ा है, किस तरह प्रवृत्ति कर रहा है? और वह मानो किसी दर्पण को लिए हुए ही बैठा हो, जरा भी गर्दन न झुकाता हो तो वहाँ केवल दर्पण को देख रहा है पर देखा क्या? पीछे खड़े हुए सब लड़के भी दिखे। तो यहाँ पद्धति से देखिये कि आँखों ने साक्षात् उन लड़कों को नहीं देखा किन्तु उन लड़कों का जिसमें प्रतिभास है ऐसे दर्पण को देखा तो इस देखने में दर्पण और वे समस्त लड़के सब प्रतिभास में आये। तो इस दर्पण को देखने वाले पुरुष का विषय क्या हुआ? दर्पण भी और वे बाह्य पदार्थ भी। तो यों ही जीव दर्शन शक्ति के द्वारा स्व का प्रतिभास करता है तो वह स्व कैसा है जैसे कि वह दर्पण कैसा था? गेंद आदिक की

फोटो से सहित। तो इसी प्रकार यह आत्मा कैसा है? ज्ञान द्वारा जो जो कुछ हमने जाना, जो यह ज्ञेयाकार हुआ उनसे तन्मय यह आत्मा है जिसे दर्शन ने प्रतिभासा। तो अब इस दृष्टि से यह समाधान मिलता है कि दर्शन ने प्रतिभास किया। स्व और पर दोनों का प्रतिभास किया, लेकिन ज्ञान के प्रतिभास की पद्धति न्यारी है। इस दिशा में यह कहना युक्त हो गया कि ज्ञान भी स्व और पर का प्रकाश करता है और दर्शन भी स्व और पर का प्रतिभास करता है। यों ज्ञान और दर्शन दोनों गुण जो आत्मा में प्रधान है उनका कार्य बताया गया।

**आत्मीय श्रद्धा शक्ति-** आत्मा में श्रद्धा शक्ति भी होती है, अर्थात् यह जीव किसी न किसी तत्त्व में हितरूप श्रद्धा बनाये रहता है। चाहे किसी जीव में यह श्रद्धा व्यक्तरूप से न विदित हो, फिर भी जहाँ वह रम रहा है वहाँ की उसे श्रद्धा है और उस श्रद्धा के बल पर ही उस तत्त्व में वह रम रहा है। तात्पर्य यह है कि प्रत्येक जीव में श्रद्धाशक्ति होती है, उस श्रद्धागुण का कार्य क्या है, सो सुनो। अपने आपके बारे में या अपनी पर्याय में कहीं रूचि प्रतीति होना यह श्रद्धा गुण का कार्य है, चाहे कोई मिथ्यादृष्टि भी जीव है उसे भी अपने बारे में श्रद्धा है। अपने को सुखी दुःखी जाति कुल वाला, अमुक नाम वाला या जिस किसी भी शरीर में रह रहा है उस पर्याय मात्र किसी भी प्रकार अपने आपकी श्रद्धा बनाये हुए है। सम्यग्दृष्टि जीव जिसे अपने आपमें जिसका कि सत्त्व है स्वयं में सत्त्व मात्र अपने आपकी श्रद्धा बनाये हुए है। जब तक अपनी किसी पर्याय में रूचि रहती है, हित का विश्वास रहता है तब तक तो समझिये कि वह श्रद्धा गुण का विपरीत परिणमन है और जब परभाव से हटकर अनादि अखण्ड अनन्त चैतन्यमय निज आत्मतत्त्व में रूचि अथवा प्रतीति व हित का विश्वास हो जाता है तब समझिये कि वह श्रद्धा गुण का स्वभाव परिणमन है। श्रद्धा गुण के स्वभाव परिणमन को सम्यग्दर्शन कहते हैं और श्रद्धा गुण के विपरीत परिणमन को मिथ्यादर्शन कहते हैं। ग्रन्थों में इसका नाम सम्यक्त्व गुण दिया है और उस सम्यक्त्व गुण के दो प्रकार के परिणमन हैं- एक सम्यक्त्व रूप परिणमन दूसरा मिथ्यात्व रूप परिणमन। जब सम्यक्त्व गुण अपने सही स्वाभाविक परिणमन में होता है तो उसे सम्यग्दर्शन सम्यक्त्व आदिक नामों से कहा जाता है। उस ही सम्यक्त्व गुण का जब विपरीत परिणमन है तो उसका नाम मिथ्यात्व अथवा मिथ्यादर्शन है और जब मिश्र परिणमन है, सम्यक्त्व और मिथ्यात्वरूप परिणमन है जिसे न केवल सम्यक्त्व कह सकेंगे और न मिथ्यात्व कह सकेंगे, उसे कहते हैं सम्यग्मिथ्यात्व। और जब किसी जीव के सम्यग्दर्शन तो छूट गया और मिथ्यादर्शन नहीं हो पाया ऐसी कोई अवस्था होती है उस अवस्था में यद्यपि परिणाम तो अयथार्थ ही है, लेकिन वहाँ सासादन रूप परिणमन कहते हैं।

**श्रद्धा गुण का सम्यक् परिणमन होने पर ज्ञानादि गुणों की समीचीनता-** श्रद्धा गुण जब सम्यक् बन जाता है तब अर्थात् सम्यक्त्व के होने पर ज्ञानादिक गुण भी सम्यक् हो जाते हैं और जब श्रद्धा गुण का विपरीत परिणमन रहता है तब ज्ञानादिक गुण विपरीत हो जाते हैं। जहाँ श्रद्धा होती है उस ही ओर जीव की लगन हो जाती है। मोही जीव जो धन वैभव परिजन यश आदिक में लीन हो रहे हैं उसका कारण ही यह है

कि उनका हित विश्वास इन ही पर पदार्थों में है। वे यह समझते हैं कि धन वैभव आदिक होने से ही हमारी उच्चता है और जो योगी साधुजन आत्मतत्त्व में ही लीन रहते हैं, करोड़ों की सम्पदा त्याग कर बड़े बड़े राज्य वैभव छोड़कर वन में एकान्त में निर्ग्रन्थ होकर अकेले खुश रहा करते हैं, जिनके चित्त में प्रसन्नता बनी रहती है वे कहाँ रमण करते हैं? अपने आत्मा में। और ऐसा आत्मरमण अथवा प्रसन्नता का कारण है अपने आपमें अंतःस्वरूप का यथार्थ भान होना। तो जैसी श्रद्धा होती है उस ही प्रकार की परिणति और मग्नता होती है। तो श्रद्धा शक्ति भी जीव के निरन्तर है।

**आत्मा के चारित्र गुण का कार्य-** चारित्र शक्ति भी जीव के निरन्तर है। उस चारित्र गुण का कार्य है किसी न किसी और झुके रहना। जब चारित्र गुण का विभावरूप परिणमन रहता है, चारित्र गुण विपरीत परिणम रहा है तब तो रागद्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभादिक कषायों में चारित्र गुण का कार्य है। कार्य के मायने परिणमन। चारित्र गुण ही इस समय रागादिकरूप परिणम रहा है। और जब चारित्र गुण स्वभावरूप परिणमता तब वह जीव शान्त शुद्ध विषय कषाय रहित अंतस्तत्त्व में स्थिर रहता है, यह चारित्र गुण का स्वाभाविक परिणमन है। इसे अगर संक्षेप में कहें तो चारित्रगुण का स्वाभाविक परिणमन है कषाय रहित हो जाना। आत्मा एक अखण्ड पदार्थ है। उसको समझने के लिए आत्मा के जो परिणमन हैं उन परिणमनों के अनुसार इसमें शक्तियों की छँट की जा रही है। परिणमन है स्थूलतत्त्व और शक्ति है सूक्ष्मतत्त्व। स्थूल लिंग के द्वारा सूक्ष्मतत्त्व का परिचय किया जाता है। तो जैसे जैसे परिणमन जीव में पाये जाते हैं और वे परिणमन इकहरे हैं। तो उनके आधारभूत शक्ति एक है। जैसे रागद्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, ये परिणमन एक समय में कोई एक हुआ तो मालूम हुआ कि ये किसी शक्ति के परिणमन हैं, जिस शक्ति में यह परिणमन भी हुआ और ऐसे ऐसे अन्य परिणमन भी होते हैं। तो इस विकास को निरखकर आत्मा की शक्ति का परिचय किया जा रहा है।

**जीव आनन्द गुण के कार्य-** आत्मा में सुख दुःख आनन्द भी पाये जाते हैं, जिस बात को इस ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही बताया गया। जीवों को सुख पाने की अभिलाषा अधिक रहती है और वे सुख पाने का उपाय करते हैं। उन्हें यह विदित नहीं है कि जैसे दुःख क्षणिक है, पराधीन है, इसी प्रकार सुख भी क्षणिक है और पराधीन है। दुःख जैसे आत्मा की विकृत अवस्था है इसी प्रकार सुख भी आत्मा की विकृत अवस्था है। सुख दुःख दोनों से रहित एक शुद्ध आनन्द परिणमन होता है वह है जीव का शुद्ध परिणमन। इन विकासों की ओर से जब शक्ति का परिचय किया जाता है तो फिर शक्ति विदित होती है। जीव में आनन्द नामक गुण है। जितने गुण होते हैं वे पदार्थ के स्वरूप कहलाते हैं। गुण शाश्वत तन्मय है अथवा द्रव्य से अलग चीज नहीं है। द्रव्य को अखण्ड रूप से जाना वह द्रव्य है और द्रव्य को खण्ड करके याने बुद्धि में उसके तिर्यक् अंश कल्पनायें करके जब जाना भाव की दृष्टि से तो वह गुण कहलाता है। आत्मा में आनन्द नाम का गुण है जिस गुण का परिणमन है आनन्द सुख व दुःख। सुख और दुःख तो विकृत परिणमन हैं, हेय तत्त्व हैं और आनन्द आत्मा का विशुद्ध परिणमन है।

**जीव की क्रियावती शक्ति का कार्य-** आत्मा में कोई भी प्राणी जब यहाँ से किसी दूसरे नगर को जाता है तो शरीर जा रहा है, यह भी विदित हो रहा है और आत्मा भी साथ जा रहा है। उसमें क्रिया होती है। यही बैठे हुए हाथ पैर हिलाना अथवा कोई क्रिया करना उसमें भी आत्मप्रदेश में क्रिया होती है। तो उस क्रिया की आधारभूत इच्छा भी एक शक्ति है जिसका नाम है क्रियावती शक्ति। सीधा, टेढ़ा, गोल, अटपट किसी भी प्रकार गमन होना यह क्रियावती शक्ति का कार्य है। क्रियावती शक्ति का शुद्ध कार्य तो यों समझिये कि निष्क्रियता है, पर उसमें निकट शुद्ध क्रिया है ऊर्ध्वगमन। जब कर्मक्षय होने पर जीव की ऊर्ध्वगति होती है, एकदम 7 राजू ऊपर जाकर सिद्ध लोक में विराजमान हो जाता है, या ऊर्ध्वगमन क्रियावती शक्ति का शुद्ध गमनरूप परिणमन है। संसारी जीव भी कर्मप्रेरित होकर कभी ऊर्ध्वगमन करते हैं। जैसे स्वर्ग में जन्म लेना या ऊपर के त्रस स्थावर में जन्म लेना। इसमें भी ऊपर गया वह जीव, लेकिन उसका यह ऊर्ध्वगमन शुद्ध गमनरूप परिणमन नहीं है। जैसे कोई जीव नरक जाय तो वह सीधा नीचे गमन करता है? कर्मप्रेरित होकर, इसी तरह जन्म लेने वाला संसारी प्राणी ऊर्ध्वगमन करता है वह भी कर्मप्रेरणा से होता है। उसे स्वाभाविक परिणमन न कहेंगे। और परमार्थतः तो सदा रहने वाला निष्क्रिय परिणमन क्रियावती शक्ति का एक विशुद्ध परिणाम है।

**जीव की योगशक्ति का कार्य-** जीव में क्रिया न करते हुए अथवा क्रिया करते हुए प्रदेश के परिस्पंद होने की भी शक्ति है। न भी गमन करे, एक ही जगह बैठा है, फिर भी प्रदेश परिस्पंद होता है। गमन करते हुए भी होता है। इस वृत्ति परिस्पंदों के आधारभूत शक्ति का नाम है योगशक्ति। इस योगशक्ति के दो प्रकार के परिणमन हैं। शुद्ध स्वाभाविक परिणमन तो है परिस्पंद रहित रहना, पूर्ण स्थिर रहना और विभावपरिणमन है प्रदेश परिस्पंद। अयोग अवस्था 14 वें गुणस्थान एवं सिद्ध अवस्था में रहती है। गमन करते हुए भी अयोग रहे, एक जगह रहते हुए भी अयोग रहे, गमन करते हुए भी योग रहे और एक जगह रहते हुए भी योग रहे, ये सब विकल्प बन सकते हैं। 14 वें गुणस्थान वाला जीव एक ही जगह है लेकिन योगरहित है। सिद्ध भगवान अनन्त काल के लिए एक ही जगह स्थित रहते हैं और योग रहित हैं। सिद्ध होने के लिए जो गमन होता है 14 वें गुणस्थान के अन्त में एक समय में 7 राजू प्रमाण गमन कर जाता है, उस समय क्रियावती शक्ति का शुद्ध गमन परिणमन होता रहता है लेकिन योगरहित अवस्था है। यहाँ संसारी जीवों में कोई जीव गमन कर रहा हो तब भी योग है और एक जगह स्थिरता से स्थित हो तो भी वहाँ योग है। योगशक्ति नाम है आत्मप्रदेशों में परिस्पंद कर देने की शक्ति का। यों आत्मा में जितनी शक्तियाँ है उन सब शक्तियों के निरन्तर परिणमन होते हैं। कोईभी गुण परिणमन शून्य नहीं होता। जिन गुणों का परिणमन स्वाभाविक हो रहा है, उन परिणमनों में अनेक गुणों के परिणमन में यह विदित नहीं हो पाता कि परिणम क्या रहा है यह, लेकिन शान्त होना स्थिर होना, निष्क्रिय होना, परिस्पंदरहित होना यह भी तो परिणमन है, चाहे स्वाभाविक परिणमन हो अथवा विभावरूप परिणमन हो, परिणमन प्रत्येक गुण का निरन्तर होता रहता है। जैसे दर्शनगुण और ज्ञानगुण में उपयोग छद्मस्थ जीवों के कहाँ एक में होगा? और इसी कारण बताया गया है कि जब ज्ञानोपयोग है तब



दर्शनोपयोग नहीं, जब दर्शनोपयोग है तब ज्ञानोपयोग नहीं। तो भले ही उपयोग न हो, कोई एक ही हो, लेकिन ज्ञान और दर्शन शक्ति का परिणमन जीव में निरन्तर हो रहा है। तो जितनी भी शक्तियाँ हैं वे सब शक्तियाँ निरन्तर परिणमती हैं, तब समझना चाहिए कि द्रव्य तो है वह समग्र आत्मा और गुणपर्याय वाला है, शाश्वत है, उस शाश्वत आत्मा में जो शाश्वत ही रहे ऐसा भेद है, वह गुण कहलाता है और जो विनाशीक हो ऐसा भेद पर्याय कहलाता है।

**पुद्गल द्रव्य की शक्तियाँ और उनके कार्य-** गुणों के सम्बन्ध में कुछ और विशेष जानकारी करने के लिए एक पुद्गल द्रव्य का उदाहरण लीजिए। पुद्गल द्रव्य में गुण मुख्यतया 4 माने गए हैं- रूप, रस, गंध, स्पर्श। शब्द को गुण नहीं कहा है, क्योंकि शब्द पुद्गल में निरन्तर नहीं होता। जब दो पदार्थों का संयोग अथवा वियोग होता है तब ऐसा ही निमित्त पाकर वहाँ शब्द की उत्पत्ति होती है। जैसे रूप पुद्गल में निरन्तर रहता है। कोई सा भी रूप हो वह है रूप की पर्याय, पर काला, पीला आदिक रूप जिस रूपशक्ति के परिणमन हैं वह रूपशक्ति पुद्गल में निरन्तर है, इसी प्रकार खट्टा मीठा आदिक रस जो व्यक्त होते हैं वह परिणमन है। उन परिणमनों के आधारभूत जो शक्ति है उसे रसशक्ति कहते हैं। गंध, दुर्गन्ध, सुगंध, कम सुगंध है, अधिक सुगंध है, कम दुर्गन्ध है, अधिक दुर्गन्ध है यों नाना परिणमन जिस एक शक्ति के होते हैं उसका नाम है गंधशक्ति। इसी प्रकार रूखा चिकना आदिक स्पर्श, ये परिणमन हैं। ये जिस शक्ति के परिणमन हैं उसका नाम है स्पर्शशक्ति। यों पुद्गल द्रव्य में चार गुण कहे गए हैं। रूप गुण- जो चक्षुइन्द्रिय से जाना जाता है वह रूपगुण का कार्य है- जैसे काला, नीला, पीला, लाल, सफेद आदिक। एक आम में काला, नीले, हरा, पीला, लाल, सफेद आदिक ये परिणमन क्रम से हो गए, पर जिस समय जब जो भी बदल हुई है उस बीच अन्तर नहीं आया। जब नीला आम हरा बन गया। छोटा आम बड़ा होने पर हरा हो जाता है तो नीला का तो व्यय हुआ और हरे का उत्पाद हुआ, पर यह किसमें हुआ? कौन बना बिगड़ा? रूप गुण। वह रूपगुण चक्षुइन्द्रिय से तो नहीं जाना गया, चूँकि रूपशक्ति है, पर उसका जो व्यक्त रूप परिणमन है नीला पीला आदिक वह चक्षुइन्द्रिय से जाना जाता है। तो जो चक्षुइन्द्रिय से जाना गया है वह है रूप गुण का कार्य। रस गुण- इसका परिणमन है तीखा, मीठा, खट्टा, कडुवा, चरपरा आदिक। तो जो रसनाइन्द्रिय से जाना जाय वह कार्य है रसगुण का। इसके आधारभूत जो रस नामक शक्ति है वह शक्ति रसना इन्द्रिय से नहीं जानी जाती। वह तो मन के उपयोग द्वारा ज्ञान में ही आती है। जो उसका व्यक्त परिणमन है वह रसनाइन्द्रिय द्वारा जाना जाता है। रसगुण का कार्य क्या हुआ? जो भी रसनाइन्द्रिय द्वारा जाना गया। खट्टा, मीठा, कडुवा, चरपरा आदिक होना ये सब रसगुण के कार्य हैं। इसी प्रकार गंधगुण के कार्य वे हैं जो घ्राणइन्द्रिय द्वारा जाने जा रहे हैं। सुगंध दुर्गन्ध नाना प्रकार के फूलों में सुगंध, तैल आदिक में सुगंध अथवा मलिन वस्तुओं में दुर्गन्ध जो जानी जा रही है, ऐसा पाया गया सुगंध दुर्गन्ध गंध गुण का कार्य है। गंधशक्ति घ्राणेन्द्रिय द्वारा नहीं जानी गई। वह तो सूक्ष्म है। उस शक्ति के जो व्यक्तरूप परिणमन होते हैं वे घ्राणइन्द्रिय से जाने गए। स्पर्श की 8 पर्यायें हैं- ठंडा, गर्म, रूखा, चिकना, कड़ा, नरम, हल्का, भारी।

स्पर्श के प्रकारों में मुख्यता व औपचारिकता- इनमें से 4 परिणमन तो पुद्गल के स्वतः और प्रत्येक परमाणु में भी पाये जाते हैं। रूखा, चिकना, ठंडा, गर्म। शेष चार परिणमन ये स्कंधों में ही पाये जाते हैं। जैसे कड़ा नरम होना। एक पुद्गल परमाणु न कड़ा रहता है, न नर्म रहता है। जब अनेक परमाणु मिलकर स्कंध होते हैं, उन स्कंधों में ही कड़ा और नरम का भेद होता है। इसी तरह हल्का भारी। परमाणु स्वयं निरपेक्ष है। न वह हल्का है, न भारी है। हल्का भारी सापेक्ष परिणमन है, वह स्कंधों में ही सम्भव है। यह स्पर्शनइन्द्रिय द्वारा जाना जाता है, ये स्पर्श गुण के कार्य हैं। तो जैसे पुद्गल में व्यक्त परिणमन और उनके आधारभूत शक्तियाँ प्राप्त होती हैं इसी तरह आत्मा में भी आत्मा का व्यक्त परिणमन और आत्मा के उन-उन व्यक्त परिणमनों के आधारभूत शक्ति विदित होती है। यों एक अखण्ड अवक्तव्य आत्मतत्त्व इन व्यक्त परिणमनों के आधारभूत शक्तियों के परिचय से जान लिया जाता है। जिसको आनन्द चाहिए उसका स्वरूप क्या है, यही बात समझाने के लिए ये सब प्रयत्न किए जा रहे हैं। वह आत्मा गुणपर्याय वाला है और उसकी पर्यायें विनाशीक हैं। गुण शाश्वत है, इन सबका यहाँ परिचय दिया जाता है।

यहाँ एक शंका होती है कि जैसे स्पर्शनइन्द्रिय से जाना गया स्पर्श पुद्गल के किसी गुण का कार्य है। रसनाइन्द्रिय से जाना गया खट्टा मीठा आदिक रस पुद्गल के किसी गुण का कार्य है। घ्राणइन्द्रिय से जाना गया सुगंध और दुर्गन्ध पुद्गल के किसी गुण का कार्य है और चक्षुइन्द्रिय से जाना गया काला नीला आदिक रूप पुद्गल के किसी गुण का कार्य है, इसी प्रकार श्रोत्र इन्द्रिय से जो जाना जाता है- क्या जाना जाता है? नाना प्रकार के शब्द, वे शब्द पुद्गल के गुण के कार्य क्यों नहीं बताये गए? इसका समाधान यह है कि यह बात तो सत्य है कि शब्द श्रोत्र इन्द्रिय से जाना जाता है लेकिन शब्द गुण नहीं है और न गुण का कार्य है, किन्तु वह द्रव्य पर्याय है। द्रव्य पर्याय उसे कहते हैं जो द्रव्य के प्रदेश के संयोग वियोग आकार आदिक के सम्बंध रखता है, इसी कारण यह गुण नहीं होता है किन्तु द्रव्यपर्याय होता है। पुद्गल के किसी संयोग वियोग की स्थिति में शब्दरूप पर्याय होती है। वह पर्याय किसकी है? भाषावर्गणाजाति की, पुद्गल द्रव्य की पर्याय है। यहाँ भी यह समझना चाहिए जैसे दो काठ के टुकड़े मिले, उनमें कुछ संगठन किया गया तो उस स्थिति में भी जो शब्दरूप परिणमन है कोई, सो ये दोनों काठ नहीं परिणमे, किन्तु इन दोनों काठों के संघट्टन का निमित्त पाकर भाषावर्गणा जाति के जो और पुद्गल द्रव्य थे उनका शब्दरूप परिणमन हुआ है। तो यह शब्द न गुण है, न गुण का कार्य है। गुण जो भी होता है वह त्रिकाल रहता है, चाहे वह किसी अवस्था में रहे, चाहे शुद्ध अवस्था में रहे अथवा अशुद्ध अवस्था में। जो भी गुण है वह शाश्वत रहेगा, लेकिन शब्द शाश्वत नहीं रहता। भाषावर्गणाजाति के जो पुद्गल हैं सो वे इस जाति के तो अवश्य हैं, पर वहाँ भी शब्द सदा नहीं रहता। वहाँ भाषावर्गणा जाति के पुद्गल में ऐसी योग्यता है कि वे शब्दरूप परिणमन जाते हैं, पर शब्द त्रिकाल नहीं रहता, इस कारण शब्द गुण नहीं है और न शब्द किसी गुण की पर्याय है। हाँ श्रोत्रइन्द्रिय से जाना जा रहा है पर इन्द्रिय से जो कुछ जाना जाता है वस्तुतः वह तो पर्याय है।

अब उसमें यह प्रश्न होता है कि यह किसी गुण की पर्याय है अथवा नहीं? स्पर्शन आदिक इन्द्रिय से जो भी जाना गया है वह स्पर्श गुण नहीं है, किन्तु स्पर्श गुण की पर्याय हैं। श्रोत्रइन्द्रिय से जो जाना गया वह शब्द भी पर्याय है। हाँ इतनी बात और है कि शब्द किसी गुण की पर्याय नहीं है किन्तु प्रदेशवान द्रव्य की पर्याय है। प्रकरण यह चल रहा है कि गुणों के कार्य क्या क्या होते हैं? अब तक जीव द्रव्यों के गुणों के कार्य बताये गए और पुद्गल के गुणों के कार्य बताये गए। अब शेष जो 6 द्रव्य है उन 6 द्रव्यों के गुणों की क्रिया बदलती है। तीसरा द्रव्य है धर्मद्रव्य। धर्मद्रव्य उसे कहते हैं जो जीव पुद्गल के गमन में हेतुभूत हो। यद्यपि धर्मद्रव्य किसी जीव को प्रेरणा करके चलाता नहीं। किन्तु जीव या पुद्गल जब चल रहे की अवस्था धारण करते हैं तो उस समय में निमित्त होता है। जैसे मछली के चलने में जल निमित्त है, तो जल मछली को जबरदस्ती नहीं चलाता है, किन्तु मछली जब चलना चाहे, जब अपने चलने की क्रिया बनाये तो वहाँ जल निमित्तभूत है सो स्पष्ट ही है। यदि जल न होता तो मछली चल न सकती थी, फिर भी जल ने जबरदस्ती मछली को नहीं चलाया। इसी प्रकार यदि धर्मद्रव्य न होता तो जीव और पुद्गल में गमन न हो सकता था, फिर भी धर्मद्रव्य जीव और पुद्गल को जबरदस्ती चलाता नहीं है। जब जीव और पुद्गल गमन करें तो उनके चलने का निमित्त है धर्मद्रव्य। एक विशेष बात यह भी जानें। धर्मद्रव्य निष्क्रिय है, वह क्रियावान नहीं है, स्वयं नहीं चलता। स्वयं चलकर जीव को चलाने में कारण नहीं होता। जैसे जल है वह स्वयं नहीं चल रहा, वह तो भरा हुआ है और मछली चलना चाहे तो उसके लिए जल निमित्त है। यद्यपि दृष्टान्त में जो जल बताया गया है, जल कभी चलता है पर वह चलने की स्थिति अलग है। चलने के कारण मछली चल सकी हो ऐसी बात नहीं है। जल न चले तो भी मछली चलती है। दृष्टान्त में यह बताना है कि जैसे मछली के गमन का निमित्तभूत जल स्वयं नहीं चल रहा, चलकर मछली को चलाने में निमित्त नहीं बन रहा, वह तो स्थित है, उसका निमित्त पाकर मछली अपना गमन कर रही है। यों ही धर्मद्रव्य निष्क्रिय है। उसमें क्रिया किसी प्रकार नहीं है, स्वयं नहीं चलता है धर्मद्रव्य, फिर भी जीव पुद्गल के चलने में धर्मद्रव्य निमित्त होता है, इसकारण धर्मद्रव्य का कार्य गतिहेतुत्व हुआ। जीव पुद्गल गमन करें तो उनके गमन में कारण हुए, बस यह धर्मद्रव्य का कार्य है अथवा यों समझिये कि धर्मद्रव्य का जो कार्य बताया गया है वह आपेक्षिक धर्म है, यह गुण भी आपेक्षिक है। जीव और पुद्गल के गमन में निमित्त होना यह धर्मद्रव्य की एक विशेषता है। इस ही विशेषता को लेकर गतिहेतुत्व द्रव्य का गुण बताया गया है। विशेषता तो है ही इस दृष्टि से यह गुण उसमें है लेकिन दूसरे पदार्थ का नाम लेकर जीव और पुद्गल के चलने की बात कहकर यहाँ स्वरूप दिखाया गया धर्मद्रव्य का, यों धर्मद्रव्य का गुण अपेक्षित होकर वर्णन में आ रहा। पर धर्मद्रव्य में यह एक असाधारण विशेषता है कि किसी अन्य द्रव्य में नहीं पायी जाती कि जीव और पुद्गल के चलने में निमित्त होना। धर्मद्रव्य अमूर्तिक है, उसमें रूप, रस, गंध, स्पर्श नहीं है। और यह लोकाकाश में पूर्णतया व्याप्त है, ऐसा नहीं है कि इस लोकाकाश का कोई भी प्रदेश धर्मद्रव्य से अस्पृश्य रहा हो। तो धर्मद्रव्य चूँकि लोकाकाश में सर्वत्र

व्यापक है और उसका जो अगुरुलघुत्वगुण के कारण परिणमन है वह परिणमन एक है, इस कारण धर्मद्रव्य अखण्ड एक द्रव्य है।

द्रव्य का चौथा प्रकार है अधर्मद्रव्य। अधर्मद्रव्य में गुण है स्थितिहेतुत्वा। उस गुण का कार्य क्या है? उसके सम्बंध में कहते हैं। स्थितिहेतुत्व का अर्थ है कि जीव और पुद्गल चलते हुए जब ठहरें तो उनका इस अवस्थिति में निमित्त होता है। यह बात अधर्मद्रव्य में पायी जाती है। एक ऐसी नीति बना लें कि किसी भी पदार्थ में यदि कोई विभिन्न कार्य हो रहा है, बदलकर कार्य हो रहा है तो वहाँ कोई परद्रव्य निमित्त अवश्य होता है, क्योंकि जो बदल बदल कर कार्य होता है वह कार्य है आपेक्षिक विनाशीक पर निमित्त से होने वाला। वहाँ दूसरा कोई द्रव्य निमित्त होता है तो जीव पुद्गल अभी चल रहे थे और चलते हुए अब वे ठहर रहे हैं तो ठहरना एक नया कार्य है और ठहर कर ठहरे ही रहे सो नहीं, फिर चल भी देते हैं। तो यह ठहरना एक विनाशीक अवस्थिति है। तो जब जीव पुद्गल चलकर ठहरता है तो वहाँ अधर्मद्रव्य निमित्त होता है। तो जीव पुद्गल जब ठहर रहे हों तो उनके ठहरने में अधर्मद्रव्य निमित्त होता है, यही अधर्मद्रव्य का कार्य है।

इस विषय को समझने के लिए एक यह दृष्टान्त लें कि जैसे चलते हुए मुसाफिर को ठहराने में पेड़ की छाया निमित्त रहती है तो वहाँ देखो वृक्ष चलकर स्वयं नहीं ठहरा रहा। वह तो जहाँ है वहाँ ही है। और चलकर ठहराने की प्रेरणा करे वह वृक्ष, सो भी बात नहीं है और एक जगह स्थित होकर भी वृक्ष मुसाफिर को ठहराने की प्रेरणा करे सो भी बात नहीं। जितने मुसाफिर रास्ते से चल रहे हैं, क्या वह वृक्ष सभी को पकड़कर रोक रहा है? नहीं। उन मुसाफिरों को ठहरने की इच्छा होती है और वे ठहरने का यत्न करते हैं तो वहाँ वह वृक्ष निमित्त है। जैसे गर्मी के दिनों में कोई मुसाफिर चल रहे हैं, उन्हें संताप हो रहा है। नीचे की जमीन से भी और ऊपर की धूप से भी, ऐसी स्थिति में वे ठहरना चाहते हैं, पर यों ही कहीं मैदान में ठहरते हुए न देखा होगा। वहाँ से तो भागने की कोशिश करते हैं। चलते हुए में रास्ते में कोई वृक्ष निकट में ही मिल गया तो वहाँ वे मुसाफिर ठहर जाते हैं। चलते हुए मुसाफिर जब ठहरने का भाव करें तो उनके ठहरने में जैसे वृक्ष निमित्त होता है इसी प्रकार जब चलते हुए जीव पुद्गल जब ठहरते हैं तो उनके ठहरने में अधर्मद्रव्य निमित्त होता है। इस निमित्त को इस तरह से पहिचान लें कि जैसे कोई धूप में चलने वाले मुसाफिर यदि उन्हें वृक्ष की छाया मिल जाय तो वहाँ ही ठहरते हैं, धूप से व्याकुल होकर धूप में ही नहीं ठहरते, यदि वृक्ष न होता तो मुसाफिरों का ठहरना न बनता। यों ही समझियें कि यदि अधर्मद्रव्य न होता तो जीव पुद्गल ठहर नहीं सकते थे। दृष्टान्त में भी इतनी बात जान लेनी चाहिए कि कोई मुसाफिर धूप से व्याकुल होकर वृक्ष के नीचे यदि ठहर रहा है तो उस ठहरने में निमित्त तो अधर्मद्रव्य ही है। कहीं ऐसा नहीं है कि इस दृष्टान्त में उनके ठहरने में निमित्त वृक्ष है, इसके आगे कुछ बात नहीं है। वहाँ भी निमित्त अधर्मद्रव्य है और वृक्ष आश्रयभूत है। ऐसे ही धर्मद्रव्य के दृष्टान्त में भी समझना चाहिए कि मछली के चलने में जल निमित्त है ऐसा कहा गया है। सो ऐसा नहीं है कि मछली के चलने में जल निमित्त है, इसके आगे और कुछ नहीं है। उसके चलने में भी धर्मद्रव्य निमित्त है और जल एक आश्रयभूत है। धर्म अधर्म द्रव्य

समस्त लोकाकाश में तिल में तैल की तरह व्याप्त है। बीच में कोई प्रदेश धर्म और अधर्म द्रव्य से सूना हो जाय, ऐसा नहीं है। अब इसी धर्मद्रव्य के कार्य को एक निरपेक्ष दृष्टि से देखा जाय तो मालूम होता है कि यह स्थिति हेतुत्व गुण अधर्मद्रव्य का जो बताया गया वह आपेक्षिक धर्म है। किसी जीव पुद्गल का नाम लेकर, उसका सम्बंध बताकर कहा गया है, फिर भी यह विशेषता तो अधर्मद्रव्य में है ही। इस कारण यह असाधारण गुण है। और इस असाधारण गुण का कार्य है जब जीव पुद्गल चलकर ठहरते है तो उन ठहरना वस्तुतः अधर्मद्रव्य का कार्य अधर्मद्रव्य का अगुरुलघुत्व गुण के कारण जो षट्गुण हानि वृद्धिरूप परिणमन चलता रहता है वह ही वास्तविक कार्य है, पर उसका व्यक्तरूप क्या है, इसके समझे बिना द्रव्य के विषय में स्पष्ट जानकारी नहीं हो पाती, अतएव इस आपेक्षित धर्म द्वारा उसका कार्य बताया गया है।

5वीं जाति का द्रव्य कहा गया था आकाश द्रव्य। आकाश द्रव्य का असाधारण गुण है अवगाहनहेतुत्व। इस गुण का कार्य क्या है, इस सम्बन्ध में अब कुछ वर्णन करते हैं। आकाश का गुण बताया गया है कि समस्त द्रव्यों के अवगाहन के हेतुभूत होता है, तो आकाश का, क्योंकि यह विशेषता है कि समस्त द्रव्यों को अवगाह दे सके। यह असाधारण गुण है आकाश का ,क्योंकि यह विशेषता अन्य द्रव्य में नहीं पायी जाती है। कभी ऐसा भी विदित होता है कि एक घड़े में राख भरी है, उसी में पानी भर दिया गया, उसी में कुछ सूइयां डाल दी गईं। अब कोई यह शंका कर सकता है कि देखो सूई का अवगाह उस पानी में हो गया, उस राख में हो गया, लेकिन वहाँ भी आकाश है और परमार्थतः आकाश में सबका अवगाह है। आकाश के जिन प्रदेशों में राख रखी है उन्हीं प्रदेशों में पानी भी समा गया। यह राख की विशेषता है कि उसका प्रतिबंध नहीं किया, मगर अवगाहन दिया आकाश ने ही। तो आकाश द्रव्य का कार्य हुआ सब द्रव्यों को अवगाह देना। यद्यपि समस्त द्रव्य अपने क्षेत्र की अपेक्षा से अपने अपने स्वरूप में ही हैं, अपने ही प्रदेश में हैं, लेकिन परक्षेत्र की अपेक्षा से देखा जाय तो वे सर्वद्रव्य आकाश के प्रदेश के स्थान पर ही हैं।

जैसे आकाश प्रदेशी है इसी प्रकार जीव भी प्रदेशवान है। जीव में भी निज के प्रदेश हैं। यह जीव भी तो स्वयं अपने आप में कोई विस्तार लिए हुए है। तो जीव अपने प्रदेश में रह रहा है। परमार्थतः तो यह बात है किन्तु जब परद्रव्य की ओर दृष्टि देते हैं तो यह बात भी सिद्ध है कि यह जीव द्रव्य आकाश में रह रहा है, ऐसे ही समस्त पदार्थ अपना अपना प्रदेश रख रहे हैं। जो एक प्रदेश पदार्थ है वह एक प्रदेश में ही है, अपने स्वक्षेत्र की अपेक्षा से जो असंख्यात प्रदेश हैं वे अपने ही उन असंख्यात प्रदेशों में रह रहे हैं। जो अनन्त प्रदेशी है आकाश वह अपने अनन्त प्रदेशों में रह रहा है। तो सभी पदार्थ स्वक्षेत्र की अपेक्षा से अपने अपने प्रदेश में ही रहते हैं, फिर भी परक्षेत्र की अपेक्षा से देखा जाय तो वे सभी पदार्थ आकाश के प्रदेश के स्थान पर हैं। आकाश को छोड़कर अन्यत्र कहीं भी नहीं है। अभी तक जो धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य और आकाशद्रव्य इन तीन अजीवों का वर्णन किया, जीव भी अमूर्तिक है और आगे जो काल द्रव्य कहा जायगा वह भी अमूर्त है, लेकिन अमूर्त होने पर भी इन अमूर्त द्रव्यों में से सबसे अधिक परिचय हम आपको जीव द्रव्य का है। कारण यह है कि हम आप स्वयं जीव है, अपने आप पर अवस्थायें बीतती है, उनका अनुभव होता है इसलिए अपने

आपका परिचय सुगम हो जाता है। तो अमूर्त द्रव्यों में अपेक्षाकृत स्पष्ट परिचय जीव द्रव्य का होता है, उसके बाद कुछ परिचय हो सकता है आकाशद्रव्य का। आकाश द्रव्य अमूर्त है, वह किसी इन्द्रिय द्वारा ग्राह्य नहीं है, फिर भी सबकी प्रतीति में है कि यह आकाश है। है और उसे यह आसमान है, यह पोल है आदिक शब्दों से लोग बता सकते हैं। उस आकाश द्रव्य का काम है स्थान देने का। एक दृष्टि से देखा जाय तो यह अवगाहनहेतुत्व भी अपेक्षक धर्म है। परद्रव्य का नाम लेकर जो जीव पुद्गल आदिक द्रव्यों को अवगाह देवे, ऐसा सम्बंध बनाकर आकाश का धर्म बताया गया है अतएव आपेक्षक है, फिर भी यह विशेषता आकाश में ही पायी जाती है, अन्य पदार्थों में नहीं, यह बात भी तो तथ्य से अलग नहीं है, इस कारण अवगाहनहेतुत्व की विशेषता आकाश द्रव्य में है, इस कारण आकाश द्रव्य का असाधारण गुण अवगाहनहेतुत्व है।

अब छठवीं जाति का द्रव्य बताया गया है कालद्रव्य। कालद्रव्य का गुण है परिणमन पेज हेतुत्व। इस परिणमनहेतुत्व गुण का कार्य क्या है सो सुनो। कालद्रव्य परिणमन हेतुरूप है याने कालद्रव्य जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल, सभी द्रव्यों के परिणमन में निमित्तरूप है। इस कारण कालद्रव्य का कार्य परिणमन में हेतुभूत होना है, यद्यपि परमार्थिकता यह है उपादान दृष्टि से कि सभी द्रव्य अपने ही उपादान से अपना परिणमन करते हैं, किसी अन्य पदार्थ की परिणति से कोई अन्य नहीं परिणमता। तो भी सभी द्रव्य जब परिणम रहे हैं तो वहाँ परिणमते हुए जीव पुद्गल आदिक के परिणमन में कालद्रव्य निमित्तरूप है। कालद्रव्य के सम्बन्ध आदिक पर्याय का निमित्त पाकर जीवादिक द्रव्य परिणमन किया करते हैं। यह सब निमित्त होना उदासीन रूप है, इसमें प्रेरणा नहीं झलक रही। इसी कारण कुछ ऐसा विचार होने लगता है कि इसमें निमित्त क्या होगा? क्या किया काल ने? लेकिन मोटे रूप से भी देख लो कि यदि समय न गुजरे तो परिणमन तो न होता।

कोई बच्चा है और 10-15 वर्ष बाद जवान होगा तो 10-15 वर्ष का समय गुजरना उसके जवान होने में निमित्तभूत है या नहीं? यों मोटेरूप से भी समझा जा सकता है। सूक्ष्मरूप तो यह है कि प्रत्येक निरंश समय का निमित्त पाकर प्रत्येक द्रव्य अपने निरंश एक समय का परिणमन करता रहता है। यह कालद्रव्य लोकाकाश के एक एक प्रदेश पर एक-एक अवस्थित है। काल बहुप्रदेशी नहीं होता और एक प्रदेश पर बहुत कालद्रव्य भी नहीं है। अपने से सम्बन्धित संसर्ग के आये हुए पदार्थों के परिणमन में निमित्तभूत होते हैं किसी भी द्रव्य के परिणमन में निमित्तभूत नहीं, किन्तु द्रव्य का परिणमन अन्य द्रव्य के परिणमन में निमित्तभूत है। यहाँ एक यह बात विशेष समझना है कि आकाशद्रव्य अनन्तप्रदेशी है। लोकाकाश के बाहर भी आकाश है। वहाँ कोई यह जिज्ञासा करे कि कालद्रव्य तो लोक में ही पाये जाते हैं फिर अलोक में रहने वाले आकाश का परिणमन कैसे होगा? उत्तर यह है कि आकाश अखण्ड है, एक ही। किसी भी एक पदार्थ के परिणमन के लिए निमित्तभूत पदार्थ होना चाहिए। परिणमन उसका फिर सबमें होगा। तो चूँकि आकाश अखण्ड है और लोकाकाश में कालद्रव्य पाये जाते हैं, उन कालद्रव्यों का निमित्तपाकर अर्थात् समय परिणमन का निमित्त पाकर आकाश परिणमन करता है, तो चूँकि वह अखण्ड है इस कारण उसमें यह बात न बनेगी कि इस

लोकालोक में तो परिणमन करे और अलोकाकाश में न करे। वस्तुतः आकाश के दो भाग नहीं हैं- लोकाकाश और अलोकाकाश। आकाश तो अविभक्त अखण्ड एक है। हम यह निरखकर कि जितने स्थान में जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और कालद्रव्य पाये जा रहे हैं वह तो लोकाकाश है, इससे बाहर अलोकाकाश है। यह उपचरित भेद है। आकाश तो वस्तुतः अखण्ड है और कालद्रव्य के परिणमन का निमित्त पाकर वह समस्त एक अखण्ड आकाश परिणमन करता है।

पूर्ववत् यहाँ भी यह विशेषता जानना है कि कालद्रव्य अन्य द्रव्यों के परिणमन में निमित्त हो रहा है तो यह कथन आपेक्षिक धर्म के माध्यम से है। परपदार्थों का परिणमन का जो हेतु है सो कालद्रव्य है। यद्यपि आपेक्षिक दृष्टि में यह कथन बना, फिर भी दो बातें यहाँ जाननी हैं- पहिली तो यह कि समस्त द्रव्यों के परिणमन में निमित्त हो सके ऐसी विशेषता काल में ही है अन्य में नहीं है। तो यों यह विशेषता काल में ही तो पायी गई, सो यह एक असाधारण धर्म है। दूसरी बात यह है कि कालद्रव्य भी स्वयं ही निरन्तर परिणमन करता रहता है सत् होने से। तो उस कालद्रव्य में परिणमन का कारण निमित्तरूप से यही कालद्रव्य का परिणमन है और उपादान भी यही है। तो यों काल का निमित्तभूतपने का असाधारण गुण पाया जाता है और द्रव्य प्रत्येक साधारण और असाधारण धर्म से युक्त होता है। कोई एक साधारण धर्मी में तन्मय हो, ऐसा नहीं अथवा साधारण धर्म से तो रहित हो और असाधारण धर्म को लिए हुए हो, ऐसा भी नहीं है। अब कालद्रव्य के गुण का कार्य यहाँ बताया गया है कि समस्त द्रव्यों के परिणमन में हेतुभूत होना। यों इस परिच्छेद में गुण और गुणी के कार्य का संक्षिप्त दिग्दर्शन कराया गया है।

सर्वप्रथम बात यह चली थी कि आनन्द का उपाय जानने के लिए आनन्द के स्वरूप की और आत्मा के स्वरूप की पहिचान कर लेना आवश्यक है। उसी सिलसिले में यहाँ यह वर्णन किया जायगा कि आत्मा का स्वरूप क्या है? आत्मा का यथार्थ स्वरूप जो उसका सहज स्वभाव है, प्रत्येक वस्तु का यथार्थ स्वरूप वह है जो उसका सहज स्वभाव है। जबसे वस्तु है तब से जो हो उसे सहज कहते हैं। सह जायते इति सहजं। जो सत्त्व के साथ ही उत्पन्न हुआ हो वह सहज है, सत्त्व है अनादि। तो वह भाव भी अनादि से है। यों अनादि से आत्मा में तन्मय रहने वाला जो भाव है वह जीव का स्वरूप है। अब ऐसा भाव खोजिए क्या है? उन पदार्थों के नाते से जो भाव सहज मिले वह जीव का स्वरूप है। यद्यपि पदार्थ के नाते से 6 साधारण धर्म भी सहज हैं- अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशत्व और प्रमेयत्व, लेकिन उनका तो पदार्थपने से नाता है। जीव व्यक्ति से नाता नहीं है। हालांकि वह जीव व्यक्ति उस पदार्थ से अलग नहीं है, पदार्थपना और जीवपना उसमें एक है, लेकिन पदार्थ तो जीव के अतिरिक्त अन्य भी होते हैं। इस व्याप्यव्यापक भाव का भेद है, ऐसा भाव ऐसा सहज स्वभाव जो जीव में ही पाया जाय, अन्य पदार्थों में न पाया जाय वह भाव है जीव का स्वरूप। वह स्वरूप है चैतन्य भाव। सामान्य, चैतन्य। ज्ञान दर्शन स्वरूप। वह जीव का यथार्थ स्वरूप है। यद्यपि जीव में अनेक बातें हैं, विकार भी होते हैं और वे विभिन्न प्रकार के होते हैं, अनेक परिणमन होते हैं आकार की दृष्टि से और परिणमन पृथक्-पृथक् गुणों की दृष्टि से, और परिणमन लिया। यहाँ विभावपरिणमन

की तो बात ही क्या, कोई सा भी परिणमन परिणमन के नाते से वह स्थायी नहीं है, अतएव परिणमन जीव का यथार्थस्वरूप नहीं है। परिणमन जीव में है पर जीव का यथार्थस्वरूप जिसका लक्ष्य करके संसार के संकट टल जायेंगे। सब संकटों का मूल मोह मिथ्याभाव भी टल जायगा। वह स्वरूप है चैतन्यभाव। यदि अपने जीवन को सफल करना है तो एक यह निर्णय रखना होगा कि मेरा काम तो केवल अपने सहज ज्ञान में ले लेना और उसमें ही तृप्त रहना, बस यही एकमात्र काम मेरा रह गया है, बाकी काम सब असार है।

**उपलब्ध बुद्धि का आत्महित में उपयोग करने का अनुरोध-** देखिये ज्ञान पाया है, विद्वत्ता पायी है, अच्छी बुद्धि पायी है तो उसकी सफलता ज्ञानमग्नतारूप काम के कर लेने में है। दुनिया को हम कुछ बना दें, दुनिया भी मेरे बारे में कुछ समझ जाय, बहुत से जन मेरा परिचय पा लें अथवा मेरे से उनका कुछ लगाव बन जाय, स्नेह बने, ये सारी बातें उसके लिए बेकार हैं, क्योंकि इतने बड़े भारी लोक में जो 343 घनराजू प्रमाण है, यह वर्तमान, यह क्षेत्र, ज्यादाह से ज्यादाह जहाँ तक यश फैल सकता है वह भी सारा क्षेत्र क्या है? यह तो समुद्र के एक बिन्दु की तरह है। फिर भी इस क्षेत्र का कोई विश्वास नहीं है। उस यश का भी विश्वास नहीं, उसमें भी हानि, वृद्धि और गुण उसके बदले अपयश भी। तो क्या सार रखा है यहाँ किन्हीं अन्य कामों में? उसके करने योग्य काम केवल अपने सहज चैतन्यस्वरूप का ज्ञान में लेना, स्वानुभव करना, बस यही मात्र मेरा काम है जो कि सारभूत है, हितकारी है। अन्य काम तो उसके लिए काम ही कुछ नहीं है। यह निर्णय होना चाहिए। हम अपने निर्णय पर कितना अटल रह पाते हैं यह इसके बाद की बात है। अटल न रह पायें, ऐसा कुछ कारण है, तो इसके मायने यह नहीं हुआ कि निर्णय भी क्यों करे उसका, जिस बात पर अटल नहीं रह सकते। अटल रहने का कारण निर्णय होगा। अटल के बाद निर्णय नहीं, किन्तु अटलता के लिये निर्णयना पहिले आयगा। तो यह निर्णय करना आवश्यक है कि मैं अपने को समझ लूँ कि मैं केवल एक सहज चैतन्यस्वभावी हूँ। यही मेरा सत्यस्वरूप है, मेरा सर्वस्व यही है, इसमें ही मेरा काम है, इसमें ही मेरा वैभव है। इतने तक ही मेरा सम्बन्ध है, इससे बाहर कुछ भी बात नहीं है, यह निर्णय होना चाहिए अटल और इस निर्णय में लौकिकजनों के द्वारा मानी हुई कोई सम्पदा भी मिटे, उसमें खुश होना चाहिए।

**आत्मयाथात्म्यपरिचय की महिमा-** जीव के यथार्थ स्वरूप के परिचय का कितना महत्व है? सारे संकटों से दूर हो जाने का यही कारण बनता है। तो ज्ञात हुआ होगा आत्मा का यथार्थ स्वरूप सहज चैतन्यभाव, जिसके सम्बन्ध में कुछ थोड़ी सी बात कही गई, लेकिन इतना सुनने और बोलने के बाद भी अनेक लोगों के चित्त में यह बात आती होगी कि यह तो केवल बात ही बात कही गई है, केवल कहना मात्र है। उसका अभी स्पष्ट बोध तोहुआ नहीं कि आत्मा का यथार्थ चैतन्यस्वभाव क्या है? तो भाई स्पष्ट बोध तो अनुरूप पुरुषार्थ करके उस चैतन्यस्वभाव के अनुभव करने में होगा। जैसे कोई पुरुष किसी अच्छी मिठाई की प्रशंसा करे और हर तरह से उसका स्वरूप समझाये, उसके खाने में जो आनन्द आता उसका भी वर्णन करे तो उतना वर्णन सुनने के बाद भी उस श्रोता की समझ में उस मिठाई का या भोज्य पदार्थ का स्पष्ट ज्ञान कुछ नहीं हो पाया और बल्कि वह तरसने लगा और अपना एक क्लेश और बढ़ा लिया। उसका स्पष्ट बोध कुछ नहीं हो पाया।



कैसे हो स्पष्ट बोध? उसका तरीका यह है कि वह चीज उसे दे दे और वह खाये। खाकर स्पष्ट ज्ञान वह करेगा कि इसका यह रस है। तो ऐसा स्पष्ट ज्ञान कहीं बातों में आ सकेगा? खाने का स्पष्ट ज्ञान कि कैसा रस है, उसका स्पष्ट परिचय क्या खाये बिना केवल बात बात के करने में आ जायेगा? यहाँ तो मान लिया जायेगा कि नहीं आ सकता। बस ऐसी ही बात यहाँ भी समझिये कि आत्मा के उस सहज चैतन्य स्वभाव के अनुभव की बात स्पष्ट परिचय अनुभव से ही आ सकेगी, उस समता समाधिभाव में ही आ सकेगी। उसका अन्य उपाय नहीं है। अन्य उपाय तो उसकी तैयारी के लिए है। मैं अपने उस ज्ञानस्वभाव को धीरे से ज्ञान में लूँ, खड़बड़ करके नहीं लिया जा सकता। उसका कोई अन्तः रास्ता है जिसका न ओर है, न छोर है, ऐसे इस भीतरी रास्ते से इस ज्ञानोपयोग को ले जाकर उस स्वानुभव को ग्रहण कर लें यह बात बातों से न बनेगी। यह पौरुषसाध्य है, फिर भी उस अनुभव का हम आगम करें अर्थात् शब्दों द्वारा, युक्तियों द्वारा हम अपनी समझ बनायें यह तो करना ही होगा और करते ही हैं। साथ ही हम उसका निगम बनायें तो अपने आपके ही कुछ प्रयोग से अपने ही उस भीतरी पौरुष से उसके कुछ-कुछ स्वाद का अंदाजा करने लगें, यह तो करना ही होगा। यहाँ तीन बातें हैं आगम, निगम और अनुभव। आगम तो शाब्दबोध से अधिक सम्बन्ध रखता है अथवा युक्तियों से सम्बन्ध रख रहा है और निगम अपने आपके अन्तरंग में उसका एक दृढ़ परिचय बने, उससे सम्बन्ध रखता है। और स्वानुभव तो एक रस हो करके एक जानन परिणमन हुआ उससे सम्बन्ध रखता है। तो हमें आगम और निगम करने का तो काम है ही है। उसके बिना हम स्वानुभव में पहुंच न सकेंगे। तो चूँकि ये सब बातें अपने चैतन्यस्वभाव के जानने पर ही हो सकेंगी, अतः उसके परिज्ञान का तो पौरुष करना ही चाहिए।

**धर्मदर्शनपौरुष-** देखिये यहाँ के सर्वसमागम असार हैं, मेरे हितरूप नहीं हैं। उन सब समागमों के बीच रहकर उनमें मौज मानना, यह तो अपने जीवन के अमूल्य क्षणों को व्यर्थ खोना है। लेकिन जब शक्ति नहीं है निरन्तर स्वानुभव कर सकने की तो इनएक

बेकार बातों से भी छूटनी करनी पड़ती है कि कौनसी बात अधिक बेकार है और कौनसी बात कम बेकार है और कौनसी बातें हमें हितकारी तत्त्व की ओर ले जाने की पात्रता बनायें रख सकने वाली हैं? बस इसी छूटनी के आधार पर लोकव्यवहार का धर्म चलता है। धर्म तो वास्तव में यह समाधिभाव ही है, पर नहीं बनता है तो क्या करना? वहाँ विवेक की आवश्यकता होती है। यहाँ आत्मा के स्वरूप की बात चल रही है।

आत्मा का स्वरूप है चैतन्यस्वभाव। यह स्वभाव शाश्वत रहता है। जब से जीव है तब से ही जीव का स्वभाव है, जब तक जीव है तब तक जीव का स्वभाव है, अनादि से है, अनादि से ही यह चैतन्यस्वभाव है, जीव अनन्तकाल तक है, अनादिअनन्त काल तक ही यह चैतन्यस्वभाव है। यद्यपि आज भी और आज से पहिले विभाव परिणमन में ही यह जीव रह रहा, किन्तु चैतन्यस्वभाव शाश्वत रहा। जब विभाव परिणमन हो रहे हैं तब भी शाश्वत स्वभाव है, जब स्वभाव परिणमन होता है तब भी यह चैतन्यस्वभाव शाश्वत है। इसके

मर्म तक जब पहुंचते हैं तो एक दृष्टि कहती है कि इस स्वभाव का तो परिणमन भी नहीं हुआ। जब उस वस्तु के सर्वस्वरूप की ओर दृष्टि करते हैं तब दृष्टि कहती है कि परिणमन बिना कोई सत् ही नहीं होता। यह भी परिणम रहा है, गुणी विभावरूप परिणमा है तो कोई स्वभावरूप परिणमता है। यहाँ एक दृष्टान्त लीजिए। जैसे जल को अग्नि के सम्बंध से गर्म कर लिया गया। गर्म कर लेने पर भी जब जल के स्वभाव की हम चर्चा करते हैं, दृष्टि करते हैं तो क्या कहा जायगा, क्या समझ में आयगा, क्या जल का गर्म होना स्वभाव है? गर्म हुए जल में भी जल के स्वभाव की दृष्टि करते हैं तो समझ यही बनती है कि स्वभाव तो इसका ठंडा है। अब यह बतलावो कि जल का जो स्वभाव है वह गर्म हालत में मिट गया कि है? अब यहाँ दो दृष्टियों से इसके उत्तर आ जाते हैं। एक दृष्टि आयी कि गर्म होने पर भी जल का स्वभाव मिटता नहीं है, अंतरंग है। उससे कुछ बहिरंग दृष्टि होने पर जब सर्वतोमुखी निरीक्षण होता है तो कहा जायगा कि हाँ वह स्वभाव इस समय गर्मरूप में व्यक्त हुआ है।

जानने का प्रयोजन जानना ही रहने में आकुलता से छुटकारा-अब क्या है काम? सब कुछ जानकर सब दृष्टियों से सारे निर्णय करके जो एक वास्तविक है, बस उसको जान लीजिए। देखिये- जानने का प्रयोजन जानना ही है और कुछ नहीं। जब लोग जानने का प्रयोजन जानने के अलावा और कुछ बनाते हैं तब वे आकुलता में पड़ जाते हैं। जैसे घर के बच्चों को जाना तो जान करके उसका प्रयोजन क्या बना? कोई उनका उद्धार, उत्थान, विकास, लोक की बात यह यों बने, यह धनी बन जाय, यह सुख में रहे, यह मेरे काम आयगा आदिक विकल्प उठते हैं तो उन्होंने जानने का प्रयोजन जानने के अलावा कुछ और बना डाला। यही कारण है कि उनके क्लेश रहता है। और जानने का प्रयोजन यदि जानना मात्र रहे तो वहाँ क्लेश नहीं। तो परमार्थपथ में निरखिये- हम अपने आत्मा के इस यथार्थस्वरूप को जान रहे हैं। उस जानने का प्रयोजन क्या है? बस यही जानना ही रहे और कुछ नहीं। इसके ही निकट बाहर की बात देखिये- जो जानने का इतना भी प्रयोजन बनायें कि जान करके अब समझावो दूसरों को, बस लो इतने में भी एक संकट तो आ ही गया। इतने में भी बाह्य में तो यह झाँकने ही लगा। अपने आपसे तो कुछ च्युत ही हुआ। इतना तक भी प्रयोजन न होना चाहिए। अब ये बातें श्रद्धा में तो पूर्ण है किसी भी ज्ञानी संत के, परन्तु आचार में, प्रयोग में इतना नहीं कर पाते हैं।

कुछ स्थितियाँ ऐसी है कि नहीं कर सकते कुछ, लेकिन उद्देश्य लक्ष्य श्रद्धा तो यथार्थ में यही होनी चाहिए। और होती है ज्ञानी संत के कि सब कुछ जानने में तो आयगा ही, इसे रोक नहीं सकते, क्योंकि आत्मा ज्ञानस्वरूप है और ज्ञान का यही कार्य है कि इसमें ज्ञेयाकार हो, जानन बने, इस जानन को रोक नहीं सकते। जब विशुद्ध परिणति होती है, उत्कृष्ट विकास होता है तो सारा विश्व जानने में आता है, लेकिन सिद्ध भगवन्त भी सारे विश्व को जानते हैं, उनके जानने का प्रयोजन बस जानना जानना है और कुछ नहीं। अरहंतदेव जानते हैं सारे विश्व को, उस सबके जानने का प्रयोजन क्या है? जानन ही जानना। उनकी यह

बात हमें स्पष्ट समझ में आती है क्योंकि वे विकल्प नहीं करते, कहीं लगते नहीं, कुछ अन्य बात नहीं करते, लेकिन यहाँ हम आपको यह बात जरा मुश्किल सी बैठती है कि जानने का प्रयोजन केवल जानना ही है।

**विमोहित बुद्धि को त्यागकर जानन कार्य का प्रयोजन जानन मात्र ही रखने का अनुरोध-**कई लोग तो कहते हैं कि ऐसा जानने का श्रम ही क्यों किया? जाना और छोड़ दिया। न तो ग्रहण किया, न उसमें प्रतिक्रिया की, न कोई काम बनाया। यह तो बेवकूफी है। इतना जाना, इतना पढ़ा लिखा, इतने विद्वान बने और इतने विद्वान बनकर भी क्या किया? जानना ही रख रहा है। तो मोहियों को ऐसा लगेगा। जो जैसी आदत के लोग होते हैं उनको आदत ही सर्वत्र पसंद है, लेकिन जानने के अतिरिक्त अन्य कुछ अपना प्रयोजन बनाने में आत्मा को कोई हित नहीं मिलता। हमें जानना है अपने यथार्थस्वरूप को और जानकर करना क्या है? बस जानना है और कुछ नहीं करना है। तब फिर दुनिया में हम किसलिए आये? कहाँ आये हैं? हम हैं, अपने में हैं, हममें इतना ही सत्त्व है। हम दुनिया में कैसे आये? किसके लिए आये, किसके लिए नहीं आये? तो कुछ यहाँ कर्तव्य भी नहीं किया। हाँ कुछ भी कर्तव्य नहीं। एक अन्तः परमार्थ शान्ति के मार्ग में लगे हुए ज्ञानी का यह वृत्तान्त है। सब कुछ जाना, किसलिए जाना? जानने के लिए जाना। इस ही में अलौकिक आनन्द है और उत्कृष्ट स्वरूपविकास है। यहाँ से चिगे वहाँ विकास नहीं है, वहाँ सत्य आनन्द नहीं है। यह बात तो ऐसी हुई है कि खोदा पहाड़ और निकला चूहा। हाँ मोहियों के लिए ऐसी ही बात है, क्योंकि उन्हें अपना कुछ इष्ट नहीं मिल रहा है। लेकिन जिनका भवितव्य अच्छा है, संसार संकटों से छूट जाने का जिनका समय आया है, जिनका पूर्ण कल्याण होने वाला है उनकी स्थिति ऐसी ही है कि उनका जानना केवल जानने के लिए ही हो रहा है, अन्य कोई प्रयोजन नहीं है। अन्य जिनका प्रयोजन है बस वे ही ये अनन्त जीव दिख रहे हैं। उनकी कोई कमी तो नहीं है। तो जिस स्वरूप को जानने की बात कहीं जा रही है और जिसको जानकर केवल जानने का ही प्रयोजन बताया जा रहा वह स्वरूप इस आत्मा में अनादि से है, अनन्तकाल तक है। विभावरूप परिणामे तब भी यही स्वरूप, स्वभाव रूप परिणामे तब भी यही स्वरूप। ऐसे शाश्वत सहज चैतन्यस्वभाव का आलम्बन लिया जाय तो वह आनन्द प्राप्त होगा, जिस आनन्द की इस ग्रन्थ में चर्चा की गई है और जो आत्मा के लिए हितस्वरूप है। इसको जानिये और जानते ही रहिये। यह सब सहजवृत्ति है। इसमें ही परमकल्याण है।

**बाह्य समागमों में शान्ति की असंभवता-** हम आप सब जीव यह चाहते हैं कि पूर्णतया शान्ति रहे और उस शान्ति के लिए अनेक प्रयत्न करते हैं। पर यह निर्णय रखिये कि शान्ति हमको मिल सकती है जब हम अपने आपके स्वरूप को सही जानें, और उस आत्म स्वरूप के जानने में सन्तुष्ट रहा करें। शान्ति का उपाय मात्र एक ही है। आप अनेक काम कर करके निर्णय कर ले कि हमको इससे शान्ति मिली या नहीं। बचपन से लेकर अब तक अनेक कार्य किए गये। जिस अवस्था में जो कार्य करना था, किया और अब भी किए जा रहे हैं। जिनकी बहुत समय में आशा रखते थे- बच्चे हुए, संतान हुए, उनके भी संतान हुए, दुकान, मकान भी बने, सारी बातें भी हुई पर जहाँ शान्ति की बात पूछी जाय कि मिला क्या तो उत्तर मिलता है कि कुछ नहीं

मिला। भला बड़े बड़े तीर्थकर चक्रवर्ती जैसे महापुरुष जिनकी भक्ति में हम अपने जीवन को धन्य समझते हैं उन्होंने सारा वैभव छोड़कर एक आत्मस्वरूप की ही आराधना की थी तब उनका कल्याण हुआ और इसी कारण हम आप आज उनकी पूजा करते हैं। तो निर्णय रखना होगा कि हम अपने आप में रमण कर सकें तो शान्ति मिलेगी। बाह्य पदार्थों में दिल लगाने से वहाँ शान्ति कभी नहीं मिल सकती। और फिर इसकी साधना के लिए यह भी निश्चय रखें कि जितने भी बाह्य समागम है वे सब भिन्न हैं और पर हैं, इनसे मेरा सम्बन्ध नहीं, और न इनसे कभी मेरा कल्याण हो सकता है।

**पूजा विधान में आत्मयाथात्म्य का संकेत -देखिये-** भगवान की पूजा में अथवा भगवान के गुणों की पूजा में अथवा भगवान ने जो उपाय किए उनकी पूजा में जब हम बोलते हैं- निःशंकित अंग को नमस्कार हो, निःकांक्षित अंग को नमस्कार हो, सम्यग्दर्शन के 8 अंगों को नमस्कार हो, सम्यग्ज्ञान के 8 अंगों को नमस्कार हो और सम्यक्कारित्र के महाव्रत गुप्ति समितिरूप 13 अंगों को नमस्कार हो। जो गृहस्थजन ऐसा पूजन करते हैं उनका आशय क्या है? उत्कृष्ट कार्य तो यही अंग का पालन है, पर हम नहीं कर पा रहे तो हमारी दृष्टि है उसके सत्कार के लिए। उसकी उत्कृष्टता समझने के लिए हम उन अंगों को नमस्कार करते हैं। नमस्कार करने में यह आशय बना कि पूज्य तो यह भाव है, हमको तो ऐसा ही होना चाहिए, यह आशय बनता है। तो ये सब बातें हम आपको कब आयेंगी, जब धर्मपालन की बात व्यवहार में भी सब सफाई की बात, शुद्धता की बात, सभी की सभी बातें उसके अनायास आती है। ये अर्न्तवृत्तियाँ उसके प्रकट होती हैं जो अपने आपके स्वरूप को सही समझता है।

**क्षमा से स्व परहित का शान्त वातावरण-देखिये-**क्षमा आत्मा का महान गुण है, आत्मा भी तृप्त रहता है, वातावरण भी शान्त रहता है, दूसरे लोग भी प्रसन्न रहते हैं, क्षमा का भी वातावरण है, और उसके विपरीत क्रोध का वातावरण देख लो, खुद जलाभुना रहता है, दूसरे लोग भी हैरान हो जाते हैं, अशान्त वातावरण हो जाता है। क्रोध में मिला क्या? लौकिक लाभ भी नहीं है और पारमार्थिक लाभ भी नहीं है, जब कि क्षमा में लौकिक लाभ भी है और अपना पारमार्थिक लाभ भी है। किन्तु वास्तविक क्षमा तब ही हो सकती है जब यह दृष्टि में आ रहा हो कि सब जीवों का स्वरूप मेरे ही स्वरूप के समान है। इतनी बात चित्त में बैठे बिना ढंग से क्षमा नहीं आ सकती। सब जीवों का स्वरूप उसके समान है इस परिज्ञान से क्षमा की ही बात नहीं, सभी गुण आ जाते हैं, वैराग्य भी बढ़ता है। जब देखते हैं ठेलों में भैंसा जूते हुए हैं, बड़ा बोझ लादे हुए हैं, कंधों से खून भी निकल रहा है, हांकने वाला चाबुक मार रहा है, वे भैंसे घुटने टेक टेक कर चलते हैं, तो देखिये उन भैंसों को कितना कष्ट है? किसे कष्ट है? उस जीव को, जिसका स्वरूप मेरे स्वरूप के समान है। अब देखिये- कुटुम्ब की भांति विस्तार बन रहा है सब जीवों का। लोग राग करते हैं और राग करने की आदत पड़ी है। राग किए बिना रह नहीं पाते हैं। नहीं रह पाते तो ठीक है, खूब राग करो पर उस रागों को सीमित न रखिये। उसे असीमित रूप से बढ़ा दीजिए। घर के उन 4-6 जीवों में ही राग न रखिये, जगत के जितने भी जीव है सभी में राग बढ़ा दीजिए। (राग को छोड़ने की बात नहीं कह रहे हैं, राग को ढंग से बढ़ाने की

बात कह रहे हैं) सब जीवों में राग पहुंच जाय, घर के दो चार जीवों में ही क्या खासियत है? जो यहाँ ही राग करके अपने आपके जीवन को निष्फल बनाया जा रहा है।

परमार्थ लाभ की ओर बढ़ने का अनुरोध -भैया ! बड़ी कठिनाई से मनुष्य जीवन पाया और दुर्लभ से दुर्लभ जो जैनशासन का शरण है वह पाया, जहाँ अनेकान्तवाद और वस्तुपरिचय के उपाय ऐसे अनोखे हैं कि जिनके परिज्ञान से अवश्य कल्याण होगा। इतनी दुर्लभ बातें पायी है तो क्या घर के दो चार जीवों में ही राग करके, मोह करके और विषयों में रूचि बढ़ाकर इस जीवन को व्यर्थ खो देना ही विवेक है? अब सम्हलना चाहिए। बाहरी समागम आयें तो आयें, न आयें तो न आयें, साहस बनावें, भगवान का शरण ग्रहण करें, आत्मस्वरूप का शरण ग्रहण करें। वैभव कम हो गया तो उससे कुछ हानि नहीं है। आत्मस्वरूप का शरण ग्रहण करो, वैभव कम रहेगा उससे हानि नहीं। यह 50-60 वर्ष का जीवन तो धनिक बनकर भी व्यतीत हो सकता है और साधारण स्थिति में रहकर भी व्यतीत हो सकता है। मिलता कुछ नहीं किसी को, पर प्रभु का शरण गह लें, आत्मस्वरूप का स्मरण बन जाय, यहाँ ही तृप्ति हो जाय तो उसको सब कुछ मिल जायेगा। इस ओर आयें, यहाँ दृष्टि दें। वैभव तो मिले तो क्या, न मिले तो क्या? पर इस लक्ष्मी की ऐसी आदत है कि जितना इसकी उपेक्षा करो, जितना अपने प्रभु और धर्म की ओर लगे उतना ही यह बढ़ती है। इसे न चाहो तो बढ़ती है और चाहो तो नहीं बढ़ती है। अब बतलाओ धर्म की ओर लगन रखने से और बाहरी समागमों को न चाहने से देखो लौकिक वैभव भी बढ़ रहा और अन्तः लौकिक वैभव भी बढ़ रहा। दृष्टि बनाओ। मेरे लिए यह मेरा चित्स्वरूप ही सर्वस्व है। मैं स्वयं ज्ञान और आनन्द से परिपूर्ण हूँ, जो मुझमें है वही मेरा है। जो मेरे से बाहर है वह त्रिकाल भी मेरा नहीं हो सकता। जहाँ अपना देह भी नहीं है वहाँ अन्य वैभव आदिक क्या अपने हो सकते हैं? यों जानकर अब वैराग्य की ओर आयें और साथ ही सर्व जीवों का स्वरूप अपने समान मानकर सबमें एकरस बन जायें तो वहाँ सब छूटकर एक चैतन्यरस रहेगा, यह बात सब आत्माओं का स्वरूप जान लेने पर सम्भव है। और उस ही आत्मा में उत्तम क्षमा का प्रवेश हो सकता है। जहाँ यह भेद डाला कि ये मेरे हैं, ये गैर हैं वहाँ क्षमा नहीं हुई। 13 अंगों को नमस्कार हो । जो गृहस्थजन ऐसा पूजन करते हैं उनका आशय क्या है? उत्कृष्ट कार्य तो यही अंग का पालन है, पर हम नहीं कर पा रहे तो हमारी दृष्टि है उसके सत्कार के लिए । उसकी उत्कृष्टता समझने के लिए हम उन अंगों को नमस्कार करते हैं । नमस्कार करने में यह आशय बना कि पूज्य तो यह भाव है, हमको तो ऐसा ही होना चाहिए, यह आशय बनता है । तो ये सब बातें हम आपको कब आयेंगी, जब धर्म पालन की बात व्यवहार में भी सब सफाई की बात, शुद्धता की बात, सभी की सभी बातें उसके अनायास आती हैं। ये अन्तर्वृत्तियाँ उसके प्रकट होती हैं जो अपने आपके स्वरूप को सही समझता है।

**क्षमा से स्वपरहित का शान्त वातावरण – देखिये –** क्षमा आत्मा का महान गुण है, आत्मा भी तृप्त रहता है, वातावरण भी शान्त रहता है, दूसरे लोग भी प्रसन्न रहते हैं, क्षमा का भी वातावरण है, और उसके विपरीत क्रोध का वातावरण देख लो, खुद जलाभुना रहता है, दूसरे लोग भी हैरान हो जाते हैं, अशान्त वातावरण हो

जाता है। क्रोध में मिला भी क्या? लौकिक लाभ भी नहीं है और पारमार्थिक लाभ भी नहीं है, जब कि क्षमा में लौकिक लाभ भी है और अपना पारमार्थिक लाभ भी है। किन्तु वास्तविक क्षमा तब ही हो सकती है जब यह दृष्टि में आ रहा हो कि सब जीवों का स्वरूप मेरे ही स्वरूप के समान है। उतनी बात चित्त में बैठे बिना ढंग से क्षमा नहीं आ सकती। सब जीवों का स्वरूप उसके समान है इस परिज्ञान से क्षमा की ही बात नहीं, सभी गुण आ जाते हैं, वैराग्य भी बढ़ता है जब देखते हैं ठेलों में भैसा जुते हुए है, बड़ा बोझ लादे हुए हैं, कंधों से खून भी निकल रहा है, हांकने वाला चाबुक मार रहा है, वे भैसे घुटने टेक टेक कर चलते हैं, तो देखिये उन भैसों को कितना कष्ट है? किसे कष्ट है? उस जीव को, जिसका स्वरूप मेरे स्वरूप के समान है। अब देखिये- कुटुम्ब की भांति विस्तार बन रहा है सब जीवों का। लोग राग करते हैं और राग करने की आदत पडी है। राग किए बिना रह नहीं पाते हैं। नहीं रह पाते तो ठीक है, खूब राग करो पर उस राग को सीमित न रखिये। उसे असीमितरूपसे बढ़ा दीजिए। घर के उन 4 - 5 जीवों में ही राग न रखिये, जगत के जितने भी जीव हैं सभी में राग बढ़ा दीजिए। (राग को छोड़ने की बात नहीं कह रहे हैं, राग को ढंग से बढ़ाने की बात कह रहे हैं) सब जीवों में राग पहुंच जाय, घर के दो चार जीवों में ही क्या खासियत है? जो यहाँ ही राग करके अपने आपके जीवन को निष्फल बनाया जा रहा है।

**परमार्थ लाभ की ओर बढ़ने का अनुरोध** - भैया ! बड़ी कठिनाई से मनुष्य जीवन पाया और दुर्लभ से दुर्लभ जो जैनशासन का शरण है वह पाया, जहाँ अनेकान्तवाद और वस्तुपरिचय के उपाय ऐसे अनोखे हैं कि जिनके परिज्ञान से अवश्य कल्याण होगा। इतनी दुर्लभ बातें पायी हैं तो क्या घर के दो चार जीवों में ही राग करके, मोह करके और विषयों में रुचि बढ़ाकर इस जीवन को व्यर्थ खो देना ही विवेक है? अब सम्हलना चाहिए। बाहरी समागम आये तो आये, न आये तो न आये, साहस बनावे, भगवान का शरण ग्रहण करें, आत्मस्वरूप का शरण ग्रहण करें। वैभव कम हो गया तो उससे कुछ हानी नहीं है। आत्मस्वरूप का शरण ग्रहण करो, वैभव कम रहेगा उससे कोई हानी नहीं। यह 50- 60 वर्ष का जीवन तो धनिक बनकर भी व्यतीत हो सकता है और साधारण स्थिति में रहकर भी व्यतीत हो सकता है। मिलता कुछ नहीं किसी को, पर प्रभु का शरण गह लें, आत्मस्वरूप का स्मरण बन जाय, यहाँ ही तृप्ति हो जाय तो उसको सब कुछ मिल जायेगा। इस ओर आये, यहाँ दृष्टि दें। वैभव तो मिले तो क्या, न मिले तो क्या? पर इस लक्ष्मी की ऐसी आदत है कि जितना इसकी उपेक्षा करो जितना अपने धर्म और प्रभु की ओर लगे उतना ही यह बढ़ती है इसे न चाहो तो बढ़ती है इसे चाहो तो नहीं बढ़ती है अब बतलाओ धर्म की ओर लगन रखने से और बाहरी समागमों को न चाहने से देखो लौकिक वैभव भी बढ़ रहा और अंतः लौकिक वैभव भी बढ़ रहा। दृष्टि बनाओ। मेरे लिए यह मेरा चित्स्वरूप ही सर्वस्व है। मैं स्वयं ज्ञान और आनन्द से परिपूर्ण हूँ, जो मुझ में है वही मेरा है। जो मेरे से बाहर है वह त्रिकाल भी मेरा नहीं हो सकता। जहाँ अपना देह भी नहीं है वहाँ अन्य वैभव आदिक क्या अपने हो सकते हैं? यों जानकर अब वैराग्य की ओर आये और साथ ही सर्व जीवों का स्वरूप अपने समान मानकर सब में एकरस बन जाये तो वहाँ सब छूटकर एक चैतन्यरस रहेगा,

यह बात सब आत्माओं का स्वरूप जान लेने पर सम्भव है । और उस ही आत्मा में उत्तम क्षमा का प्रवेश हो सकता है । जहाँ यह भेद डाला कि ये मेरे हैं ये गैर हैं वहाँ क्षमा नहीं हुई ।

**क्षमा से स्वयं की भलाई** – क्षमा भी कौन किस पर करता है ? खुद खुद पर क्षमा करता है। हम दूसरों से विरोध करें तो हम अपने आप का विरोध कर रहे, अपने आपकी बरबादी कर रहे, क्योंकि विकार हो रहा, कषाय हो रही, स्वयं के गुण जल भुन रहे हैं । हम विकार भाव छोड़ दें तो हमने अपने आपकी क्षमा कर ली। हम अपने आपके विकास और आनन्द में आ गए । तो क्षमा का लाभ खुद को है । क्षमा भी वास्तव में खुद खुद ही पर करता है । तो अपने आप पर दया करें और क्षमा भाव धारण करें । हम दूसरों से क्षमा याचना की बात क्यों करते हैं ? इसलिए कि उस निमित्त से मेरी आप से विरोध की वासना ना रहेगी । यदि किसी से किसी का विरोध था और वह विरोध की वासना ना रही तो व्यवहार में वह उससे क्षमा मांगेगा, प्रेम करेगा, स्नेह रखेगा। अगर इस ओर से चिगता है तो उसके अन्दर वास्तविक क्षमा नहीं है। क्षमा शुद्ध हृदय से करनी चाहिए, जिससे विरोध हो उससे क्षमा लेना चाहिए । जिनसे प्रेम है, जो रिश्तेदार हैं, जो हमारे रात दिन के व्यवहार के मित्र हैं उन्हें तो खूब गले से लगाकर गोद में उठाकर उछल उछलकर क्षमा माँगे और जिस किसी से बहुत दिनों से विरोध चला आ रहा है उस व्यक्ति से मुख मोड़े हैं तो वहा क्षमा की पात्रता आयी कहाँ ? बीच की सारी शल्य निकालकर जिनसे हमारा विरोध जगा है उनको भी यह मानकर कि ये भी मेरे ही स्वरूप के समान हैं, ये भी एक चैतन्यस्वरूप वाले जीव हैं, जैसे घर में रहने वाले अथवा मित्रजन जीवस्वरूप हैं उसी प्रकार ये हैं विरोध कोई चीज नहीं विरोध कोई किसी से करता भी नहीं है । प्रत्येक प्राणी कर्म विपाकवश अपने अपने विषयों में रहा करते हैं अब जिनको विरोधी माना उनके प्रति भी स्वार्थ में अपनी ही शान्ति के लिए कोई कार्य किया था । हमने विरोधी समझा अपने विषयों में बाधा माना । यही तो बात रही । वास्तव में कोई भी जीव मेरा शत्रु नहीं है वह भी एक स्वतंत्र पदार्थ है मैं भी एक स्वतंत्र पदार्थ हूँ । मेरा कौन विरोधी ? कोई भी मेरा विरोधी नहीं । यों सब जीवों में स्वरूपसाम्य देखकर सबको क्षमा करना, हिचक न लाना और ऐसी प्रवृत्ति करके तो देखिये – तब तो क्षमा की सही पूजा है, और अपने चित्त में कुछ भी निर्मलता न लायें तो क्षमा कहाँ से हुई ? ये सब बातें बनेगी अपने आपके शुद्धस्वरूप को समझने से।

**क्षमा भाव के लाभ के लिये स्वरूप की ओर आने का अनुरोध** – जरा स्वरूप का ओर आइये । मेरा स्वरूप क्या है ? मेरा सहज चैतन्यभाव । एक चैतन्यभाव जो न पिण्ड है, न जिसकी शकल है, न रूप रंग है, न पकड़ में आ सकता है, एक चैतन्यभाव है । आकाश भी तो कोई द्रव्य होता । आकाश जिसका न पिण्ड है, न आकार है, न रूप रंग है, न पकड़ में आ सकता है फिर भी है तो आकाश । वह अपना ही स्वरूप लिए हुए है इसी प्रकार यह मैं आत्मा चैतन्यभावमात्र हूँ । यदि मैं इस चौकी भीत आदिक की तरह कोई पिण्डरूप आकाररूप होता तो मुझमें चेतना आ ही नहीं सकती । क्या चेतना ? तो मैं हूँ एक चैतन्यभाव मात्र । अब समझ लीजिए । कोई सोचेगा कि यह तो हवा से भी पतला है अरे हवा से कितना ही पतला यह जीव है ।

हवा तो मूर्तिक पदार्थ है जो कि छिड़ जाती है, रबड़ आदिक में रोक भी ली जाती है। और यह आत्मा तो अत्यन्त सूक्ष्म है, केवल एक चैतन्य प्रतिभासमात्र है। ऐसे इस आत्मा का इस दुनिया में क्या रखा है ? इसका तो शरीर तक भी नहीं है, फिर भी धन दौलत कुटुम्बीजन, मित्रजन तो इसके होंगे ही क्या ? यह सारा अज्ञान का अँधेरा है। अज्ञान अँधेरे में रहना महापाप है। प्रकाश में आयेँ और अपने आत्मा का सच्चे कल्याण का लाभ लें । भावना यह रखिये कि मैं सबसे निराला अमूर्त चैतन्यमात्र, ज्ञानमात्र हूँ । देखिये यह जानना सबमें हो रहा है । जानने का सब लोग स्वरूप जानते हैं । भला बतलाओ – जानने की शकल क्या है, जानने का स्वरूप क्या है ? इसी पर ही विचार करिये – जैसे किसी ने कहा कि मैं वहाँ जा रहाँ हूँ, तो जा रहे की बात दिखती तो है कि पैर के आगे पैर धरकर चला जा रहा, ऐसे ही जानने की बात बताओ? जानने का मतलब क्या ? मैं जान रहा हूँ ? जरा उस जानने को दिखा तो दीजिए । अहा, कैसा अलौकिक तत्त्व है?

**कल्पित विरुद्ध वातावरण में भी स्वरूपनिश्चलता का कर्तव्य** – (इस सभा में एक छोटा बालक गोद में पड़ा हुआ रोने लगा, सब लोग झल्लाने लगे) देखिये- कहाँ तो क्षमा का प्रकरण था और कहाँ क्षोभ का प्रकरण बीच में आ गया, लेकिन क्षमा के गुणों पर दृष्टि देते हुए और क्षोभ के कारण की उपयोगिता समझते हुए जो कुछ क्षोभ भी आया है वह क्षमा के लिए क्षमा के आदर के लिए आया है । वस्तुतः कोई भी जीव किसी का विरोधी नहीं है । सभी जीवों के स्वरूप को अपने स्वरूप के समान समझो । देखिये – जैसे कहने से पेट नहीं भरता । खाने से पेट भरता है, यों ही केवल बातों से कल्याण नहीं मिलता किन्तु प्रयोग से कल्याण मिलता है । अपने स्वरूप को जानें और उसके समान सबको समझें और किसी से विरोध भाव ना रखे । उन विरोध भावों में कोई तत्त्व नहीं रक्खा है, मानलो मरण हो गया, आगे न जाने कहाँ चले गए ? यहाँ के विकार विरोध की बातें जो हुई उनका फल क्या मिला ? अपने चित्त को शुद्ध बनाओ । दो ही तो काम हैं गृहस्थों के करने के एक आजीविका का काम और एक उद्धार का काम । इनमें भी अपना उद्धार करने का मुख्य काम है और आजीविका का काम गौण है । आत्मउद्धार के और आजीविका के उपाय में फर्क यही है कि आत्मउद्धार का काम तो संतोष से पाला जा सकता है और आजीविका के काम में उसका बड़ा नुकसान है । धन अगर कम है तो क्या हुआ ? यदि संतोषधन है तो खुश रहा जा सकता है और अगर आत्मा की सुध न हो तो वहाँ कोई गुञ्जाइश नहीं है कि अपने आपको शान्ति प्राप्त हो सके । ऐसे एक इस चैतन्यस्वरूपका लक्ष्य करने से, उसकी उपासना करने से क्षमा आदिक सभी गुण प्रकट हो जाते हैं । वह चैतन्यस्वरूप तो सदा अकेला है। उसे कहते हैं सहज परमात्मतत्त्व । कहते हैं ना कि भगवान घट – घट में बसा है। प्रत्येक देह में बसा है। वह देह में क्या बसा? सब जीवों में परमात्मा बसा है । वह परमात्मा क्या ? जीवों का जो सहज स्वरूप है वही परमात्मस्वरूप है। एक बाँस पर रंग चढ़ा है, एक पर रंग नहीं है, बाँस के रंग को धोकर पूरी तरह से निकाल दिया तो यह बाँस उस बाँस के समान शुद्ध तो हो गया, मगर ऐसा शुद्ध होना उस रंगे बाँस में रंगे के समय में भी था या नहीं यह विचार करो । अगर न था तो शुद्ध हो



नहीं सकता। मैली भी चीज है तो उसमें भी देख लीजिए – काठ पर बहुत कूड़ा चढ़ा है, उस कूड़ा चढ़े की हालत में भी काठ अपने आप में शुद्ध कूड़ा रहित निर्मल है कि नहीं ? है। अगर नहीं है तो कूड़ा हटाये जाने पर भी वह काठ की चौकी साफ नहीं बन सकती थी। चौकी पर बहुत कूड़ा जम गया, इतने पर भी चौकी अपने आपमें बराबर सही है, शुद्ध है, साफ है। तब ही तो कूड़ा हटाने से साफ चौकी निकल आती है। ऐसी ही बात हम आप सब जीवों की है। जो भी स्वरूप प्रकट होगा वह स्वरूप हम आपमें इस समय भी है, जब कि संसार की बातों में लग रहे हैं। स्वरूप को देखिये – अगर स्वरूप में यह बात न हो तो कितने ही उपाय किए जाने पर भी वह परमात्मस्वरूप प्रकट नहीं हो सकता।

**अन्तस्तत्त्व के निर्णय मनन रमण का कर्तव्य** - अब कर्तव्य क्या है हम आप सबका ? आत्मस्वरूप का मनन और अध्ययन करें और तब तक मनन का यह कोर्स जारी रखें जब तक कि पूर्ण न हो जाय। यह कोर्स पूर्ण तभी कहलायगा जब यह साफ दृष्टि में आयगा कि सब जीव मेरे स्वरूप के समान हैं। यहाँ तो लोभ का भूत इतना सवार है कि जो कुछ मेरे पास सम्पदा है वह घर के स्त्री पुत्रादिक के लिए ही है, और किसी के लिए तनिक भी नहीं है। अगर कहीं लगे तो उसे समझते हैं कि मैंने बेकार खर्च किया।

**भला बतलाओ** – वहाँ कुछ जीवस्वरूप की समझ भी है क्या ? जहाँ दृष्टि में आ जायगा कि सब जीवों का स्वरूप मेरे ही स्वरूप के समान है वहाँ गृहस्थी में रहते हुए, गृहस्थी कुटुम्ब की जुम्मेदारी के नाते से विशेषतया कुटुम्बियों पर खर्च करते रहें, मगर समय आने पर दूसरों के उपकार में भी खर्च करने को पूरा दिन पड़ा हुआ है। और उसमें अपना विवेक और कर्तव्य समझिये। एक आत्मस्वरूप के जानने पर सभी ऐब दूर हो जाते हैं और सभी गुण विकसित हो जाते हैं। इससे भैया जैन शासन पाने का खूब लाभ लूट लो। वह लाभ है ज्ञान का। ज्ञान की प्राप्ति में, ज्ञान की वृद्धि में खूब बढ़िये और जीवन सफल कीजिए। सब कुछ किया और एक ज्ञानलाभ न कर पाया, आत्मबोध न कर पाया तो कुछ भी नहीं किया। मरण करके संसार के इन्हीं जीवों जैसा जन्म लेना होगा। सूकर, कुत्ता, गधा, भेड़, बकरी, कीड़ा, मकोड़ा आदिक ऐसे ही जन्म लेना होगा, फिर सोचिए, तब तो बेकार रही ना सारी बात। इन जीवों का जीवन क्या जीवन है ? ऐसी स्थिति से बचना है तो निर्णय करें और साहस बनायें, संकल्प करे कि मुझे तो इस जन्ममरण के संकट से हटना है। यही काम करने को मेरे सामने पड़ा हुआ है। उसके लिए आत्मबोध की आवश्यकता है। ज्ञान से ही प्रेम बढ़ायें, ज्ञान के लिए ही अपना सर्वस्व न्यौछावर करें। ज्ञान की ही रुचि बने तो हम अपने आपका कल्याण कर सकते हैं।

जीव का यथार्थ स्वरूप चैतन्यस्वभाव है। वह स्वभाव जीव में अनादि से है, अनन्त काल तक रहेगा। स्वभाव स्व के होने का ही नाम है, अतएव स्वभाव स्व का सहज भाव है, अर्थात् जब से वह स्व है तब से ही वह स्वभाव है। प्रत्येक पदार्थ अनादि से है, इस कारण स्वभाव भी अनादि से है। चाहे पदार्थ का विभावपरिणमन हो रहा हो तब भी स्वभाव है, स्वभावपरिणमन होता हो तब भी स्वभाव है। जैसे जीव का

आज तक विभावपरिणमन चल रहा है, ये विकाररूप परिणत होते रहते हैं। यहाँ भी जीव का सहज स्वभाव है। यहाँ तो कुछ लोगों को यह जंचने लगता है कि विभावपरिणमन के समय, क्रोधादिक कषायों के समय सहज स्वभाव कैसे रहेगा ? और वह उन्हें जंचता यों है कि बात यह है कि जब जीव का स्वभावविभावपरिणमन होता है, वहाँ सहज स्वभाव का परिचय शीघ्र नहीं हो पाता। जैसे जल जिस समय ठंडा है तो जल का स्वभाव ठंडा है, यह उस दशा में शीघ्र समझ में आता है। जब जल गर्म है तो गर्म की हालत में जल का स्वभाव तो ठंडा ही है, लेकिन परिणमन चूँकि गर्म हो रहा है तो स्वभाव का समझना कुछ कठिन होता है। तो युक्तियों से, अनेक ढंगों से समझाना पड़ता है कि जल यद्यपि इस समय गर्म है तो भी इसका स्वभाव ठंडा है इसी प्रकार विकार परिणमन के समय समझाना पड़ता है कि जीव में यद्यपि विकारपरिणमन हो रहा है ऐसा, फिर भी स्वभाव तो चैतन्यमात्र है, विकाररूप परिणमने का स्वभाव नहीं है। यहाँ तक यह बात निर्णय में आयी कि जीव का स्वभाव चैतन्य है और वह जीव में शाश्वत रहता है। स्वभाव शाश्वत है, स्वतः सिद्ध है, अनादि अनन्त है और स्वसहाय है, इसी कारण अखण्ड भी है।

**अखण्ड आत्म तत्त्व विभावपरिणमन होने के कारण की जिज्ञासा व उसका समाधान – अखण्डस्वभावी जीव का परिचय पाकर जिज्ञासु के मन में यह जिज्ञासा जगती है कि जीव का जब ऐसा स्वभाव है और अपने सत्त्व के कारण जीव में यह चिद्रूपता शाश्वत है फिर वजह क्या है कि जीव में असंगत परिणमन होता है, जीव के स्वरूप में संगत नहीं बैठता, विपरीत है, विकाररूप है। ऐसा परिणमन होता क्यों? इस सम्बन्ध में अन्तरंग और बहिरंग दोनों दृष्टियों से समाधान करना होगा। अन्तरंग दृष्टि से तो समाधान यह है कि जीव में विकाररूप विभावरूप परिणमने की शक्ति है। इस कारण जीव में असंगत परिणाम होते हैं। धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य, और काल द्रव्य, इनमें कोई असंगत परिणमन नहीं होता। उसका कारण है कि यह विभावरूप परिणमने की शक्ति नहीं रखता। तो जीव में विभावशक्ति है, जैसे कि पुद्गल में विभावशक्ति है। पुद्गल का भी अनेकाकार और व्यक्त ठंडा गर्म आदिक अनेक परिवर्तनरूप न बनना चाहिए, क्योंकि उसका भी कोई स्वभाव है और स्वभाव सदा एक रूप रहता है। लेकिन परिणमता है यह पुद्गल नानारूप। यह सांख्यवहारिक प्रत्यक्ष से स्पष्ट प्रतीत हो रहा है। तो वहाँ भी कारण यह है कि उन अणुओं में पुद्गल में विभावशक्ति है। जीव और पुद्गल ही क्यों विपरीतरूप परिणमते है, इसका कारण है कि विपरीतरूप परिणमने की उनमें शक्ति है। तो जब कुछ और विशिष्ट स्थितियाँ रहती हैं तब जीव में विभावशक्ति के कारण विभावरूप परिणमन होता है। विशिष्ट स्थितियों के मायने जो अनादि से परम्परा चली आयी, कर्मों का उदय होना और नाना भवों में कषायों में जीव का रहना, जिससे कि उसके उपादान की योग्यता भी विपरीत परिणमन की है। इन सब स्थितियों में यह जीव विकाररूप परिणमता है, क्योंकि इसमें विभाव है।**

**विभावशक्तिमय द्रव्यों का विश्लेषण** – भैया ! ध्यानपूर्वक सुनिये ये बहुत हित की बातें हैं ये सब। द्रव्य 6 जाति के होते हैं – जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल । इन 6 जाति के ही पदार्थ हैं ऐसे जो विकार रूप परिणमते है जीव और पुद्गल, उसमें भी पुद्गल कितना ही आकाररूप परिणमे उससे पुद्गल का क्या अहित है ? लकड़ी जल कर खाक भी हो जाय, जो लकड़ी पुद्गल है, काठ है, अचित्त है वहाँ लकड़ी को क्या आकुलता है ? क्या अशान्ति है? उस लकड़ी के कुछ इच्छा ही नहीं है । भस्म बन जाए तो ठीक, उसी रूप में रहे तो ठीक, यहाँ कोई विपदा नहीं है । एक जीव है ऐसा है कि वह यदि विकाररूप परिणमे तो उसे विपदायें हैं । तो क्या विपदायें हैं, यह स्पष्ट समझ में आ रहा है। अगर क्रोध करता है तो कितना अशान्त रहता, कैसी आकुलता जगती है, कैसा खुदगर्ज बन जाता है ? यह तो अनुभव में आयी हुई बात है । घमंड करता है। जीव तो एक चैतन्यभाव मात्र है, ऐसा भावमात्र है कि जिसकी दूसरे लोग पहिचान भी नहीं कर सकते । ऐसे ही चैतन्य भावमात्र आत्मा को बाहर से क्या मिलता है ? निमित्त दृष्टि से उत्तर हो तो बाहर से क्या मिलेगा ? विपदायें, विडम्बनायें, क्लेश, बरबादी । इस पर स्वभाव का जब परिचय नहीं है जीव को तो यह इन बाह्य प्राणियों में जो कर्मप्रेरित हैं, मलिन हैं, इन प्राणियों में अपने आप की प्रतिष्ठा चाहता है। अरे इस लोक का विस्तार तो देखिये कितना बड़ा है? इतने बड़े क्षेत्र में यदि किसी ने झूठी प्रशंसा कर दी तो उससे इस जीव को लाभ क्या मिला ? और वह प्रशंसा भी क्या ? एक अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए, अपनी कषाय शान्त करने के लिए किसी ने कुछ शब्द बोल दिया और यह सुनने वाला अपनी प्रशंसा सुनकर ऐंठ जाता है, अरे यह तीन लोक का विस्तार कितना बड़ा है? इतने बड़े विस्तार में थोड़ी सी जगह में अगर नाम हो गया तो वह नाम भी क्या है? वह भी मायरूप है । 3 काल कितना बड़ा है ? अनादि अनन्त । जिसका अन्त ही नहीं है। उसमें यह 10, 20, 50 वर्ष का समय क्या कीमत रखता ? कितने समय के लिए नाम और इतना समय भी क्या निरन्तर है? किसी ने दो चार माह में कभी कुछ कह दिया । और जीवों में भी देखो कितने जीव हैं ? अनन्त जीव हैं । उन अनन्त जीवों में से अगर गिनेचुने कुछ लोगों ने, जिनकी कि समुद्र के एक बूंद बराबर भी गिनती नहीं है, ऐसे कुछ लोगों ने कुछ कह दिया तो क्या ? तुझे तो यही चाहिए ना कि मेरी सब लोग प्रशंसा करें, वे तो सब हैं अनन्त जीव, वे तो जानते ही नहीं । तो जीवों की गणना भी जान लिया अनन्तानन्त । उनमें से कुछ जीवों ने कुछ प्रशंसात्मक बात कह दी तो क्या हुआ ? तो जब यह जीव अपने सही स्वरूप का परिचय नहीं कर पाता तब तक व्याकुल है, मूढ़ है, संसारी है ।

**अन्तः वास्तविकता का अध्ययन** – देखो – वास्तविकता जानने के लिए तो सोत्साह उद्यत रहना चाहिए । जीव का पुनीत मंगलमय स्वरूप है, किन्तु विभावपरिणमन हो रहा है अनादि से, विकारों में चल रहा है तो यह क्यों हो रहा, उसका यह प्रसंग चल रहा है। तो इन कषायों में कितना क्लेश है ? मायाचार तो ऐसी बुरी कषाय है कि इस जीव को मिलता भी कुछ नहीं, लेकिन भीतर में कुटिलता बनाये है, मन में कुछ और है, वचन में कुछ और है और करते कुछ और हैं, ऐसी कुटिलता जिनके अन्दर भरी है वे अशांत ही रहा करते

हैं। शान्ति पाने का उपाय न मिल पाने से वे गरीब और दुःखी रहते हैं। जो मायाचारी हैं, कषायवान हैं, श्रद्धाहीन हैं, मिथ्यात्वग्रस्त हैं उनको गरीब कहा जा रहा है। वे बेचारे दुःखी हैं। लोभ का रंग तो बहुत ही बुरा है। वह चलते फिरते, बैठते, सोते जागते, हर स्थितियों में लोभ के रंग में रहा करता है। उसे परिग्रह ही एक सर्वस्व दिखता है। यह सब परिग्रह हैं तभी हमारा बड़प्पन है, इज्जत है, जीवन है, ऐसा परिग्रह के साथ एकमेकपना चित्त में कर रखा है, कषायों में यह जीव कितना दुःखी है ? विकार में कष्ट ही कष्ट है। इस विकार से हटने की भावना जगनी चाहिए। अन्य बातों को आदर न देना चाहिए। एक ही काम है इस जीवन में करने का। स्वानुभव का आलम्बन, स्वानुभव का अनुचरण और स्वभाव की प्रतीति। बस यही मात्र एक उपाय है – अपना जीवन सफल करने का, अन्यथा तो जैसे अन्य जीव जीते हैं वैसे ही हम भी जी रहे हैं, पर इस जीवन से लाभ कुछ न पाया।

**सहजस्वभावी जीव पदार्थ में विभावशक्ति की उपपत्ति** – जीव के उस सहजस्वरूप की बात चल रही है जिसका आलम्बन करने से जीव का कल्याण होता है जीव का सहज स्वरूप है चैतन्यभाव। जिसमें आकुलता नहीं, आनन्द ही आनन्द बसा हुआ है उस स्वभाव की बात सुनकर जिज्ञासु प्रश्न कर रहा है कि आखिर इतना उत्तम स्वभाव होने पर भी विकार होता क्यों है ? समाधान दिया गया – विभावशक्ति के कारण। विभावशक्ति का अर्थ है - जिसके कारण किसी खास अवस्था के द्रव्य के सम्बंध से विपरीत परिणमन हो सके उसका नाम विभावशक्ति है। विभावशक्ति और भावशक्ति - ये दो बातें एक स्थल में आयी हैं। भावशक्ति के मायने पदार्थ का परिणमन होता रहे ऐसी शक्ति। भावशक्ति धर्मअधर्मआकाशकाल द्रव्य में है, जीव में भी है पुद्गल में है निरन्तर परिणमता है, ऐसी शक्ति को भावशक्ति कहते हैं। बस उसी भावशक्ति के ही चिन्तन क्षेत्र में कितनी बातें जोड़ की जोड़ी जा सकती हैं कि जीव और पुद्गल में परिणमने की शक्ति है। अन्य द्रव्यों से विशेषता यह है कि विकाररूप परिणमने की इनमें ही शक्ति है। यों विभावशक्ति और भावशक्ति को अलग - अलग न देखकर एक ही शक्ति को देखा और उसमें एक विशेषता बोल करके। यह विभाव, इस तरह से विभावशक्ति का परिज्ञान करें। आपको इस शंका का समाधान अपने आप मिल जायगा कि सिद्ध में, शुद्ध परमात्मा में विभावशक्ति का परिणमन हुआ है या नहीं और विभावशक्ति उस समय भी है या नहीं ? यह समाधान यों हो जाता कि शक्ति वह है भावशक्ति, परिणमता रहना, पर एक विशेषता बताने के लिए इस ही का नाम विभावशक्ति रख दिया। तब विभावशक्ति सदा है, नित्य है जीव में। भावशक्ति नित्य है ना ? भावशक्ति से विभावशक्ति को यहाँ जुदा नहीं समझना है। उस ही भाव की एक विशेषता है कि विभावरूप परिणमता है। देखिये – विभावरूप परिणम सकता था जो, उसमें भी विभाव शक्ति कही जायगी, विभावरूप परिणम रहा है जो, उसमें भी विभाव शक्ति कही जायेगी और विभावरूप परिणमता रहेगा जो, उसमें भी विभाव शक्ति कही जायेगी। जीव में ऐसा है कि अभी विभावरूप न परिणमे, तो भविष्य में विभावरूप न परिणमेगा, पर विभावशक्ति सदैव मानी जायगी। जैसे जीव में ज्ञानशक्ति, आनन्दशक्ति, श्रद्धाशक्ति आदिक अनन्त शक्तियाँ नित्य हैं इसी प्रकार विभावशक्ति भी नित्य है।

परमार्थदृष्टि से एक स्वभावी पदार्थ का एक समय में एक परिणमन –यहाँ बात चल रही है इस जिज्ञासा पर कि जब जीव के चैतन्यस्वभाव है तो उसका असंगत परिणमन क्यों होता है? इस सम्बंध में आश्चर्य तो यही हो जाता है कि जब जीव का स्वभाव चैतन्यमात्र है तो फिर ये विभावशक्ति आदिक कहाँ से आ गई ? जब जीव चैतन्य भावमात्र है तो बस जो है सो है । वस्तु स्वभावमात्र होता है, तब इसमें विभावशक्ति आयी कहाँ से ? और यही क्याये अनन्त शक्तियाँ जो बतायी जाती हैं वे भी इसमें कहाँ से आयीं ? जीव का स्वभाव है चैतन्यमात्र । अनेक शक्तियों का भेद आया कहाँ से ? वह है एक हैएक स्वभावरूप हैऔर एक परिणमन है। प्रतिसमय प्रत्येक पदार्थ काप्रत्येक जीव का एक ही परिणमन है । जैसे 5- 7 चीजें मिलकर शर्बत बन जाता है, शक्करपानीकालीमिर्चदूधबादामआदि मिलाकर ठंडाई बना ली जाती हैतो वे सभी चीजें एक रूप होकर ठंडाई बन गईउसका स्वाद भी एक है। यह स्वाद की बात तो स्थूलरूप से एक ही कही जा रही है । वहाँ भी बड़े सूक्ष्म स्कंध जुदे जुदे पड़े हैं, मगर स्वाद लेने वाला तो एक स्वाद लेकर मौज मान रहा है । अगर स्वाद लेते समय भिन्न -भिन्न स्वाद का परिचय हो तो उसमें मौज मनाने की बात नहीं आ सकती । जैसे वह स्वाद एक हैजैसे वह परिणमन एक है इसी प्रकार जीव का भी इस संसार अवस्था में भी प्रति एक एक समय में एक एक परिणमन है । भले ही जिनकी श्रद्धा बिगड़ जाती है, जिनका चारित्र बिगड़ जाता है जिनके क्रोध जग रहा है, जिनके अज्ञान बसा हुआ हैउनका विचित्र परिणमन हैपर जैसा भी वह परिणमन एक है ।

अवक्तव्य परमार्थ तत्त्व के प्रतिपादन में भेदकथन की समझ द्वारा जिज्ञासा का समाधान — मेरे तो एक समय में एक पर्याय हैएक बात हैबस जान लोदेख लोबोल नहीं सकतेवचन के अगोचर है । तो वस्तु में एक स्वभाव हैएक परिणमन हैएक बात है वह अखण्ड है उसमें ये अनन्त शक्तियाँ आयी कहाँ से ? यही पहिले एक अचम्भा है । अचम्भा है सो सही है । पदार्थ एक है, स्वभाव एक है परिणमन एक है, वहाँ भेद नहीं हैवास्तविकता ऐसी ही है । पर समझना है शान्ति का मार्ग बताना है, उसके लिए भेद दृष्टि करनी होगी समझाने के लिए उसमें शक्तिभेदपर्यायभेद सब बताना होगा । भेदव्यवहार बिना तो बताओ निश्चयनय का विषय कितना है? कह दो- आत्मा एक हैअखण्ड है । और अगर यही कहते रहोगे दिनभर तो लोग पागल मानने लगेंगे । कितना विषय है? समझाने के लिए भेद करना होगा । भेद करने की पद्धति दो भागों में बँट गई - गुण और पर्यायशक्ति और परिणमन । इस जीव को अगर कोई एक अस्तित्व आदिक साधारण धर्मों की दृष्टि में सारे विश्व को एक कह दें ऐसा भी कह सकते हैंऔर अनेक दार्शनिकों ने ऐसा कहा भी है । ब्रह्म एक सर्वव्यापक अपरिणामी है, लेकिन इस कथन से बात तो कुछ नहीं बनतीसमस्या हल नहीं होती । बताना ही पड़ेगा असाधारण धर्म। तो जीव को समझने के लिएअपने को समझने के लिए असाधारण धर्म कहना पड़ेगा । समस्त अचेतन पदार्थों से विलक्षण निज असाधारण स्वभाव है चैतन्यभाव । उस चैतन्यभाव काउस स्वभाव का कोई नाम नहीं है । चैतन्य नाम भी जो हम दे रहे हैं सो वह भी एक विशेषण है। चैतन्य प्रतिभास एक विशेषता का प्रतिपादन करने वाला है । वस्तु का कोई नाम ही नहीं होता । प्रथम तो यह बात अटक गई कि नाम रखे बिना आगे बढ़ा ही नहीं जा सकता । तो किसी मुख्य विशेषता के नाम पर हम

नाम रखते हैं फिर उस नाम से विशेष मानकर विशेषणों का प्रतिपादन करते हैं। बस यों समझने के लिए व्यवहारनय से उस अखण्ड चैतन्य तत्त्व में शक्तिभेद किया जाता है तब इस चैतन्यस्वभाव के अन्तर्गत अनेक शक्तियाँ हैंउनहीं शक्तियों में एक विभावशक्ति भी है। जीव में विकाररूप परिणमने की शक्ति और वह शक्ति नित्य है। उसके कारण बाह्य अनुकूल निमित्त मिलने पर जीव में विकारपरिणमन होता है लेकिन वह विकारपरिणमन जीव का स्वभाव नहीं है।

**विभावशक्ति की नित्यता मानने पर विभाव का अभाव न हो सकने की जिज्ञासा व उसका समाधान -** यहाँ चर्चा यह चल रही है कि जब जीव का स्वभाव विशुद्ध चैतन्यभावमात्र है तब फिर वहाँ विकारपरिणमन क्यों होने लगा ? इसका कारण बताया गया जीव की अनेक शक्तियों की भाँति एक विभावशक्ति भी हैजिस शक्ति के कारण अनुकूल निमित्त मिलने पर विकारभाव होते ही चले आये हैं। और वह विभावशक्ति जीव की शक्ति है अतएव नित्य है। इस चर्चा को सुनकर एक जिज्ञासा होती है कि जब विभावशक्ति नित्य है तब तो उसमें विभावपरिणमन सदा ही होते रहना चाहिए। फिर मुक्ति का अवकाश कैसे मिलेगा ? जीव की मुक्ति होना तो कठिन है, हो ही नहीं सकता। विभाव शक्ति है जीव में और वह माना गया नित्य, तो शक्ति तो अपना कार्य करेगी, विभाव शक्ति विभाव परिणमन करती रहेगी, फिर उसको मुक्ति कहाँ से प्राप्त हो। तो उसका समाधान यह है कि विभाव शक्ति के सम्बंध में ऐसा निश्चय रखिये कि परिणमन की शक्ति तो एक है। सभी पदार्थों में परिणमन करने की शक्ति पायी जाती है। जीव में भी परिणमन करने की शक्ति है। जिसका नाम है भाव शक्ति। अब भावशक्ति के कारण परिणमन करते रहने वाले जीव की एक यह विशेषता बताते हैं कि जीव पदार्थ विकार रूप भी परिणम सकता है। भाव शक्ति से तो यही संकेत मिला कि जीव पदार्थ परिणम सकता है। क्योंकि उसमें भाव शक्ति है, किंतु यह विशेषता अभी विदित नहीं हुई कि यह जीव विकाररूप भी परिणम सकता है। इस विशेषता से भी एक साथ जाहिर करने के लिए भावशक्ति के नाम से पहिले 'वि' शब्द जोड़ दिया, जिसका अर्थ है विभाव। लेकिन विभाव शक्ति होने पर भी जीव का विभावपरिणमन उपाधि के सान्निध्य में ही होता है। जब उपाधि में नहीं रहता तब विभावपरिणमन भी नहीं रहता। अर्थात् कर्मोदयरूप निमित्त उपस्थित होने पर विभावशक्ति से जीव में विकार – परिणमन होता है और जब निमित्त नहीं रहता, कर्मक्षय हो जाता है तब विभावशक्ति का स्वभावपरिणमन होता है।

**विभावशक्ति के स्वभाव और विभावपरिणमन के वाच्यों का स्पष्टीकरण -** यहाँ शब्द कथन के सामंजस्य में ऐसा कहना कुछ ठीक बैठेगाऐसी भावना रखकर शंका हो सकती है कि विभावशक्ति का स्वभावपरिणमन तो विभाव कहा जाना चाहिए। विभावशक्ति का स्वभाव क्या हुआ ? विभाव करना। विभावशक्ति में यही तो प्रकृति पड़ी है कि विभाव कर सके। तो शक्ति का स्वभावपरिणमन तो विभाव कहना चाहिए और विभाव शक्ति का विपरीत परिणमन स्वभावपरिणमन कहा जाना चाहिए, किन्तु ऐसी बात नहीं है। शक्ति का सम्बन्ध है जीव से। और शक्तियाँ जितनी होती हैं वे शुद्ध कही जाती हैं। शक्ति कोई भी अशुद्ध नहीं कहलाती, क्योंकि अशुद्ध शक्ति हो तो उन शक्तियों के पिण्ड को द्रव्य नहीं कहा जा सकता। इसलिए शक्ति में

शक्तिपन के नाते से तो शुद्धता है और यों शुद्ध शक्तियों का स्वभावपरिणमन शुद्ध परिणमन कहलायेगा । तो विभावशक्ति भी विभाव करने की शक्ति है, यही तो अर्थ हुआ । तो शक्ति में जो शक्तिपन का नाता है वह तो शुद्ध से सम्बन्ध रखता है। अब वह शक्ति है इसी किस्म की कि विकाररूप वह परिणमन कर सके । तो अब विकाररूप जो परिणमन होना है वह है शुद्ध परिणमन । तो जब शक्ति का शुद्धपरिणमन कहा जाने की विवक्षा होगी तो सभी शक्तियों का शुद्ध परिणमन स्वभावपरिणमन कहलायेगा । तो यों विभावशक्ति का शुद्ध स्थिति में जो परिणमन है वह स्वभावपरिणमन होता है । परद्रव्य के निमित्त न होने पर निरपेक्षरूप से शक्ति का जो परिणमन होता है वह शुद्ध परिणमन कहलाता है । यदि कर्मादिक कोई निमित्त नहीं हैं ऐसी स्थिति में कोई भी परिणमन होगा तो वह स्वभावपरिणमन होगा । तो विभावशक्ति का ही निमित्त के अभाव में शुद्ध परिणमन होता है ।

**परिणमन विधि की जिज्ञासा का समाधान** – परिणमन की बात और चर्चा सुनकर अब यह जिज्ञासा होती है कि परिणमन क्या है, कैसे होता है, किस विधि से होता है ? यह एक अलग ही विषय है । परिणमन के समय में सर्व बातों का निरूपण करना, तो परिणमन सम्बन्धी सारे रहस्य जानने के लिए सबसे पहिले यह जानना चाहिए कि परिणमन के कारण दो हुआ करते हैं । एक उपादान कारण और दूसरा निमित्त कारण । जो पदार्थ स्वयं परिणम रहा है, जिसमें परिणमन होता है, जो परिणमन को अपने निकट अपने आधार में कथंचित् तादात्म्यरूप से ग्रहण करता है ऐसा पदार्थ कहलाता है उपादान कारण । और उपादान कारण में होने वाले परिणमन से जो स्नेह करता है, मित्रता करता है, उसे कहते हैं निमित्त कारण । उपादान कारण अन्तरंग कारण है और निमित्त कारण बहिरंग कारण है। उपादान कारण के सम्बन्ध में भी दो बातें समझना है – एक तो ओघरूपता और दूसरा – समुचितरूपता । याने उपादान कारण दो तरह से विदित किए जाते हैं । एक ओघ उपादान कारण, दूसरा समुचित उपादान कारण । जैसे मिट्टी घड़े का कारण है, यों बात कहना यह ओघ उपादान कारण बताया । मिट्टी से तुरन्त घड़ा नहीं बन जाता । जब मिट्टी की पर्याय पिण्डरूप बनती है, जैसे कि मिट्टी सानकर उसका लोंधा बनाकर एक चाकपर चढ़ाया गया और चाक पर चढ़ाने के बाद उसे कुछ लम्बा किया, कुछ बीच में पोल करके, पसारा करके तो उसकी कुसूल पर्याय हो जाती है। उस कुसूल पर्याय के बाद घड़ा बन गया । तो घड़ा बनने से पहिले जो पर्याय है उस पर्याय में रहता हुआ द्रव्य कहलाता है समुचित उपादान कारण और एक वह द्रव्य सामान्य कहलाता है ओघ उपादान कारण । जैसे जीव के लिए कहा कि मुक्ति का उपादान कारण यह जीव स्वयं है । अर्थात् स्वयं अपने उपादान कारण से यह जीव अपने में मोक्ष अवस्था पायगा । तो उस मोक्षपरिणमन का समुचित उपादान कारण जीव मात्र नहीं, किन्तु मुक्ति से पहिले जो 14 वाँ गुणस्थान है वह है मुक्ति का समुचित उपादान कारण । और ऐसी बात जीव ही कर सकता है, अन्य द्रव्य नहीं कर सकता है। ऐसी साधारण पात्रता जिससे जाहिर होती है ऐसे जीव को मुक्ति का अंतरंग उपादान कारण कहना, यह है ओघ वर्णन । ओघ वर्णन से तो यह बात समझना चाहिए कि इस द्रव्य में ही ऐसी परिणति प्राप्त करने की योग्यता है, अन्य द्रव्य में कभी भी नहीं । और

समुचित उपादान कारण से यह बात समझी जाती है कि जब जीव इस तरह की अवस्था पा ले तब वह मुक्ति प्राप्त कर सकता है ।

**उपादान और निमित्त का अर्थ** – उपादान शब्द का अर्थ है – उप मायने अभिन्न रूप से और आदान मायने धारण करना । अर्थात् जो अभिन्न रूप से धारण करे उसे उपादान कहते हैं। अभिन्न रूप से पर्याय का जहाँ धारण होता है उसे कहते हैं उपादान। चूँकि द्रव्य अपने अपने पर्याय के सम्बन्ध में पर्याय से तन्मय होता है । इस कारण उपादान कारण वही कहलाता जिस द्रव्य में कार्य है, और निमित्त कारण वह कहलाता है कि जो कार्य से तो भिन्न हो याने जिसमें कार्य बताने की चर्चा की जा रही है उस कार्य के कारण से तो पृथक हो, याने उपादान रूप तो नहीं है, पर जिसकी अनुपस्थिति में यह कार्य न हो सके उन्हें निमित्त कहते हैं, हुआ क्या कि विकार परिणमन के होने वाले किन्हीं अन्य पदार्थों में स्नेह किया, मित्रता की, सहयोग हुआ उपस्थिति रूप, निज के कार्य के बनने रूप । ऐसा जिन - जिन पदार्थों की उपस्थिति में कार्य नहीं हो सकता वे पदार्थ सब निमित्त कारण कहलाते हैं । निमित्त शब्द का भी यही अर्थ है, निमित्त शब्द में तीन बातें पड़ी हुई हैं – उपसर्ग, धातु और प्रत्यय । उपसर्ग तो नि है, और धातु मि है, प्रत्यय कृदन्त का लगा हुआ है जिसका अर्थ है कि जो नियम से स्वीकार किया जाए उसे निमित्त कहते हैं । अथवा नियम से जो स्वीकृत हो, स्नेह प्रभाव का विषय हो उसे निमित्त कहते हैं । जो अंगीकार किया जाए अथवा जो स्नेह करे वह निमित्त है । उपादान में कार्य हो रहा है, जैसे जल गरम हो रहा है, अब उस जल को गर्म होने रूप कार्य में स्नेह कौन कर रहा ? इस कार्य का स्नेही कौन है ? अग्नि । तो अग्नि निमित्त कारण है । स्नेह दिखाने वाले उस कार्य में समर्थन करने वाला, पुष्टि करने वाला उस कार्य का सहाय अन्य द्रव्य निमित्त कहलाता है ।

**उपादान कारण व निमित्त कारण का निर्णय** – जितने भी कार्य हो रहे हैं उन सब कार्य में यह निर्णय मिलेगा, इसका उपादान कारण क्या है और निमित्त कारण क्या है ? जैसे जल गर्म हुआ तो उपादान कारण जल है और निमित्त कारण आग है । वहाँ भेद क्या जमाना कि निमित्त कारण तो बाहर ही रहता है, जल में भिड़ता नहीं है । अगर यह आग निमित्त जल में भिड़े तो आग स्वयं नष्ट हो जाय । तो यह आग निमित्त बाहर ही रहती, अलग ही रहती, परन्तु जल में स्वयं ऐसी बात पायी जाती है कि वह अग्नि का सन्निधान पाये तो वह अपनी शीत अवस्था को छोड़कर गर्म अवस्था में आ जाता है । बस कार्यों की यही पद्धति है सब जगह । जैसे जीव में कषाय भाव जगता है तो कषाय कार्य होने की विधि यह है कि उसका निमित्त कारण है कषाय प्रकृति का उदय । अनन्तानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरण आदिक क्रोध, मान, माया, लोभ ये कषायें प्रकृति बंध हैं । तो कर्म - प्रकृतियों का उदय होने पर जीव कषाय भाव करता है । तो वहाँ हमें क्या शिक्षा लेना है यह



कर्मोदय तो बाहर ही बाहर रहता है । आत्मा में भिड़ता नहीं, आत्मा से तन्मय होकर नहीं, आत्मा के परिणमन को भी करता नहीं, किन्तु वह तो स्नेही है । मित्र कहीं एक हो जाया करते हैं ? वे तो अलग ही रहते हैं। तो यों ही ये कर्मोदय बाह्य में हैं, बाह्यपदार्थ हैं, पद्धति यहाँ यह है कि जीव में ही ऐसी कला पायी जाती है कि यह जीव ऐसे कर्मोदय का सन्निधान पाये तो वह कषायरूप परिणम जाता है । देखिये- इस पद्धति में उपादान की स्वतंत्रता, निमित्त की स्वतंत्रता और उपादान निमित्त में परस्पर सम्बंध निमित्त नैमित्तिक भाव सब कुछ यथार्थ सिद्ध होता है। यहाँ किसी के एकान्त का आग्रह नहीं बन पाता । निहारते जाइये सब कुछ वस्तुओं को कि सभी में ऐसी कला पायी जाती है कि वे अनुकूल निमित्त को पाकर अपनी परिणति से उस - उस रूप परिणम जाते हैं ।

**निमित्त नैमित्तिक भाव और परिणमनस्वातन्त्र्य दोनों का विनिश्चय** - यहाँ हमें अपने आप पर अपनी गलती पर विशेष ध्यान देने की बात है, तब हम अपने आपका सुधार करेंगे और अपना कल्याण कर सकेंगे । यदि निमित्तार्थीन स्थितियां बनाये रहें, मैं क्या कर सकता हूँ ? ये कर्म ही सब कुछ करते हैं । दुखी करें, सुखी करें अथवा मोक्ष दिलायें, यह सब कर्मों की ही कृपा है, कर्मों के ही अधिकार की बात है । हम क्या कर सकते हैं, ऐसे निर्णय में इस जीव ने अपनी स्वतंत्रता पर, अपने स्वरूप पर दृष्टि ही नहीं की । तो उसका उत्थान ही क्या हो सकेगा ? तो इस वर्णन से जैसा कि अध्यात्म सूत्र में एक सूत्र कहा है-“निमित्तं प्राप्योपादानं स्वप्रभाववत्” अर्थात् निमित्त को पाकर उपादान अपने प्रभाव वाला होता है । देखिये इसमें सब तत्त्व आ गए । जिनमें से किसी भी एक तत्त्व से अगर मुख मोड़ लिया जाय तो सही परिज्ञान नहीं बन सकता है, न कल्याण का उपाय बन सकता है। यदि कोई ऐसे ही हठ करे कि निमित्त ही सब काम करता है तो अपने आपका सामर्थ्य स्वभावस्वरूप विदित न होने से यह जीव अपने में कभी सन्तोष, विश्राम, तृप्ति प्राप्त नहीं कर सकता । और ऐसे स्वरूप का स्पर्श हुए बिना इसे कभी मुक्ति मिल ही नहीं सकती । यदि कोई यहाँ यह हठ करे कि जीव ही अपनी योग्यता से अपने आप में कषाय आदिक विकार कर रहा है तो इस आग्रह में यह (कषाय आदिक विकार) स्वभाव की बात बन जायगी, क्योंकि निमित्त तो माना ही नहीं कि जब निमित्त का सन्निधान हो तब विकार होता है, न हो तो नहीं होता है, ऐसे निमित्त की बात न मानने पर और केवल कषाय कार्य के होने की यही विधि मानने पर कि जीव अपनी योग्यता से अपने में कषाय करता है तो यह कषाय स्वभाव बन जायगा, और फिर इस कषाय कार्य का कभी अन्त न आ सकेगा, यह नष्ट न हो सकेगा । कहने के लिए तो ऐसा कहने वाले के मन में यह निर्णय भी पड़ा रहता है कि निमित्त का सन्निधान पाकर यह कषाय करता है ।

**निर्णीत सर्वस्व के विवक्षित निश्चय में समीचीनता** - स्याद्वाद में जहाँ सप्तभंगी दिखाई गई है वहाँ सर्वत्र एक भंग बोला तो जा रहा है, लेकिन शेष भंगों का निर्णय पड़ा हुआ है । शेष भंगों का निर्णय रहे बिना एक भंग

का बोलना कुनय कहलाता है । तो केवल इसी एक को बोलकर, सुनकर उसका विरोध करें तो विरोध कर सकते हैं और फिर ऐसा विवाद कि कहीं समाप्ति नहीं हो सकती । हो रहा आजकल यही विवाद एक तत्त्वनिर्णय के क्षेत्र में समझदारों के बीच । जैसे किसी ने जो भी बात बोला, बस उसके अन्य अभिप्राय को न रखकर केवल उस वाक्य का ही अर्थ करके अन्य विवाद उपस्थित कर देना बस यही चीज चल रही है । यदि यह सोचकर चलें कि बात तो कही जायगी कोई भी एक, लेकिन कहने वाले के आशय में दूसरी बात भी है या नहीं ? यदि नहीं है-तो समझना चाहिए कि यह एकान्त है और आग्रह है। और अगर है तो कहने में एक बात आने पर भी एकान्त न मान लेना चाहिए । नयों का स्वरूप ही यह बताया गया है कि प्रमाण से ग्रहण किए गए अर्थ के एकदेश का वर्णन करना सो नय है । तो आशय से अपराध और निरपराधता की बात होती है । व्यवहार में भी आशय को ही प्रधानता दी गई है। यदि किसी मित्र का आशय सही नहीं है, यह निर्णय हो गया तो वह मित्र नहीं रहा उसका । और मित्र द्वारा कोई बरबादी होने पर भी, कोई नुकसान होने पर भी यदि यह विदित रहता है कि इसका आशय तो भला ही करने का था, तो इसका नुकसान सहते हुए भी द्वेष नहीं किया मित्र से । तो ऐसे ही वचनालाप में एकान्त एक की बात भी सुनने में आये, लेकिन आशय के पारखी जब उस वक्ता के पूर्वापर भाषण से या धर्म उसके पहिले के कथन से आशय विदित होता है कि यह अन्य धर्म, अन्य तत्त्वों का भी निर्णय बनायें रख रहा है तो उसे एकान्त का आग्रह नहीं हैं, कार्य होने के प्रसंग में इन शब्दों से पहिले अपना निर्णय बनायें कि निमित्त को पाकर उपादान अपने प्रभाव वाला होता है, यही विधि समस्त कार्यों की है । इस सम्बन्ध भी विदित होने पर यह जीव अपना उद्धार करने में समर्थ होता है । इस कारण यह निर्णय कर लेना आवश्यक है और इसमें यदि कुछ बुद्धि लगानी पड़े, कुछ श्रम और समय लगाना पड़े तो लगाना चाहिए । मनुष्य जीवन की सफलता तत्त्व ज्ञान से ही है । थोथी, निःसार, दिलचस्प बातों से कोई उद्धार की बात नहीं बन पायी है, इसलिए तत्त्व ज्ञान के लिए उत्थानवान व उद्यमी बनना चाहिए ।

**परिणमन के निमित्तकारणों का विश्लेषण**—परिणमन की विधि का प्रसंग चल रहा है । परिणमन, अवस्था, पर्याय, इसी भाव से कार्य होना, इन शब्दों से लोग कहते हैं । कार्य होना तो कोई बात ही नहींकुछ चीज , प्रचलित क पदार्थ है और उनमें उनका परिणमन होता है । कार्य शब्दप्रत्ये ? ही नहीं । कार्य नाम किसका दृष्टि के भाव में । जैसेमित्तहुआ है नि कुम्हार के व्यापार के निमित्त घड़ा बन गया तो घड़े को बताते हैं कि यह कुम्हार का कार्य है । किस निमित्त से यह कार्य बना , इस कार्य के बनने में कौन जीव निमित्त पड़ा, इस बात को आसानी से बताने के लिए कार्य शब्द से व्यवहार हुआ। वस्तुतक पदार्थप्रत्ये : हैं और उनका उनमें परिणमन होता है । पायें भी होते हैंकोई परिणमन कुछ निमित्त पाकर होते हैं और कोई बिना निमित्त । नहीं कुछ निमित्त के सिवाय अन्यजैसे जो स्वाभाविक परिणमन है उनमें काल द्रव्य । है और कालद्रव्य वहकालद्रव्य है और वह सर्वत्र साधारण निमित्त है । नैमित्तिक परिणमन में भी काल द्रव्य निमित्त है और

स्वभाव परिणमन में भी कालद्रव्य निमित्त है । काल द्रव्य कहीं भी हटा हुआ नहीं रह पाता । इस कारण जिसमें उपस्थिति और अनुपस्थिति का कोई भेद ही नहीं है, तब उसे निमित्त भी क्या कहें विश्लेषण की जानकारी के प्रसंग में । तो स्वाभाविक परिणमन निमित्त बिना होता है और वैभाविक परिणमन निमित्त की उपस्थिति में ही होता है। अब इसी बात को निश्चय दृष्टि से देखा जाय तो यह विदित होगा कि सभी कार्य निमित्त बिना होते हैं । जैसे क्रोध प्रकृति के उदय में जीव में क्रोध जगा । अब निश्चयदृष्टि से देखने की पद्धति तो यह है कि केवल जीव को देखें । जीव में जीव की बात देखें । तो वहाँ जो हो रहा है जीव में यह विदित किया गया और वह है अपने आपकी उस उत्पाद शक्ति के कारण जो होना ही था, होता ही रहता है परिणमन ।

**निश्चयनय की दृष्टि में अद्वैतपना** – देखिये – निश्चय की दृष्टि में सही परिणमन अपने आप होता है । वहाँ पर की दृष्टि ही नहीं होती है । इसे कहते हैं अद्वैतदृष्टि । निश्चयदृष्टि में अद्वैतदृष्टि होती है । केवल एक को देखना, दो को देखना ही नहीं । प्रत्येक पदार्थ अद्वैत है, केवल अपने आपके रूप से है, किसी अन्य के रूप से नहीं है । इसी बात को निश्चय दृष्टि से देखा तो सभी अद्वैत हैं। व्यवहार दृष्टि से देखा तो वहाँ द्वैत दिखा । किसी पदार्थ का अस्तित्व बताने के लिए पररूप से नास्तित्व की बात कही जाए तो इस कथन में भी द्वैत की सिद्धि हुई, पर निश्चय की दृष्टि में सर्व पदार्थ अद्वैत हैं और उनके सभी कार्य उन उनकी अपने आपकी परिणति से योग्यता से हुआ करते हैं, अतः अद्वैतदृष्टि से, निश्चय दृष्टि से सभी कार्य निमित्त बिना होते हैं । एक तो वहाँ किसी दूसरे की दृष्टि ही नहीं है, और फिर निर्णय में भी जायें तो किसी अन्य की परिणति से यहाँ परिणमन नहीं होता है । केवल स्वयं की परिणति से सारे परिणमन होते हैं ।

**मोह की दुःखरूपता** - इस संसार में दुःख केवल मोह का है । दुःख का और कोई आधार नहीं । पदार्थ के नाते से यह जीव द्रव्य अपने ज्ञानानन्दस्वरूप है । अपने स्वभावरूप है। इसका अपने आप में अपने ढंग से उत्पादव्यय होता रहता है । इसका क्या मतलब किसी दूसरे जीव से, किसी दूसरे पदार्थ से, लेकिन जब यह जीव अपने इस ज्ञान में नहीं होता, अज्ञानभाव में जाता याने परदृष्टि में जाता पर का ही अपने हित के लिए बड़ा महत्त्व समझता है, तब इसी कारण पर की उपासना, सेवा, संग्रह, परिणति में अपना उपयोग फंसाये रहता है । पर जैसा सोचा है वैसा होना उसके अधीन तो नहीं है । परपदार्थों का परिणमन उनके ही अधीन है । वहाँ जब जैसा निमित्त सन्निधान मिला, जैसा उपादान हुआ वैसा परिणमन होता रहता है । लेकिन मोहदृष्टि में यह जीव पर का सम्बंध बनाता है और मन के अनुकूल उनमें परिणमन न देखकर दुःखी होता है। तो मोह की सारी परिणतियों में यही पद्धति बनी हुई है।

ज्ञान से ही मोह दुःख का नाश – मोह का विनाश हो तो जीव का भला हो । उसका विनाश कैसे हो, वह सब इस ज्ञान से प्राप्त होगा । प्रत्येक पदार्थ निश्चयतः अपने में अपने परिणमन से ही अपना परिणमन करते हैं । अब निरखिये अपने आपमें कि मेरे द्रव्य का, मेरे सत्त्व का, मेरा किसी अन्य पदार्थ से कोई रंच भी सम्बंध है क्या ? कल्पना से तो यह सम्बन्ध बनाता है तो यह इसकी उद्दण्डता है, पर वस्तुतः उसका किसी द्रव्य से कोई सम्बन्ध है क्या ? निश्चय करके देख लीजिए । जिनको माना है कि यह मेरा पुत्र है, मेरी स्त्री है, मेरा घर है आदिक, उन परपदार्थों से भी कोई सम्बन्ध नहीं, कोई वश नहीं, पर फंसाव उनमें बहुत अधिक बना रखा है । जैसे मकड़ी खुद ही अपने मुख से अपना जाल पूरती है और दुःखी ही उसमें फंसी हुई बैठी रहती है, इसी तरह यह मोही प्राणी भी खुद की कल्पनाओं से एक मोह का जाल पूर लेता है और उनमें ही फंसा रहता है । यह एक मोटी बात का ही दृष्टांत दिया गया । वह मकड़ी जो खुद के ही मुख से जाल पूरती है वह उस जाल में फंसी है अथवा नहीं, यह तो अलग चीज है पर देखने में तो यों ही लग रहा है कि उसने अपने ही मुख से अपना जाल निकाला और उसमें फंस गई । दृष्टांत में कुछ भी हो मगर दाष्टति में यह बात पूर्णरूप से है । ऐसे ही यह जीव अपने आप में से परदृष्टि का जाल निकालता है और परदृष्टि का जाल पूरता है और उसमें कितना फंसाव बना लिया है ? परवस्तुओं से स्नेह लालच इज्जत आदिक फंसाव बना लिया है । वस्तुतः यह जीव है अपने स्वरूपमात्र और अपने स्वरूप में अपना परिणमन करता हैकेवल इतनी ही बात है इसमेंयह बात जब विदित होगी तो यह मोह कलंक मिटेगा । यह कलंक खुद को खुद ही मिटाना पड़ेगा । इसमें दूसरा कोई मदद न दे सकेगा । जिनके आत्मकरूणा जगी है वे इस ओर उद्यम करते हैं और अपने पौरुष से अपना काम बना लेते हैं। खुद का ही मनन चिन्तन ध्यान भावना अपने आपका उद्धार करने में समर्थ होगा । यह सब उपाय हमें ज्ञान के बल से मिलेगा । उस ही ज्ञान की यहाँ चर्चा की जा रही है ।

परिणमन का प्रयोजन सत्त्व बना रहना मानने में मुक्ति के उपाय का निश्चित लाभ - यहाँ परिणमन निरखा जा रहा है कि प्रत्येक परिणमन पदार्थ में उसके अपने आपके सत्त्व के कारण हो रहा है । उस होने का प्रयोजन क्या ? जिस पदार्थ में जो परिणमन हो रहा है उसका लाभ वही पदार्थ उठायेगा, दूसरा नहीं । उसका लाभ क्या ? उसका वास्तविक लाभ तो यही है कि उसका सत्त्व बना रहना । परिणमन ना हो तो सत्त्व नहीं रह सकता । तो अपना सत्त्व कायम रखे रहनाबस इतना ही प्रयोजन है पदार्थ में जो परिणमन होता है उसका पुद्गल में यह बात स्पष्ट है । अरे यह पुद्गल किसी भी रूप परिणमन गए जल गए, पल गए आदि तो ये सब परिणमन किसलिए हुए ? अपना सत्त्व रखने के लिए ।

अथवा उस सत्त्व की ऐसी ही प्रकृति है कि उसमें उत्पादव्ययध्रौव्य ये तीन बातें होती ही हैं । वहाँ प्रयोजन का कोई परिणमन ही नहीं है और कोई समझना चाहे तो यही जानें कि ये परिणमन रहे हैं तो अपने

आपका सत्त्व रखने के लिए परिणम रहे हैं इससे आगे उनका क्या मतलब ? पुद्गल में यह बात विशेषतया स्पष्ट समझ में आ जाती है । यह पदार्थ जल गयाराख बन गया तो किसलिए राख बन गया ? बस अपना सत्त्व रहता है । इसके कायम रहने की विधि ही यही है कि वह पदार्थ परिणमन करता रहता है । पुद्गल में यह बात भली प्रकार जान ली गई कि इसका परिणमन इसके सत्त्व के लिए है । बस यही बात तो सब में है । मुझमें भी यही होना चाहिएसो ऐसा ही हो रहा है पर मानते नहीं । मेरा जो परिणमन हो रहा है वह किसके लिए ? अपने आपका सत्त्व बनाये रहने के लिए इससे आगे और कुछ प्रयोजन न होना चाहिए थापर यह जीव इससे आगे अपना प्रयोजन सोचता हैक्योंकि इसमें ज्ञान है ना । उसका दुरुपयोग कर रहा है । अपने परिणमन का प्रयोजन कुछ और सोच रहा है । यों बनेगा यों मेरी बात बनेगी यों हो जायगा लोग यों मुझे समझ लेंगे कितने ही इसने प्रयोजन समझ लिए हैं बस यही भूल है और जिसके कारण यह जीव दुःखी रहता है ।

**परपरिणमन का विकल्प बनाये रहने में दुःख विनाश की अंशभवता —** और भी सोचिये यह दुःख कैसे मिटे ? इन पदार्थों का परिणमन करने का विकल्प बनाये रहने में क्लेश नहीं मिट सकता । जैसे कोई जिन्दा मेंढक तराजू में रखकर तोलना चाहे तो वे न तौले जा सकेंगे कारण कि वे चंचल होते हैं, उछल जाते हैं। कुछ मेंढक तराजू पर रखे जायेंगे, कुछ रखने के लिए तत्पर होंगे कि उनमें से कुछ मेंढक उछल जायेंगे, वे तौले न जा सकेंगे। इसी प्रकार परपदार्थों के परिणमन करने का विकल्प बनाकर अपने को आराम में पा लेना मुश्किल है।

अब सत्य बात को निरखियेअपने आपके तथ्य को देखिये - मैं हूँ और परिणमता रहता हूँ । उस परिणमन का प्रयोजन है उसका सत्त्व बना रहनाइसके आगे कोई प्रयोजन नहीं है । स्वरूप दृष्टि करके इसका निर्णय बना लीजिए । फिर इसका लाभ भी स्वयं ही पा लिया जायगा । तो जब निश्चयदृष्टि देखने चले तो यही मिलेगा कि प्रत्येक पदार्थ अपने आपके स्वरूप से परिणमता है। कोई दूसरा पदार्थ उस परिणमन में सहयोग नहीं दे रहा कि कोई दूसरा मिलकर भी कुछ परिणमन कर दे । सहयोग देने का तो यही मतलब होता है कि कोई परिणमन यदि 100 डिग्री रूप में है तो यह उपादान 80 प्रतिशत में परिणम जाय और निमित्त 20 प्रतिशत का परिणमन कर देपर ऐसा नहीं होता । पूरा पदार्थ उसकी ही शक्ति सेउसके ही श्रम से होता है, वह दूसरे निमित्त के संग से नहीं होता । कहीं ऐसा भी विदित हो रहा हो - जैसे घड़ा बनाने में कुम्हार को बड़ा श्रम करना पड़तापसीना भी आ जाता । खूब काम कर रहा है वहलेकिन उस कुम्हार का परिश्रमकुम्हार का कामकुम्हार का प्रभाव कुम्हार में ही हुआ । उस कुम्हार का निमित्त पाकर जो मिट्टी में फैलाव का परिणमन हुआ, घड़ा रूप परिणमन हुआ । वह मिट्टी के ही परिणमन से होता है । उसमें कुम्हार का परिणमन मिला हुआ नहीं है । प्रत्येक पदार्थ निश्चय दृष्टि से अपने आप में अपना परिणमन करता है ।

निमित्तनैमित्तिक भाव होने पर भी परिणमनस्वातन्त्र्य का दर्शन - हाँ अब जरा बाहर की ओर झाँककर विचार करिये- इन पदार्थ का स्वभाव से तो यह परिणमन न था । हुआ विपरितपरिणमन । क्यों हुआ ? इसलिए कि पास में ही दूसरा पदार्थ था, उस वातावरण में वह पदार्थ प्रभावित हो गयाबस वह पदार्थ उस रूप परिणम गया तो इसमें यह कार्य बनने का निमित्त का अंगीकारपना थाबस इसी वजह से इसका निमित्त में उपचार किया गया है और व्यवहार यों बन बैठा कि देखों अमुक पदार्थ ने अमुक दूसरे पदार्थ का यों काम किया है। वस्तुतः प्रत्येक पदार्थ अपने में अपना ही काम करता है । कितनी ही विकट तेज लड़ाई हो रही हो और वहाँ दांव पेंच के प्रसंग भी चल रहे हैं दबाव प्रभाव सब कुछ चल रहे हैं, इतने पर भी जिस अवयव का जिस हिस्से का जो परिणमन हो रहा वह उसके परिणमन से हो रहा है । बड़े बड़े इंजन यंत्र होते हैं जैसे रेल का ही इंजन उदाहरण में ले लो । वह बड़ी तेजी से चल रहा है। वहाँ ऐसा लगता है कि देखो इस इंजन को आदमी चला रहा है । व्यवहार में ऐसा कहा भी जाता है । और वह आदमी उस इंजन के चलाने में निमित्त है भी अवश्य । उस निमित्त की उपस्थिति में ये सब परिणमन बन रहे हैं लेकिन निश्चयदृष्टि से देखो तो वह पुरुष तो केवल अपने आप में विकल्प कर रहा है । उस पुरुष के द्वारा हस्तादिक का व्यापार किये जाने पर प्रत्येक पुर्जे में परिणमन हो रहा है पर वहाँ ऐसा ही निमित्तनैमित्तिकसम्बन्ध है कि अमुक पुर्जे का अमुक क्रिया का निमित्त पाकर अमुक चीज इस तरह से परिणम जाय ।

दृष्टि के एकान्त में तत्त्व निर्णय से च्युति - देखिये- दृष्टियाँ दो है- निश्चयदृष्टि और व्यवहारदृष्टि अर्थात् स्वरूपदृष्टि और सर्वतोमुखी दृष्टि । दोनों ही बातें विदित होती हैं और दोनों से ही यथार्थ निर्णय हो पाता है और दोनों निर्णय में लाभ है । जो लोग अपने कल्याण का रास्ता निकालने के लिए केवल निश्चय दृष्टि का ही आग्रह करते हैं और यही पसंद है यों ही निरखा । प्रत्येक पदार्थ निमित्त के बिना अपने आपकी योग्यता से परिणमन करता है । कोई उनसे पूछ ही बैठे कि बतलाओ-फिर निमित्त नाम है किसका ? जो कि शास्त्रों में निमित्त शब्द दिया है । तो उनका उतर होता है कि अपनी योग्यता से अपने आप में परिणमन कर रहे हुए पदार्थ के पास उस समय जो सामने मौजूद होउस पर निमित्त का आरोप किया जाता है । लेकिन आग्रह में उत्तर न बनेगा । तब पुनः प्रश्न होगा कि जब घड़ा बन रहा है उस समय तो अनेक पदार्थ मौजूद हैं । वहाँ गधा भी खड़ा है बच्चे लोग भी खेल रहे हैं तो क्या वे सभी निमित्त बन जायेंगे ? तब बोलना पड़ेगा कि नहीं । अनुकूल निमित्त उपस्थित होने पर जो उपस्थित हों उनमें निमित्त का उपचार किया जाता है । तो अनुकूल शब्द का अर्थ जब पूछा जाय तो कुछ भी कहा जायगा आखिर निष्कर्ष यही निकलेगा कि योग्य निमित्त का सन्निधान पाकर उपादान अपने प्रभाव से प्रभावित होकर परिणत होता है। तब निश्चय एकान्त की बात पूर्ण निर्णय में नहीं आ सकती । कोई व्यवहार एकान्त करके यह कहे कि परिणमने वाले पदार्थ क्या करेंगे ? जिस निमित्त की बरजोरी होगी वैसा परिणमना पड़ेगा । कुम्हार तो मिट्टी को सानकर चाकपर धरकर फैलायेगा घड़ा बनना ही पड़ेगा तो उपादान बेचारा क्या करेगा ? सब कार्य निमित्त ही करता है, निमित्त ने ही किया । तो वह निमित्तभूत पदार्थ कितने क्षेत्र में है, क्या है ? उसमें से क्या किया ? क्या बतायें, क्या

परिणमन किया ? और निमित्त ने ही किया तो किसी अन्य पदार्थ से घड़ा क्यों नहीं बना लिया ? मिट्टी से ही क्यों बन पाया ? कपड़े से बन जाय, पत्थर से बन जाय, किसी आदमी का ही बना दे, अथवा किसी चीज की भी क्या जरूरत है? निमित्त बना दे, ऐसा फूँक लगा दे कि असत् का भी सत् बन जाय ? कोई उत्तर आयेगा क्या ? तो किसी एक आग्रह में सही निर्णय नहीं आ पाता ।

यथार्थ निर्णय के बाद निर्विकल्पतानुभव के निकट ले जाने वाली दृष्टि का आश्रयण – सही निर्णय करने के बाद जिस किसी भी एक दृष्टि को हितकारी समझा, जो रुचि का विषय बना, अब उसकी प्रधानता लेकर उसमें रम जाय, यह बात उसके ही बन सकती है निःशंक होकर जो सब ओर से निर्णय किए हुए है। निश्चय और व्यवहार दोनों दृष्टियों से परिणमन के मर्म का जिसने परिचय पाया है वह निःशंक रह सकेगा, क्योंकि ज्ञान प्रकाश उसने पूरा पाया । अब उसकी यह दृष्टि बनती है कि किसी परिणमन के विषय में हम निमित्त पर दृष्टि डालते है, हमारा उपयोग स्थिर नहीं होता, रम नहीं पाता, यत्र –तत्र भटकता है, हम अमीर नहीं बन पाते । जब हम ऐसा निरखने लगते हैं कि यह है पदार्थ, यह अपने स्वरूप में अपने परिणमन में चला जा रहा है । ऐसा निरखता रहे तो थकान नहीं होती । विश्राम मिलता है, धीरता प्राप्त होती है और निर्विकल्प के निकट का यह परिज्ञान है । लोग निश्चय दृष्टि की प्रधानता करें और अपने आप का कल्याण करें, मगर ऐसी प्रधानता कर सकने का अधिकार उन्हें ही है जो निश्चय और व्यवहार दोनों दृष्टियों से यथार्थ निर्णय करके निःशक्य निःशंक होते हैं । ऐसे ज्ञानी पुरुष जिन्होंने परिणमन का मर्म भली प्रकार निर्णीत किया है तो कोई व्यवहार दृष्टि की प्रधानता से भी स्वरूप का स्पर्श कर लेते हैं । ये क्रोधादिक कषायें जगी हैं, ये कर्मों के उदय का निमित्त पाकर जगी हैं । ये औपाधिक भाव हैं, ऐसा बनना जीव का स्वभाव नहीं है । जीव का स्वभाव तो चैतन्यमात्र है । ये क्रोधादिक भाव जीव के स्वभाव नहीं है, ऐसा परिज्ञान कौन दिला रहा है ? आखिर यह ज्ञान तो हितकारी है ना ? जीव के क्रोधादिक नहीं है । क्रोधादिक भाव जीव का स्वभाव नहीं है । यह शिक्षा व्यवहारनय से दिलाया है। व्यवहारनय बताता है कि ये कषायें निमित्त से हुई हैं, ये निमित्त के कार्य हैं, इनका स्वामी निमित्त है और वैसे भी देखो तो स्वामी तो जुदा ही हुआ करता है। पुस्तक का स्वामी कौन ? विद्यार्थी । इस चौकी का स्वामी कौन ? अमुक पुरुष । इस नौकर का स्वामी कौन ? अमुक आदमी । देखो ना, स्वामी अलग ही कोई हुआ करता है । एक ही कोई अद्वैत स्वामी नहीं । इस मकान का स्वामी मकान, ऐसा कहने वाला कोई कहाँ मिल रहा ? और ऐसा व्यवहार भी कहाँ चल रहा ? तो मालिक स्वामी का व्यवहार वहाँ होता है जहाँ दूसरा कोई हो ? इन क्रोधादिक कषायों का स्वामी कौन ? निमित्त कर्मोदय । लो इस व्यवहार दृष्टि ने इस विभाव को निमित्त के पास फेंक दिया । अब वहाँ देखें तो क्या रह गया ? स्वभाव । इस विभाव दृष्टि को भी कषाय विकार में लगा दिया । तो ज्ञानी पुरुषों के लिए सब जगह भला है, और एकान्त के आग्रही पुरुष तो मूल में अन्धकार में हैं, उनका ज्ञान प्रकाश सही नहीं है, फिर ये कैसे अपने प्रयोजन और उद्धार का मार्ग बना सकेंगे ? प्रधान पद्धति तो यह है कि निश्चय और व्यवहार से परख करके

व्यवहारनय का विरोध न कर, उसे गौण करके निश्चयनय का आलम्बन करके एक अद्वैत भाव में उतरे, पर यह बात वही कर पायगा जिसने प्रमाण से सर्वतोमुखी निर्णय किया है ।

**विभावपरिणमन के निमित्तों की चर्चा-** परिणमन के प्रसंग की बात चल रही है कि पदार्थों का परिणमन होता है तो उसमें निमित्त कितने पदार्थ तक हो सकते हैं ? तो देखिये परिणमन में कालद्रव्य तो साधारण निमित्त है। प्रत्येक पदार्थ के परिणमन में चाहे वहाँ स्वभाव परिणमन हो अथवा विभावपरिणमन हो, कालद्रव्य तो निमित्त होगा ही । अब विभावपरिणमन में निमित्त कितने होते हैं, इस पर विचार करना आवश्यक है । स्वभावपरिणमन में कालद्रव्य के सिवाय अन्य कोई निमित्त नहीं होता, क्योंकि यदि अन्य कोई पदार्थ निमित्त बन जाय तो वह परिणमन स्वभावरूप न रह पायगा, वह किसी विकार और विभावरूप रहेगा । तो स्वभावपरिणमन में याने कोई पदार्थ सही स्वभावरूप से परिणमे, उसमें अन्य निमित्त नहीं हुआ करते । विभावपरिणमन में अनेक निमित्त होते हैं। विभावपरिणमन का अर्थ है कि पदार्थ का स्वभाव तो है और कुछ, बन रही है बात और कुछ ।

जैसे आत्मा का स्वभावपरिणमन तो है केवल अरंहत सिद्ध जैसी वीतरागता व सकल-ज्ञाता की परिणति और विभावपरिणमन है कषाय, मोह, अज्ञान । यह स्वभाव से उल्टी बात है । तो स्वभाव से विपरीत परिणाम हुआ, किन्तु उस स्वभाववान द्रव्य में सम्भव हुए विपरीत परिणमन को विभावपरिणमन कहते हैं । तो विभावपरिणमन में अनेक द्रव्य निमित्त होते हैं । जैसे घटकार्य हो रहा हो तो घट कार्य में कुम्हार, चक्र, डंडा, (जिससे घुमाया जाता है) आदि ऐसे अनेक कारण होते हैं अथवा जीव में समझिये – जीव में जो कषाय आदिक विभावपरिणमन होते हैं उन परिणमनों में कर्म, शरीर और अन्य बाह्य पदार्थ ये सब निमित्त होते हैं । तो कोई पदार्थ यदि विभावरूप परिणमे, विकाररूप रहे तो उसमें निमित्त अनेक होते हैं, तो यहाँ निमित्तों की बात कही जा रही है। उन निमित्तों में यह सोचना चाहिए कि पुद्गल पुद्गल में जो परस्पर का निमित्तपना है वह तो सब सही निमित्त है और जीव के विकार में कषायों में निमित्त तो कर्म का उदय है, बाकी सारी चीजें निमित्त नहीं कहलाती, किन्तु आश्रयभूत कहलाती है अथवा कल्पना के विषयभूत कहलाती हैं।

**निमित्त और आश्रयभूत पदार्थ का रहस्य समझे बिना विवाद की शान्ति की कठिनता – भैया !** निमित्त व आश्रयभूत की बात समझ लेना बहुत जरूरी है, जिसके समझे बिना आजकल के उठे हुए अध्यात्मवादों का समाधान न मिलेगा । हठ में जो जिस तरह कहता आया है वह उस तरह कहता ही रहेगा, उसका अन्त नहीं आ सकता, न विवाद समाप्त हो सकता क्योंकि शब्द नाना हैं । कहने में बात एक आती है, उसी को पकड़ मरोड़कर कितने ही विवाद उठाये जा सकते हैं, पर अपने लिए यदि सत्य समझना हो तो उसे दो भागों में बाँटें – निमित्त और आश्रयभूत । क्रोध भाव उत्पन्न होता है तो उसमें निमित्त तो है क्रोध



प्रकृति का उदय और आश्रय है कुछ मनुष्य, कुछ अन्य जानवरों की करनी अथवा कोई अजीव पदार्थ है बिगड़ गया, प्रतिकूल आ गया तो ये सब बाह्य पदार्थ आश्रयभूत हैं। लोग यों शंका तभी कर देते हैं कि देखो निमित्त कुछ नहीं करता। एक मुनिराज को कोई गाली दे रहा है तो मुनिराज को क्षोभ नहीं आता, तो उस गाली निमित्त ने कुछ किया तो नहीं है, लेकिन वे यहाँ भूल खाते हैं। गाली देना या किसी मनुष्य के द्वारा उपद्रव होना यह निमित्त नहीं है, किन्तु आश्रयभूत है। आश्रयभूत पदार्थ के होने पर कार्य होता भी और नहीं भी होता। यदि आश्रयण हो तो कार्य सम्भव है और कोई उसका आश्रयण ही न करे तो कार्य कहाँ से होगा, पर निमित्त में यह बात नहीं है। मुनिराज के अनन्तानुबंधी और अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण ये 12 प्रकार की कषायों का विपाक नहीं हैं अतएव उनकी योग्यता मंद कषाय की है। सो वहाँ ये गाली गलौज उपद्रव आदि कुछ भी क्षोभ के लिए आश्रय नहीं बन पाते। तो वहाँ इस क्षोभ का निमित्त नहीं है और जितना वहाँ निमित्त है उसके अनुकूल वहाँ भी कषाय पायी जाती है। तो जीव के विभावपरिणमन में निमित्त है कर्म का उदय, और बाकी बाहरी सचेतन अचेतन पदार्थों का सम्बंध होना ये सब हैं आश्रयभूत बातें। पुद्गल में यह बात नहीं पायी जाती कि किसी निमित्त के होने पर वह कार्य न करे, उपादान में योग्यता है और निमित्त की उपस्थिति है तो कार्य चलता ही रहेगा। जैसे घड़ी है, घड़ी शुद्ध साफ है पेंच पुर्जे सही हैं, ठिकाने के लगे हुए हैं, उसमें चाभी भर दी जाय तो चलती रहेगी, वहाँ धोखा नहीं मिलता, लेकिन यहाँ जीव के किसी काम की बात कह दी जाय और वह कह भी दे कि मैं यह काम इतने समय में करूँगा और वह कर न सके, कोई भूल हो गई, बीच में कोई विघ्न आ गया, यों अनेक बातें बन जायेंगी। तो अन्तर क्यों आया पुद्गल में और जीव में? पुद्गल के लिए जितने निमित्त मिलेंगे और उन निमित्तों में जो कार्य बन सकता है वह बनता रहता है, पर जीव में यह बात नहीं देखी जाती। अनेक साधन मिलने पर भी काम हो या ना हो। यह अन्तर यों आया कि जीव के विभिन्न परिणमन में कर्म की अवस्था ही विशेष निमित्त है अन्य बाह्य साधन आश्रयभूत कहलाते हैं।

**निमित्त और आश्रयभूत पदार्थों का उदाहरणपूर्वक स्पष्टीकरण** – जैसे जीव अनेक बार समवशरण में भी गया, वहाँ साक्षात् अरहंतदेव का उपदेश भी सुना, दिव्यध्वनि से भी कर्ण पवित्र किया, लेकिन अनेकों को सम्यक्त्व नहीं होता। वहाँ लोग शंका करने लगते हैं कि देखो निमित्त कुछ कार्य नहीं करता, निमित्त की कोई आवश्यकता नहीं। काम हो जाय तो उसे निमित्त कहना और काम न हो तो निमित्त न कहना। समवशरण में यह जीव गया और वहाँ सम्यक्त्व न हुआ तो समवशरण निमित्त न रहा। अगर सम्यक्त्व हुआ तो समवशरण को निमित्त कह देंगे। भैया ! ऐसी बात नहीं है, समवशरण सम्यक्त्व का निमित्त नहीं है और जो भी साधन बताया है कि वेदना का अनुभव या मूर्ति के दर्शन या जाति स्मरण ये सम्यक्त्व के साधन हैं। पर यथार्थ शब्दों में कहा जाय तो ये सब सम्यक्त्व के निमित्त नहीं हैं। किन्तु सम्यक्त्व के आश्रयभूत हैं। सम्यक्त्व का निमित्त तो अनन्तानुबंधी चार कषाय प्रकृति और दर्शनमोह की 3 प्रकृतियाँ,

इनका उपशम, क्षय, क्षयोपशम है, ऐसा होने पर सम्यक्त्व होता ही है, पर समवशरण में पहुंचना यह सम्यक्त्व का आश्रयभूत है, निमित्त नहीं है। आश्रयभूत में तो दोनों बातें बनती हैं कि आश्रयभूत होने पर भी कार्य हो या ना हो, वह किसी के लिए आश्रयभूत बना, किसी के लिए नहीं बना। उपस्थित रहने से क्या होता? पर निमित्त में यह बात नहीं है। निमित्त होने पर और जहाँ ऐसे कर्म निमित्त जिसके लगे हैं वहाँ योग्यता भी वैसी रहती है तो उपादान में योग्यता होने पर उसके अनुकूल कार्य होगा ही। कभी कभी यह भी शंका की जा सकती है कि देखो 10 वें गुणस्थान में लोभकषाय का उदय तो है, सूक्ष्म लोभ पाया जाता ना, मगर उनका बंध नहीं हो रहा। वहाँ निर्जरा की रूकावट नहीं हो रही तो वहाँ बात यह है कि वहाँ जघन्य शक्ति का उदय है और जघन्य शक्ति वाले कर्मों के उदय होने पर उसके अनुकूल वहाँ व्यक्त कार्य नहीं हो पाता। तो वह निमित्तनैमित्तिक भाव से अलग बात न रही। जो जैसे शक्तिसम्पन्न निमित्त को पाकर कार्य होता है वह वैसे शक्तिसंपन्न निमित्त को पाकर होगा। प्रयोजन यह है कि जीव के जितने विकारपरिणमन होते हैं उन परिणमनों में निमित्त तो है कर्मों की अवस्था और आश्रयभूत अन्य समस्त पदार्थ। यदि निमित्त हो तो आश्रयभूत पदार्थ भी आश्रय बनकर कर्मबन्ध के कारण बन जाते हैं। और निमित्त न हो तो दूसरों का आश्रयभूत रह जाय, पर निमित्त रहित इस जीव के वे पदार्थ आश्रयभूत नहीं बन पाते हैं। वे बंध के साधन नहीं हो पाते।

**निमित्तनैमित्तिक भाव और परिणमनस्वातन्त्र्य** – निमित्तनैमित्तिक भाव की बात समझ लेने पर अब इस ओर दृष्टि दीजिए कि निमित्त का द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव कुछ भी उपादान में नहीं पहुंचता। निमित्त का सहयोग इतना ही है विभावपरिणमन होने में किसी निमित्त की उपस्थिति मात्र रहना, इससे आगे इस कर्मोदय में, इस कर्म अवस्था ने जीव प्रदेश में कुछ नहीं किया। यह जीव स्वयं इस योग्यता का था तो निमित्त सन्निधान में यह स्वयं अपने आप में विकाररूप से परिणम गया है। **निमित्तनैमित्तिक भाव भी विधिवत् होने का नियम और निमित्त का उपादान में कुछ भी न किया जाने की दृष्टि**, ये दो बातें जिनके चित्त में स्पष्टतया रहती हैं वे पुरुष एक प्रबल ज्ञानी हैं। नहीं तो अनेक लोग इस डर के मारे कहीं उपादान परतंत्र न कहलाने लगे, निमित्त को निमित्त ही नहीं कहते, और चूँकि सिद्धान्त में निमित्त शब्द का जिकर है इसलिए उससे मुकर भी नहीं सकते। तब उन्हें कहना पड़ता है कि निमित्त कुछ नहीं करता। चीज जिस समय जिस रूप परिणम जाती है, उस समय सामने जो चीज हाजिर हो उस पर निमित्त का आरोप होता है तथा इस डर से कि कहीं उपादान को स्वतंत्र कह दिया तो उपादान में फिर विभावपरिणमन न हो सकेगा, यह संसार की बात न बतायी जा सकेगी, सो इस कारण से निमित्त की प्रधानता करके कह देते हैं कि उपादान क्या करेगा बेचारा? सब कुछ निमित्त ही करता है। उपादान क्या है? है, उसमें तो काम बनता है, इतनी ही बात है, पर करने वाला कौन? परिणमाने वाला कौन? वह निमित्त। देखो – अग्नि निमित्त न हो तो पानी गर्म कैसे हो जायगा? यों अनेक उदाहरण देकर इस प्रकार से बोल देते हैं कि काम तो निमित्त

का है। निमित्त ही करता है। ये सब दोनों ओर की कमज़ोरियाँ हैं। उपादान अपने आप में कैसा स्वतंत्र है ? जिस किसी भी रूप परिणमे, मात्र अपनी परिणति से ही परिणमता है। उपादान निमित्त का द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव कुछ भी ग्रहण नहीं करता। इसमें किसी प्रकार का विवाद ही नहीं है। और साथ ही निमित्त और उपादान का इतना नियत सम्बंध है कि ऐसी शक्ति वाला उपादान हो और ऐसे अनुकूल निमित्त पदार्थ उपस्थित हों तो वहाँ कार्य होता ही है। इन दोनों बातों को माने और फिर द्रव्य की स्वतंत्रता पर जिसकी दृष्टि रहे ऐसे ज्ञानप्रकाश में रह कर जीव अपना उद्धार कर लेता है। नहीं तो आग्रह पक्ष में कल्याण की बात गौण हो जाती है और इसकी अपेक्षा हो जाती है कि जो उसने कहा है वह बात सत्य है और लोग मान जायें यही सिद्ध हो। बस केवल जानने में यही मात्र प्रोग्राम रह जाता है।

**संसार संकट से छुटकारा पाने के अन्तः साधन सम्यक्त्व के लाभ के यत्न में प्रासंगिक चर्चा** – यह संसार है। जिस जगह हम आप इस समय रह रहे हैं वह जगह क्या अपनी हैं ? वह जगह लोक के परिमाण के सामने कितनी है ? समुद्र के बिन्दु बराबर भी नहीं है। जिस काल में हम आप यहाँ चल रहे हैं यह काल भी क्या है ? अनादि से अनन्तकाल व्यतीत हो गया और भविष्य में और अनन्तकाल व्यतीत होगा, ऐसे इस निस्सीम काल के भीतर यह 10 -20 वर्ष का काल क्या ? जिन लोगों में रहकर हम कल्पनायें बनाते हैं और शेखचिल्ली बनते हैं, अटपटी कल्पनाओं से अपने को भर लेते हैं, जिन मनुष्यों को हम कुछ दिखाना चाहते हैं सब क्या हैं ? अनन्त जीवों की तरह ये जीव भी रूलते सनते आज इस मायामय मनुष्य पर्याय में आये हैं, ये कोई परमार्थ चीज नहीं हैं, इनको क्या दिखाना ? इनको दिखाने से मुझे लाभ क्या ? ये कोई प्रभु तो नहीं है, स्वयं मायामय पर्याय में रहकर क्लेश पा रहे हैं। ज्ञानी पुरुषों को इन बातों पर यथार्थ निर्णय है, इस कारण उन्हें कोई वांछा नहीं रहती है। इच्छा होकर भी भीतर में इच्छा नहीं रहती है। यह सब बल है श्रद्धान का, सम्यक् का। उस ही सम्यक्त्व के प्रसंग में यह बात चल रही है यहाँ कि निमित्त किस भाँति होता है और उपादान किस भाँति होता है ? फिलहाल अभी निमित्त की संख्या बता करके प्रकाश डाला जा रहा है। चर्चा यह चल रही है कि विभावपरिणमन में कितने तक निमित्त हो सकते हैं। इसके विभाग यों कर दीजिए कि पुद्गल के विभावपरिणमन में तो अनेक निमित्त होंगे। कपड़ा बनाया जाता है तो वहाँ कुम्हार, तंतु, तुरी, बेम, शलाका आदिक औजार ये सब निमित्त पड़ रहे हैं, पर जीव के विकारपरिणमन में निमित्त तो है कर्म की अवस्था और बाकी जितने पदार्थों के संयोग इसके विषय में साधन बनते हैं वे सब पदार्थ कहलाते हैं आश्रयभूत।

**जीव के मोक्षपरिणमन में निमित्तों का विचार** – यहाँ कोई जिज्ञासु प्रश्न करे कि हम तो सुनते हैं कि मोक्ष में बड़ा सुख है, हमें तो मोक्ष ही चाहिए। मोक्ष की बातें बतायें कि मोक्ष होने में क्या – क्या निमित्त बनता है ? क्योंकि लोग मोक्ष के पाने के लिए बहुत – बहुत कार्य कर रहे हैं, तपस्या भी करते हैं, देवदर्शन करते

हैं, ध्यान करते हैं, अनेक प्रकार के उपसर्ग भी सहते हैं, स्वाध्याय भी करते हैं और भक्ति आदिक भी करते हैं तो ये सब बातें करना भी जरूरी है ना। तो मोक्ष में ऐसे - ऐसे कितने निमित्त होते हैं ? भैया ! इसका समाधान तब तक कोई न पा सकेगा जब तक कि यह न जान लें कि मोक्ष मुझे किसका करना है और वह कैसा है ? मोक्ष चाहिए मुझे आत्मा का। कर्म से आत्मा को छुटकारा दिलाना।

तो जिनको छुटकारा दिलाना है वह आत्मा क्या है, इसका सही निर्णय हुए बिना मोक्ष का वास्तविक निमित्त क्या है, इसका समाधान नहीं पाया जा सकता। यह आत्मा है एक चैतन्यस्वभावमात्र। एक ऐसा अमूर्त पदार्थ जिसको कोई नहीं पकड़ सकता, न जिसमें किसी प्रकार का रूप रंग है, सो न किसी इन्द्रिय द्वारा जाना जा सकता है। एक भावमात्र चैतन्यस्वभावमात्र आत्मा है, उसे मोक्ष दिलाना है। तो यह केवल यह ही रह जाय, इसके बाद जो कुछ लिपटा है वह सब कुछ छूट जाय, ऐसी स्थिति बनाना है यदि यह बात कोई पा सका तो वह समाधान पा लेगा कि मोक्ष होने में क्या - क्या निमित्त होते हैं। देखिये - मोक्ष जीव के स्वभावपरिणमन की अवस्था है, अर्थात् जीव का जैसा स्वरूप है, स्वभाव है, वही मात्र व्यक्त रहे, वही प्रकट रहे, इसी का नाम मोक्ष है। स्वभावपरिणमन में उस निमित्त की बात जाननी है तो जानिये - कालद्रव्य के सिवाय अन्य कोई निमित्त नहीं होता मोक्षपरिणमन में। हाँ पहिले समय में जो मोक्ष होता है उसको यह कह सकते हैं कि उसमें निमित्त अष्टकर्मों का क्षय है, पर मोक्ष होने के बाद क्या सदा मोक्ष उनमें नहीं रहता ? जो छूट गया वह सदा के लिए छूटा ही रहता है। तो जितने अनन्त सिद्ध हैं, कोई कभी से मुक्त हुए, कोई कभी से, उनका अब इस मोक्षपरिणमन में निमित्त क्या है सो बताओ ? क्या कर्मों का क्षय ? कर्मों का क्षय हो ही नहीं रहा। क्योंकि कर्म उनकी गाँठ में ही नहीं हैं। कर्मरहित जीव को ही तो सिद्ध कहते हैं। कर्म ही नहीं तो कर्मों के विनाश की बात ही क्या कही जाय ? अब यह जंचा होगा कि उस मोक्षपरिणमन होने में, केवल रहने में, स्वभावमात्र रहने में निमित्त केवल कालद्रव्य है। कालद्रव्य एक साधारण निमित्त है इस कारण उसको कोई निमित्त ही नहीं कहा जा सकता, वह तो साधारण निमित्त है, उसे तो हटाया भी नहीं जा सकता। तो मोक्ष जीव के स्वभावपरिणमन की अवस्था है और स्वभावपरिणमन में केवल कालद्रव्य ही निमित्त है, अन्य कोई निमित्त नहीं है जरा इसकी तुलना अन्य शुद्ध द्रव्यों से कर लीजिए। धर्म, अधर्म, आकाश और काल, ये चार द्रव्य शाश्वत शुद्ध द्रव्य हैं, इनमें कभी विकारपरिणमन न था, न है, न होगा। इनका सदा स्वभावपरिणमन होता है। तो अब बतलाओ - धर्मद्रव्य का स्वयं में जो स्वभावपरिणमन हो रहा है उसमें निमित्त क्या है ? सिवाय कालद्रव्य के और कोई निमित्त नहीं है। कालद्रव्य के निमित्त वाली बात यों समझ लीजिए झट कि समय गुजर रहा है बस यही निमित्त है धर्मादिक द्रव्यों के परिणमन में। अन्य कोई पदार्थ निमित्त नहीं है। तो जो पदार्थ शुद्ध होते हैं उनकी परिणति की ऐसी ही व्यवस्था है। अब जो शुद्ध हैं वे धर्मआकाश आदिक की तरह ही तो केवल शुद्ध हैं, उनमें जो उनके असाधारण गुणों पर सहज परिणमन हो रहा है उसमें कालद्रव्य निमित्त है अन्य कोई निमित्त नहीं है।

शुद्धात्मा के परिणमन में निमित्तत्व की बात जानने के लिये आकाशादिक शुद्ध द्रव्यों की तुलना का वर्णन – एक बात और समझिये – जो कोई विलक्षण कार्य होता है, नवीन कार्य होता है उसमें तो निमित्त की खोज करना चाहिए। यह कार्य अभी न था और अब हुआ और कार्य भिन्न जंचे, उसमें निमित्त की खोज होती है। स्वभाव परिणमन में भिन्न – भिन्न कार्य ही नहीं जंचा करते। अतएव वहाँ कालद्रव्य को छोड़कर अन्य निमित्त नहीं है। हाँ पहिले समय में जो मोक्ष हुआ है वह एक नवीन कार्य है। अभी तक तो संसार था, लो इस समय में मोक्ष हुआ है तो वहाँ निमित्त की बात विचार सकते हैं सो वहाँ निमित्त है- कर्मों का क्षय होना। कोई विधिरूप निमित्त वहाँ नहीं है वहाँ अभावरूप निमित्त है, जिससे यह सिद्ध होता कि जीव की स्वच्छता का प्रतिबन्ध करने वाले जो कर्म निमित्त थे उनका अभाव हुआ। लो स्वच्छता, निर्मलता, स्वभाव विकास तो स्वयं ही अपने आप सहज होता है। केवल एक जो प्रतिबंध था उसका प्रक्षय हुआ है। तो जीव का जो प्रथम ही प्रथम मोक्ष समय है उस समय के मोक्ष परिणमन में तो निमित्त ढूँढा जायगा और वह निमित्त है कर्मों का क्षय। पर आगे के मोक्षपरिणमन शाश्वत निमित्त रहते ही हैं। तो सर्व कर्मों से रहित अवस्था उनके सदैव रहती है वहाँ आप निमित्त क्या कहेंगे ? केवल कालद्रव्य निमित्त है। पर मोक्ष नाम है छुटकारे का और छुटकारे का अर्थ समझा जाता है बंधन की बात दिमाग में रहने पर। जैसे किसी का पिता आज तक कभी जेलखाने नहीं गया। और कोई कह बैठे कि साहब, आपके पिता तो जेल से मुक्त हो गए, तो वह सुनने वाला तो बुरा मानता है, क्योंकि छुटकारा जो भाव है वह बन्धन को दिमाग में लेकर आया करता है। जेल से छूट गया इसका अर्थ है कि पहिले जेल में बद्ध था, तो यह एक तरह से बुरा लगता है, तो मोक्ष शब्द कहकर इसका अर्थ आपेक्षिक रखने पर यह एक आमतौर से कहा जाता है कि कर्म के क्षय के निमित्त से मोक्ष होता है, पर उसमें विवेकपूर्वक देखा जाय तो प्रथम समय में जो मुक्तिरूप नवीन कार्य है उसका निमित्त तो है कर्म का क्षय, पर इसके बाद जो सदा छूटा रहना है, अलग रहना है, स्वभाव में रहना है उसका कारण केवल काल है, अन्य कोई निमित्त नहीं है।

प्रभाव की निष्पत्ति का उद्गम – अब कुछ इस तत्त्व पर विचार कीजिये कि जो कार्य हुआ है वह वास्तव में किस का प्रभाव है ? इस समस्या के समाधान से भी प्रसंग स्पष्ट हो जायगा। इसके लिये कुछ उदाहरण लीजिये। जैसे किसी ने गाली दी और उसे सुनकर लक्षित पुरुष क्रुद्ध हो गया तो बताइये वह क्रोधपरिणमन रूप असर क्या गाली देने वाले का है या क्रुद्ध हुए पुरुष का है। यदि गाली देने वाले का असर दूसरे पुरुष पर पहुंचता है तो अन्य भी मनुष्य तो वहाँ बैठे हैं किसी अन्य पर असर क्यों नहीं पहुंचा ? और देखिये वह लक्षित पुरुष भी ज्ञानबल से अपने में जरा भी क्षोभ नहीं लाता तो क्रोध भी न हुआ। उस समय उसके ज्ञानबल का असर रहा। असर नाम प्रभाव का है, प्रकृष्टरूप से होने का नाम प्रभाव है। प्रकर्षण भवनं प्रभावः। होने का नाम भाव है। जिस होने पर चर्चा हो, दृष्टि हो, उस होने की बात सिद्ध होने पर उसका नाम प्रभाव कहलाता है। तो प्रभाव नाम होने का है। जिसमें प्रभाव हो, परिणमन हो वह प्रभाव उस पदार्थ का है। जो कुछ है, पूर्ण हो या अंशरूप हो। वह द्रव्य गुण या पर्याय इन तीन में से ही कुछ कहा जा

सकता है। सो असर नाम द्रव्य, गुण का तो है नहीं, क्योंकि द्रव्य और गुण शाश्वत है, असर विनाशीक है। तब असर पर्याय का नाम है। पर्याय जिसमें हो उसकी ही पर्याय कही जाती है सो असर जिसमें हो उसका ही असर कहा जायगा। हाँ, वह कार्य निमित्त की अनुपस्थिति में नहीं हो सकता था सो यह निमित्तनैमित्तिक मेल बताने के लिये निमित्त का असर है, यों समझाना होता है। देखिये दिन के प्रकाश में वृक्ष के नीचे छाया होती है। उस छाया को बताइये— छाया किसकी है। लोग तो यह कहते हैं कि छाया वृक्ष की है, यह कथन निमित्त की प्रधानता से है। वास्तव में तो छाया परिणमन जिसका हुआ हो छाया उसकी है। छायारूप परिणमन के लिये हुआ क्या ? पृथ्वी ने स्वयं अपने आप में छायारूप परिणमन किया सो पृथ्वी का ही असर है वह छाया, और होती है निमित्त को पाकर, तो ऐसी सब जगह यही बात घटित करना चाहिए, जीव को सम्यक्त्व होता है तो प्रभाव किसका है ? जीव का। जीव ने अपने आपमें अपना प्रभाव बनाया अर्थात् अपने को सम्यग्दर्शन से सम्पन्न किया।

**नैमित्तिक परिणमन के प्रसंग में भी परिणति का स्वातन्त्र्य**—अब देखिये यह कि सम्यक्त्व की निष्पत्ति में निमित्त क्या हुआ ? 7 प्रकृतियों का उपशम, क्षय, क्षयोपशम। अन्य और कोई निमित्त नहीं हुआ। न समवशरण, न भगवान का दर्शन, न वेदना का अनुभव, न जाति का स्मरण, न देव ऋद्धियों का दर्शन, ये कोई निमित्त नहीं होता। ये सब कहलाते हैं आश्रयभूत। आश्रयभूत के साथ कार्य का अन्वयव्यतिरेक नहीं होता और निमित्त के साथ नैमित्तिक कार्य का अन्वयव्यतिरेक होता है। निमित्त के होने पर कार्य का होना, निमित्त के न होने पर कार्य न होना यह सम्बन्ध निमित्त और नैमित्तिक याने उपादान के परिणमन में है परस्पर। पर उपादान और आश्रयभूत में अन्वयव्यतिरेक का नियम सम्भव नहीं है। समवशरण में यह जीव अनेक बार गया, उपदेश भी सुना, सम्यक्त्व न हो तो वहाँ शंका न करना चाहिये कि देखो सम्यक्त्व का निमित्त तो मिला, पर सम्यक्त्व नहीं हुआ। सम्यक्त्व का निमित्त उसे न मिला था। सम्यक्त्व का निमित्त है अनन्तानुबंधी कषाय और दर्शन मोहनीय का उपशम, क्षय और क्षयोपशम। वह होता तो सम्यक्त्व होता, पर समवशरणादि सब साधन आश्रयभूत हैं और आश्रयभूत में नैमित्तिक कार्य के प्रति नियम नहीं बनता। इसी से तो यह सब अन्तर देखा जाता है कि चीज एक ही है पर उसके आश्रय से परिणाम अनेकों के अनेक तरह के होते हैं। वही बात किसी को सुहाती है और किसी को नहीं सुहाती है। चीज एक है, यह अन्तर इस कारण है कि वह चीज सुहाने या असुहाने का निमित्त नहीं है। उसका निमित्त तो उस प्रकार के मोहनीय का उदय है। तो यह समझ लिया होगा कि निमित्तनैमित्तिक भाव भी एक कोई प्रबल घटना है और उपादान की स्वतंत्रता भी किसी उपादान की अपनी परिणति में स्वतन्त्रता भी बेरोकटोक है। मृदंग बजता है, बजाने वाला उस पर हाथ की ठोकर मारता है। लगता यों है कि बजाने वाले ने जबरदस्ती ठोकर लगाकर मृदंग को बजा ही दिया। अब बजने के मायने शब्दरूप परिणमन। तो पुरुष ने उस मृदंग में, उस तबले में ठोकर लगाया। यहाँ पुरुष के आत्मा ने अपने आप में भाव का कर्म किया। उसका निमित्त पाकर पुरुष शरीर की हथेली ने काम किया और उस हाथ के संयोग का निमित्त पाकर वह मृदंग, वह चमड़ा या

कपड़ा पदार्थ जैसा क्रियावान् बना, उसका निमित्त पाकर भाषावर्गणा जाति के जो पुद्गलस्कंध हैं वे शब्दरूप परिणम गए। तो शब्दरूप परिणमने में उन भाषावर्गणाओं की परिणति के समय परिणति ने किसी की अपेक्षा नहीं की, तबले में हाथ लगाया, लग गया। अब शब्दरूप जो परिणम रहा है स्कंध सो वह किसी दूसरे का मेल करके, दूसरे की परिणति लेकर या खुद और दूसरा दोनों मिलकर नहीं परिणम रहे। वहाँ केवल वह भाषावर्गणास्कंध शब्द रूप परिणम गया। उपादान स्वातंत्र्य भी देखिये – कोई मनुष्य उत्तेजक व्याख्यान दे रहा है शामक के विरुद्ध, कोई तेउतेजनोत्पादक बात कह रहा है तो वक्ता ने अपने आप में भाव का निर्माण किया और उसके निमित्त से ये होंठ, जीभ आदिक इनका ऐसा संयोग वियोग होता रहा कि शब्दरूप परिणमन चलता रहा। अब उसे सुनकर श्रोताओं को जो उत्तेजना उत्पन्न हुई उस उत्तेजनारूप परिणमन में किसी दूसरे का साथ नहीं लिया गया, वह स्वयं अपने में उत्तेजनारूप परिणमता रहता है। तो उपादान का स्वातंत्र्य और निमित्तनैमित्तिक भाव दोनों को विधिवत् जानने पर सम्यग्ज्ञान हुआ जानिये। परन्तु वहाँ कहीं उपादान परतंत्र न हो जाय, इस डर के मारे निमित्तनैमित्तिक भाव को मानना और उपादान में अटपट परिणमन न हो जाय इससे निमित्त की मुख्यता रखना और उपादान में स्वातंत्र्य नहीं मानना, ये सब दोनों ओर की कमज़ोरियाँ हैं, विधिवत् जानकर फिर जिस दृष्टि में समाधिभाव जगता है, निर्विकल्पता जगती है, निर्विकल्पता के निकट पहुंचना बनता है उस दृष्टि को प्रधान बनाकर आगे बढ़िये। और फिर जब सत्य आनन्द की अनुभूति होने को होगी तो वहाँ सब दृष्टियाँ छूट जायेंगी, केवल एक ज्ञानानुभव रहेगा।

**मोक्षमार्ग के बाह्यसाधनों की चर्चा** – निमित्त उपादान के इस प्रसंग में प्रश्न यह किया गया था कि मोक्षपरिणमन में क्या क्या निमित्त होते हैं ? उसका उत्तर यों हुआ कि प्रथम बार जो मोक्षपरिणमन हैं उसमें तो कर्मों का क्षय निमित्त है और उसके बाद जो सदैव मोक्षपरिणमन बना रहता है उसमें धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य, कालद्रव्य के परिणमन की भाँति केवल कालद्रव्य निमित्त है, अन्य कोई पदार्थ निमित्त नहीं है। इस समाधान को पाने के बाद यह जिज्ञासा होनी स्वाभाविक है कि चलो मोक्षपरिणमन बना रहने का भी निमित्त मर्म समझा और प्रथम समय में मोक्षपरिणमन का भी निमित्त समझा, लेकिन इससे पहिले जब जीव मोक्षमार्ग में चल रहा है, मोक्ष के विषय में यत्नशील है तो उस समय उसको क्या क्या निमित्त होते हैं, तो वहाँ मनुष्यभव वज्रवृषभनाराच संहनन आदिक अनेक निमित्त हैं। निमित्त शब्द से कितनी ही बार प्रयोग किया जाय, वहाँ यह विवेक रखना कि साधारणतया आश्रय को भी निमित्त कह देते हैं और जो निमित्त हैं साक्षात् उनको तो निमित्त कहते ही हैं। जब जीव मोक्ष के उपाय में चलता है तो मोक्ष का उपाय बनता किससे है ? मनुष्य से। मनुष्य से मोक्ष प्राप्त कर सकता है न कि तिर्यच, नारकी या देव। तो देखिये – मनुष्य निमित्त रहा ना। और मनुष्यों में भी जिसके वज्रवृषभनाराच संहनन है वह ही जीव मोक्ष प्राप्त कर सकता। अन्य कोई मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता। तो यों वज्रवृषभनाराच संहनन भी निमित्त हुआ। इस प्रसंग में इस तथ्य को ध्यान में रखना होगा कि मोक्षमार्ग में जब चल रहे हैं उस समय भी अन्तरंग बाह्य निमित्त तो कर्मोदय की अवस्था है, उनका क्षय क्षयोपशम चल रहा है। यहाँ दर्शन ज्ञान चारित्र गुणों

की वृद्धि हो रही है। इसी का नाम तो मोक्षमार्ग है। तो वस्तुतः ये कर्मों की अवस्थाएँ मोक्षमार्ग में निमित्त हैं। पर अन्य बाह्य स्थितियाँ कैसे हुई जिनमें जीव को कर्मों के क्षयोपशम आदिक मोक्षमार्ग में निमित्त पड़े, उन स्थितियों का यह वर्णन है। तो ये बहिरंग बाह्य निमित्त हैं।

**भावविशुद्धि से मोक्षमार्गसाधनों का अनायास मिलन** – मोक्षमार्ग की साधना के निर्णय को सुनकर यह जिज्ञासा हो सकती है कि फिर तो यह भावना बनायी जानी चाहिए कि इन निमित्तों को खूब जुटाये। जीव को मोक्ष के लिए फिर मनुष्य भव, वज्रवृषभनाराच संहनन आदि जुटाने की जरूरत है, तब फिर इनके जुटाव में लग जाना चाहिये। एक इस तरह की मन में तरंग उठती है। लेकिन यह तरंग विवेकपूर्वक विचार करने पर शान्त हो जाती है। मनुष्यभव को जुटाने में लग जावो। अच्छा लग जावो, कैसे लगोगे? कैसे जुट जावोगे? कोई जान मान के यत्न करने वाली बात हो तो बताओ। यह तो सब भाव साध्य बात है। जीव के निर्मल परिणाम हो और उससे अपने आप में एक शान्ति और प्रकृति की बात बने तो ये सब निमित्त मिल जाते हैं, पर इन निमित्तों को हमें जुटाना है, क्योंकि ये मोक्षमार्ग के कारण हैं, साधन हैं। इस प्रकार पराश्रित दृष्टि बने तो मोक्ष का कारण न बनेगा। पराश्रित दृष्टि तो संसार का ही कारण है। जिसे मोक्ष जाने की इच्छा है, जिसका मोक्ष के लिए प्रयत्न है उसका तो काम है कि वह सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्कारित्ररूप निर्मल परिणाम बनाये। यह अमुक बाह्यद्रव्य निमित्त है और वहाँ दृष्टि है और उनको जुटाने का भाव बनाये इससे कोई सिद्धि नहीं है। वे तो सब अनायास मिलकर निमित्त होते हैं, प्रयत्न तो यही करना चाहिए कि हमारा रत्नत्रयभाव निर्मल हो, इसके अलावा अन्यत्र दृष्टि न होना चाहिए। जो निर्मलपरिणामन में रहेगा उसके अवसर पर ये सब निमित्त मिल जायेंगे क्योंकि उन उत्तम संहनन और मनुष्यभव के मिलने का निमित्त भी तो जीव का निर्मल परिणाम है। तो एक निर्मलता को अगर साध लिया तो सब बातें सध जाती हैं और एक अपने आपकी निर्मलता को न साध सके तो बाहर में किन्हीं भी चीजों का संग्रह करे तो वह न सध सकेगा। यह सब मिलेगा अपने अवसर पर और वह अवसर मिलेगा आत्मा के निर्मल परिणाम की कृपा से। निमित्त की आशा, निमित्त की दृष्टि रखने से उनका लाभ नहीं है।

**पुण्याशा से पुण्यबन्ध न होने की भांति मोक्षमार्ग के बाह्य साधनों के जुटाने के विकल्पों से संप्राप्ति का अभाव** – जैसे कोई पुरुष पुण्य की आशा रखकर पुण्य कार्य करे तो उसे पुण्यबंध नहीं होता, क्योंकि पुण्य की आशा रूप पाप परिणाम तो पहिले से कर लिया, अब पुण्य का यत्न कहाँ से हुआ? तो पुण्य की आशा से जैसे पुण्य का बंधन नहीं होता इसी प्रकार मोक्षमार्ग के इन बाह्य निमित्तों के जुटाने की इच्छा से और प्रयत्न से वह जुट नहीं जाता। लोग इस आशा से भी देवपूजा बहुत किया करते हैं कि इससे बाधाएँ मिटती हैं, शान्ति मिलती है या सुख मिलता है, आनन्द का लाभ होता है। खूब रोजगार चलता है, तो इस



आशा को रखकर यदि वह भक्ति में लग रहा है तो उसके पुण्य का विशेष बंध होता है और उसके उदय में लौकिक सम्पदायें मिलती हैं, लेकिन यह चलन चल यों गया कि लोग आशा रखकर प्रभु – दर्शन आदिक करते हैं जैसा कि उन्होंने समझ रखा है और साथ काम भी हो जाता है। तो जब काम सिद्ध हो गए लौकिक तो यह श्रद्धा जम जाती है कि देखो प्रभुसेवा से ही यह काम बना ।

लेकिन जो लोग प्रभु के निकट ही नहीं आ रहे, ऐसे करोड़ों अरबों पुरुष हैं जो प्रभु का नाम भी नहीं लेते और उल्टे ही उल्टे चलते हैं, विदेशों में बहुत से लोग ऐसे भी भरे हैं और इस देश में भी ऐसे लोग भरे हैं, उनके भी तो काम हो रहे हैं । घर बनते जा रहे हैं, संतान होती जा रही है, द्रव्य भी आता जा रहा है, तो यह तो एक ख्याल बना रखा है कि प्रभु सेवा करने से हमको धन मिलेगा इसलिए सेवा करनी चाहिए । यह भाव उत्तम भाव नहीं है । यहाँ का सर्व समागम जो कुछ मिला, मिलेगा वह सब पुण्यानुसार मिलेगा । उसका तो निमित्त ही पुण्योदय है। अब अपने आपको संसार के संकटों से बचाना है सदा के लिए तो आत्मा का स्वरूप जानें और उसमें रमण करने का यत्न करें । प्रभुभक्ति करें, जिस उपाय से बने स्वरूपदृष्टि में रहें, उस सहज चैतन्यस्वभाव की दृष्टि में रहें । जो काम करना है सो कीजिए, पर पुण्य की आशा रखकर चाहें कि पुण्यबंध हो और उससे काम बने तो यह बात नहीं बनेगी । तो जैसे पुण्य की आशा से पुण्य का बंध नहीं होता इसी प्रकार इस मोक्षमार्ग के साधन जुटाने का यत्न करने, विकल्प करने और इच्छा करने से यह साधन नहीं जुटता ।

प्र०251

अविकार अन्तस्तत्त्व के आश्रयणरूप विशुद्धि से मोक्षमार्ग प्रगति का लाभ – भैया ! एक परिणामों की निर्मलता का यत्न बनायें तो ये सब साधन सहज मिल जायेंगे । देखिये- उपादान में अनेक कार्य निमित्तपूर्वक होते हैं और आत्मा का मोक्षमार्ग भी अनेक बाह्य साधनों में चलता है, लेकिन निमित्त का लक्ष्य रख करके मोक्षमार्ग नहीं चलता । निमित्त में चलता है यह बात ठीक है, पर निमित्त के लक्ष्य में मोक्षमार्ग नहीं चलता । निमित्त लक्ष्य करना तो स्वयं एक बड़ा विभावपरिणमन है, परदृष्टि बनाई गई तो निमित्त का लक्ष्य बनाये रखना तो ऐसा पाप का काम है कि जिसका फल तो संसार में रुलना है उससे मोक्षमार्ग की आशा करते हैं । बात यहाँ यह बतायी गई है कि मोक्षमार्ग ऐसे ऐसे निमित्त में चला करता है यह बात तो सही है, पर निमित्त का लक्ष्य रखकर मोक्षमार्ग चले यह बात गलत है । निमित्त का लक्ष्य बनाना परदृष्टि है, मिथ्यात्व है, मोह है, वह तो संसार में रुलने का साधन है । यदि संसार का रुलना इष्ट न हो तो निमित्त का लक्ष्य छोड़कर अखण्ड निर्विकल्प विशुद्ध स्वलक्षण मात्र इस चैतन्यस्वभाव की ओर आइये । यह चैतन्यस्वभाव निमित्त नहीं है, इसलिए निमित्त का लक्ष्य न करना ऐसा सोचकर इसका लक्ष्य न छोड़िये । यह तो स्वयं है, उपादान है, अपने आप में है । और यहाँ की विधि ही यह है कि अपने अन्तस्तत्त्व का लक्ष्य करेंगे तो सब कार्य मोक्षमार्ग के लिए जैसा होना होता है वैसा हो जाता है । तब कर्तव्य यह है कि निर्विकल्प

आत्मस्वरूप की ओर उन्मुख हूजिए । फिर उस मोक्ष के विकास के लिए जिन वस्तुओं का संयोग वियोग जिस जिस रूप से जो निमित्त चाहिए होंगे वे सब स्वयं होंगे, अपने आप में होंगे, पर निमित्त के लक्ष्य से मोक्षमार्ग न बनेगा, निमित्तपूर्वक कार्य हो रहे हैं यह बात ठीक है, पर निमित्त के लक्ष्य से होने वाला भी कोई कार्य होता है । मगर वह है पाप, वह है संसार में रुलना, वह है बन्धन की बात । कर्तव्य अब यह है कि निर्णय तो यह रखें कि नवीन कार्य निमित्त सन्निधानपूर्वक हुआ करते हैं, पर हमारे हित का मोक्षमार्ग का कार्य यह निमित्त के लक्ष्य से न बनेगा, किन्तु निमित्त का लक्ष्य छोड़कर अपने आप में शाश्वत विराजमान अन्तः प्रकाशमान चित्स्वरूप के लक्ष्य से बनेगा ।

ज्ञान और वैराग्य की सत्यशरण्यरूपता –जगत के सभी लोग अपनी शान्ति के लिए अपना कुछ न कुछ सहारा तका करते हैं, लेकिन जरा सोचिये तो सही कि इस जगत में कौन सा ऐसा सहारा है जिससे वास्तविक शान्ति प्राप्त हो ? इस जगत में बहुत से खटपट करके देख लिया होगा, पर कहीं शान्ति तो अभी तक प्राप्त नहीं हुई । बहुत से मित्रजनों से नेता आदिक से सहारा तका पर वहाँ से धोखा ही मिला, पंचेन्द्रियों से सहारा तका, वहाँ से भी धोखा ही मिला । तो बाहर में कोई भी अपना सच्चा सहारा नहीं है । अपना सच्चा सहारा है ज्ञान और वैराग्य । अपने जीवन भर दुःखी होने के बाद और अनेक उपसर्ग उपद्रव सहने के बाद भी अगर कोई इस तथ्यभूत निर्णय पर आ जाता है तो उसकी जिन्दगी सफल है । ज्ञान और वैराग्य ही केवल इस जीव के लिए शरण हैं। जितना जितना यह जीव अपने आपको अकेला निरखता जायेगा उतना ही उतना यह शान्ति के मार्ग में बढ़ता जायेगा । मैं आत्मा इस देह से भी निराला एक ज्ञान ज्योतिस्वरूप हूँ, यों जितना – जितना अपने आपके अकेले की ओर यह जीव आता जायगा उतना ही उतना इसके संकट टलेंगे और प्रसन्नता होगी । हम आप जिस मेले में आये हुए हैं, जिन भगवान के पूजन वंदन हेतु यहाँ पर बहुत दूर दूर से लोग आये हुए हैं उन भगवान में ऐसी क्या खूबी है ? उन्होंने कौन सा ऐसा कार्य किया था जिसके कारण आज वे पूज्य बने हुए हैं, वंदनीय बने हुए हैं ? तो उन्होंने किया था ज्ञान और वैराग्य । उनका ज्ञान और वैराग्य का ऐसा सहारा था कि जिससे वे अडिग रहे और आत्मसाधना में सफल हुए, निर्वाण हुआ । यही कारण है कि हम आपका उन प्रभु की ओर अनुराग है। यहाँ की बाहरी दिखावट बनावट की बातों से इस जीव को शान्ति नहीं प्राप्त हो सकती । आत्मा को वास्तविक शान्ति तो ज्ञान और वैराग्य से ही प्राप्त हो सकती हैं । जगत के अन्य किसी भी पदार्थ से शान्ति नहीं प्राप्त हो सकती। इस बात को उन प्रभु ने अच्छी तरह से जान लिया था, और जगत के सर्वबाह्य पदार्थों का सहारा तजकर आत्म - उपासना में लग गए थे । उस आत्मउपासना के कार्य में वे रंच भी विचलित नहीं हुए । यही कारण है कि वे प्रभु हम आपके लिए पूज्य हुए । तो जो अपने को जितना अकेला विचारेगा वह उतना ही सुखी होगा । इसे अगर एक शब्द में कहें तो यह निर्णय रख लीजिए कि मैं अपने आपको जितना अकेला सोचूँगा उतना ही आनन्द की ओर हूँ और जितना जितना दूसरों से सहारा तकेंगे उतनी उतनी ही हमको अशान्ति है । एक यह सिद्धान्त है इसका आप खूब विचार कर लीजिए ।

बाह्यसमागम का लगाव छोड़े बिना शान्ति की असंभवता - सारी जिन्दगीभर जीते हैं, सब कुछ कमाया, पुत्रादिक बड़े हुए, उन सबसे शान्ति प्राप्ति करने की बड़ी बड़ी आशाएँ की, पर उनसे कौन सी चीज ऐसी प्राप्त हुई जिसके बल से सन्तुष्ट रहे ? संतोष सबसे बड़ा धन है । लोग आज जो सोना चांदी आदिक धन की होड़ में लग रहे हैं वे सोचते तो यह हैं कि इससे हमें सुख मिलेगा, पर कदाचित् ऐसा हो जाय कि सबकी सारी सम्पदा सरकार जप्त कर ले, मात्र गुजारे भर का ही रहने दे तो जरा सोचो तो सही कि उस समय आपको कितना दुःखी होना पड़ेगा ? हालांकि आपकी आजीविका के लिए आपके पास कुछ धन रहेगा, पर उस कमाये हुए धन के छूट जाने पर दुःख तो होगा ही । जो बाहरी समागम हैं चाहे जीते जी छूट जाय या मरण हो जाने पर छूट जायें, वे छूटने तो हैं ही । मगर इतना विवेक नहीं करते कि हम भगवान के नाम पर अथवा अन्य धार्मिक कार्यों पर कुछ धन खर्च कर लें, और उस धन का वास्तविक सदुपयोग करके अपने जीवन को सफल कर लें । अपने जीवन का सुधार व बिगाड़ करने के लिए हम आपके सामने एक बड़ी समस्या है । यहाँ की प्राप्त चीजें जो कि एक दिन छूटनी ही हैं उन्हें अभी से छूटा हुआ समझ लें तब तो ठीक है, नहीं तो उनके छूटने पर बड़ा चिन्तातुर होना पड़ेगा ।

उपलब्ध स्वर्णावसर में आत्मकल्याण का उपाय बना लेने की बुद्धिमानी करने का अनुरोध-अहो, करना तो था यहाँ अपने उद्धार का कार्य, पर यदि विषयों की खाज खुजाने में ही सारा जीवन खो दिया तो समझो कि नीचे ही गिरना होगा । ऊँचे उठने की बात न बन सकेगी । इससे भाई यह विचार करो कि मैं आत्मा क्या हूँ और मुझे शान्ति कैसे मिले ? इसका उत्तर इन्द्रियों को उद्वण्ड बनाने में न मिलेगा । अपने नेत्रों को बन्द करके, इन्द्रियविषयों की उपेक्षा करके अपने आपको अकेला विचार करने पर अपने आपका सही निर्णय कर लिया जायगा । क्या करना है ? जो भगवान ने किया सो ही हमें करना है, भगवान ने क्या किया ? प्रभु ने किया आत्मा का विश्वास, आत्मा का ज्ञान और आत्मा में रमण, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्कारित्र ।

हम आप जाप में बोल जाते हैं, पंचपरमेष्ठी नाम बोल जाते हैं, भगवान का नाम बोल जाते हैं, पर भगवान क्या हैं, यह बात चित्त में नहीं आती । हम आप रत्नत्रय का नाम बोल जाते हैं मगर वे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्कारित्र क्या हैं, यह बात दृष्टि में नहीं आती । यह तो बड़ा अँधेरा है जो कि विषयों के रंग में रंगे हुए हैं । इन विषयों के रंग में रमकर तो हम आपको लाभ न प्राप्त होगा । मान लो घर गृहस्थी में रहकर आज घर के, समाज के, देश के कार्य करने पड़ रहे हैं सो ठीक है, मगर उनमें राग और द्वेष की बुद्धि करना यह कहाँ तक ठीक है, इस पर तो आप विचार करें ? मान लो यहाँ से मरकर किसी अन्य देश में उत्पन्न हो गये तब तो फिर इस देश का कुछ भी समागम आपका न रहेगा । आप तो जिस देश में उत्पन्न हो गए उसे ही अपना समझेंगे और वहाँ के समागम ही आप के लिये इष्ट वस्तु बन जायेंगे । तो घर

गृहस्थी में रहकर आप गृहस्थी के कार्य सम्हालें गृहस्थी के नाते से कार्य निभायें सो तो ठीक है, पर बात ध्यान में रहे कि ये मेरे मुख्य कार्य नहीं हैं। मेरा तो मुख्य कार्य है आत्मोद्धार का। यह आत्मोद्धार ही मेरे लिए सहयोगी है अन्य कार्य कोई मुख्य कार्य नहीं हैं। अपना मुख्य कार्य तो ज्ञान और वैराग्य बनाना। यदि इस पथ से चले तब तो आत्मा का उद्धार है अन्यथा तो जन्ममरण के संकट ही भोगते रहना होगा और संसार में रुलते रहना होगा। यदि यहाँ से मरण करके कीड़ा मकोड़ा हो गए तो फिर क्या करोगे ? तो यहाँ पर जो कुछ भी चीजें प्राप्त हुई हैं उनका सदुपयोग इसी में है कि अपने ज्ञान को बढ़ायें मोह ममता रागद्वेषादिक दूर हटायें और अपने आपके अकेलेपन का अधिकाधिक ध्यान दें तो हम आपको शान्ति का मार्ग मिलेगा। बाहर में कहीं भी शान्ति का मार्ग न मिलेगा। इसके लिए आवश्यक है स्वाध्याय करना। घर पर अथवा दुकान पर अथवा अन्यत्र कहीं हों वहाँ स्वाध्याय कीजिए। स्वाध्याय करने से कुछ दिनों में आप अपने आप में कुछ बल पायेंगे अन्यथा तो कषायों में पड़कर कुछ बल नहीं मिलेगा और न अपने आत्मा का उद्धार हो सकेगा।

**मोक्ष के निमित्तों का लक्ष्य होने की मोक्षविघ्नरूपता** - अभी तक यह बताया गया था कि मोक्ष होने में मनुष्यभव वज्रवृषभनाराचसंहनन आदिक निमित्त पड़ते हैं, जिस किसी भी प्रकार से यह बात बतायी गई थी। तब यह जिज्ञासा होती है कि जब ये सब बातें मोक्ष में निमित्त है तो इसका लक्ष्य रखना क्यों हानि पहुंचाता है? अभी यह बताया गया था कि यद्यपि मनुष्यभव के बिना जीव को मोक्ष न मिलेगा वज्रवृषभनाराचसंहनन को छोड़कर अन्य संहननों से मोक्ष नहीं मिलता लेकिन कोई इसका लक्ष्य रखे कि मुझे आगे मनुष्यभव मिले उस मनुष्यभव से हमारा मोक्ष होगा। तो इस प्रकार निमित्त पर लक्ष्य रखने से मोक्ष नहीं मिलता, निमित्त है, मनुष्यभव बिना मोक्ष नहीं होता पर मनुष्यभव का कोई ध्यान बनाये रखे तो उससे भी मोक्ष नहीं मिलता। सो ही पूछा जा रहा है कि निमित्त के लक्ष्य से अलाभ क्यों होता है ? तो समाधान में यों समझना कि निमित्त का लक्ष्य करने से जो काम बनेगा तो चूँकि जीव ने अपना लक्ष्य छोड़कर किसी बाह्य पदार्थ का लक्ष्य किया इस कारण विभाव परिणमन बनेगा। जिस विभावपरिणमन का फल है संसार में रुलना। तो अगर संसार का रुलना इष्ट नहीं तो निमित्त का लक्ष्य छोड़ें और अपने आपका जो एक सहज शाश्वत स्वरूप है उसका लक्ष्य करें। अगर अपने आपका लक्ष्य दृढ़ बनेगा तो मोक्ष होने के लिए मोक्षमार्ग में जिन - जिन चीजों का निमित्त होना चाहिए वे अपने आप होंगे।

**परप्रसंग में निःसारता** - देखो - लोग जिन्दगी में बड़े - बड़े संकल्प करते हैं इतना वैभव बढ़ाना हैमकान बढ़ाना है खेती बढ़ाना है अथवा लोगों में इज्जत बढ़ाना है। तो ठीक है, बढ़ा ले बढ़ जायेगी लेकिन इसका फल क्या होगा ? खूब जायदाद बढ़ गई तो क्या फल मिलेगा ? वह समय आयगा ही कि सब कुछ छोड़कर जाना पड़ेगा। उससे फायदा क्या पाया ? और हाथ पैर व्यर्थ ही पीटते रहे। मान लो लौकिक

इज्जत भी खूब बढ़ गई, लोग बड़ा अच्छा मानने लगे तो भी क्या फायदा है? नुकसान ही हुआ । अगर उसमें दिल फंसा है, उसका विकल्प बना है तो उसके कारण इसमें कर्मबन्ध होगा और संसार में रुलना रहेगा, मोक्षमार्ग न मिल पायगा । तो नुकसान ही हुआ, फायदा कुछ नहीं । एक यह संकल्प भीतर में बनायें कि हमको तो कर्म, शरीर कषाय आदिक सबसे छूटना है। मैं अकेला हूँ, अकेला ही संसार में रुल रहा हूँ । इस मुझ अकेले का कोई सहाय नहीं है जब जहाँ जिस पर्याय में जाना हैं, जिस पर्याय रूप जो कुछ होना है वह सब अकेले को ही करना पड़ता है । इस मुझ अकेले अकिंचन ज्ञानमात्र आत्मा का दुनिया में कुछ नहीं है । इस हितकारी परिज्ञान का लाभ इसी में है कि मैं सब झंझटों से छूटकर केवल रह जाऊँ जैसा मैं आत्मा विशुद्ध चैतन्यस्वभावमात्र हूँ, केवल वही रह जाऊँ, मेरा व्यक्तिगत रूप से कोई नाम लेने वाला नहीं, कोई पहिचान करने वाला नहीं, किसी का उससे लगाव नहीं । कुछ मत रहो, सारी दुनिया मुझे भूल जाय, मैं भी सबको भूल जाऊँ, यहाँ इस प्रसंग में सार तत्त्व कुछ नहीं है, मुझे तो संसारबन्धन से छुटकारा पाना है, दूसरा मेरा कोई प्रोगाम नहीं है, ऐसा संकल्प आये तब समझिये कि आत्मा पुण्यमय हो रहा है । आप अपना बड़ा लाभ पा रहे हैं ।

**अन्तस्तत्त्व के ज्ञानप्रकाश बिना तृप्ति की असंभवता** - अन्तस्तत्त्व के ज्ञानप्रकाश के बिना बाहर में आप कुछ कर लें, मन वचन काय का योग ही तो किया, परिश्रम ही तो किया, अपने ज्ञान को ही तो बिगाड़ा, फायदा क्या पाया किसी भी बाह्य बात में ? अपने स्वरूप को देखिये । देखते रहो, तृप्त रहो, ऐसी धुन बनाओ वह है आत्मा की सार और काम की बात, इसके अलावा चाहे आप कितना ही खुश हो रहे हों किन्हीं बाहरी बातों में, वह सब बेकार है । जैसे शराब के नशे में जिसे नशा आया है ऐसा पुरुष हँसता अधिक है और अपने बोलने की बड़ी कला भी दिखाता है, लेकिन उसका हँसना और उसकी चतुराई का दिखाना कोई बुद्धिमानी नहीं है, दुःख ही है । इसी प्रकार यह मोह का नशा तीन लोक में कहाँ कितना क्या ढेर पड़ा हुआ है उस ढेर में से थोड़ी सी ढेरी मिल गई, थोड़ा सा वैभव मिल गया, यहाँ खुश हो रहे हैं, अपने आपको बड़ा चतुर और बड़ा समझ रहे हैं लेकिन उस शराबी की तरह यह भी इन मोही प्राणियों का हँसना है । सार कुछ नहीं है, अविवेक है, लेकिन जहाँ सारे ही शराबी जुड़े हों, उनमें एक भी बिना नशा का ना हो, तो उनकी जो आपस में क्रीड़ा होती है, बोलचाल होती है व्यवहार होता है उसे खराब समझे कौन ? इसी प्रकार इस लोक में जब सभी मोही जीव पड़े हैं तो इनकी जो लीला हो रही है, मेरे तेरे का विकल्प चल रहा है और बड़ी व्यवस्था बनायी जा रही है, इनको बुरा कहने वाला कौन मिले ? क्योंकि सभी मोही जीव यहाँ पड़े हुए हैं । जैसे सैकड़ों शराबियों के बीच अगर कोई एक भला आदमी पहुंच जाय जिसमें कि नशा नहीं है तो उसकी सुने कौन ? और उसे महत्त्व दे कौन ? इसी तरह जहाँ ये अनन्त मोही जीव पड़े हुए हैं ये सैकड़ों अरबों मनुष्य जहाँ ये मोही जीव पड़े हैं और इस लोक में मेरे तेरे का व्यवहार बनाया है, इज्जत की कल्पना की है, इनके बीच अगर कोई एक ज्ञानी पहुंचे तो उसको महत्त्व दे कौन ?

**संसार की सर्वतः कष्टरूपता** – यह सारा संसार कष्टमय है और इससे बढ़कर कष्ट क्या होगा कि कष्ट पा रहे हैं, फिर भी कष्ट को सही मायने में कष्ट नहीं समझ पाते । तो एक संकल्प होना चाहिए कि हमें तो कर्मबन्ध से छूटकारा पाना है, एक ही मेरा काम है। यही काम कर लिया तो यह मनुष्य जीवन सफल है, इसका उपाय बना लें। इसका उपाय है सम्यग्दर्शन । सम्यक्त्व की प्राप्ति अगर हो गई तो समझो कि जीवन सफल है और सम्यक्त्व न पाया तो कुछ भी करते रहो, सब बेकार है । इसमें अब कुछ धीरतापूर्वक आत्मकल्याण की ओर झुकना चाहिए।।कहाँ आत्मकल्याण बसा है ? सब कुछ मेरे स्वरूप में है, आप के जौहर का पता नहीं, और बाहर के खण्ड पत्थर में जौहर निरखते हैं । मोक्ष की चाह करे, एक ही कार्य अपने उद्देश्य में रखे कि मुझे तो जन्म मरण के संकटों से छूटकारा पाना है। क्योंकि जन्म मरण में दुःख है, तत्त्व कुछ नहीं है, मलिनता है । मनुष्य हुए, जब जन्मे तो बड़ी खुशियाँ मनाई गयीं । तो देखो जो बच्चा पैदा हुआ वह तो बड़ा कष्ट पा रहा है और ये घर के लोग बड़ी खुशियाँ मना रहे हैं । उसे तो जन्म में भी कष्ट, मरण में भी कष्ट, जीवन में भी कष्ट तो कष्ट को लिए ही सारा जीवन है। इसको सुखसाता का कहीं काम नहीं । अब जिनको कुटुम्बी समझा गया है वे लोग खुशियाँ मनाते हैं कि मेरे घर पुत्र पैदा हुआ । अरे जो पैदा हुआ है वह तो कष्ट ही कष्ट भोग रहा है । मरण का कष्ट, जन्म का कष्ट और जिन्दगी का कष्ट, कितनी ही तरह के जन्म, कितनी ही तरह की योनियां ।

**शरीरराग से हटकर इस भव में मोक्षोपाय बना लेने पर बुद्धिमानी** – इस शरीर के सम्बंध में सोचिये – इसमें सार की बात रखी है क्या ? जो जो भी राग लगे हैं वे सब छोड़ देने लायक हैं। जिन जिन से अपना संसर्ग माना है वे सब छोड़ने योग्य हैं । तो एक मोक्ष का संकल्प बनायें । मुझे तो मोक्ष चाहिए अर्थात् छूटकारा चाहिए याने मैं केवल ही केवल रह जाऊँ । मेरे साथ अन्य कोई द्रव्य न रहे, केवल मैं जैसा मैं हूँ उसी स्वरूप में रह जाऊँ बस वह चाहिए मुझे, और कुछ नहीं चाहिए । यह बात चित्त में समाती हो तब पुण्योदय से आप बड़े होते हैं तो आपका बड़प्पन सफल हो जायगा अन्यथा मनुष्य हुए न हुए बराबर, बेकार। कीड़ा मकोड़ा रहते तो, मनुष्य रह गए तो, बात दोनों एक समान हैं, क्योंकि मनुष्यभव तो तिरने के लिये है, जिस किसी भी प्रकार संसार से छूटकारा मिले उसका उपाय बनाने के लिए मनुष्यभव है, वही न किया तो बेकार है । जैसे कोई हाथी रखे है घर में तो उसका उपयोग यही था कि शान से सवारी करते, अच्छे महंत से रहते, और ढोने लगे उस पर खाद कूड़ा तो हाथी जैसा खर्च बढ़ाना यह सब बेकार है। काम तो किसी के लिये था और करने लगे खाद कूड़ा ढोने का काम, तो इसी तरह मनुष्य जन्म पाया तो था इसलिए कि ऐसा उपाय बना लें, ऐसा विवेक बना लें कि जिससे मुक्ति का मार्ग बन जाय, उपाय मिल जाय, सम्यक्त्व पैदा हो जाय, हमारी दृष्टि आत्मतत्त्व की ओर जाय, ऐसा उपाय बनाने के लिए मनुष्यभव मिला था, लेकिन करने लगे विषय साधनाओं के ही काम, तो ये ही काम कुत्ता, बिल्ली, सूकर, गधा आदिक करते हैं वही काम किया इस जीव ने तो बेकार ही तो पाया मनुष्यजन्म । चिन्ताओं से भरा हुआ जीवन

बनाया, अज्ञान अंधकार से बेड़ा हुआ यह उपयोग रहे तो इस मनुष्य जीवन का लाभ क्या रहा ? एक संकल्प बनायें कि मुझे तो कर्मों से छूटना है ।

**मोक्षोपाय के यत्न में हमारा कर्तव्य** – अब कर्मों से छूटने के उपाय में जब हम चलें तो हमें क्या करना चाहिए ? निर्णय करें करना क्या चाहिए ? देखिये, मोक्ष के मायने क्या है ? केवल रह जाना । आत्मा ही आत्मा रह जाय, इसके साथ न शरीर रहे, न कर्म रहें, न कषाय रहें, न विकार रहें, न इनकी पहिचान रहे, ये सब कुछ न रहें, खाली यह अकिंचन आत्मा ही आत्मा रहे, इसके मायने है मोक्ष । यदि केवल रह जाने की मन में भावना है तो किसी समय अपने को केवल देखो । देख सकते हो । शरीर का भान भुलाकर केवल चैतन्यस्वरूप दर्शन कर सकते हो । ज्ञान में ऐसी ही तो महिमा है कि बीच के सारे झगड़ों को छोड़कर एक सारभूत बात को ग्रहण कर ले । इस पर्याय को भी भूलकर, जगत के सारे आडम्बर परिग्रहों को भूलकर, क्योंकि हैं ना ये सब पर और अहित, इनसे कुछ सम्बंध नहीं तो क्यों इन्हें चित्त में बसाऊँ ? इन सबको त्यागकर केवल मैं ज्ञानमात्र हूँ, ज्ञानप्रकाश हूँ, ऐसे शुद्ध तेजमय अपने आपको देखा तो मोक्ष का उपाय बन जायगा और इसको अगर न देख सके तो बाहर में चाहे कितनी भी स्थितियाँ बना डालें, सब बेकार बातें हैं। इस जीव का साथी कोई दूसरा नहीं है, खूब अच्छी तरह देख लो और इसमें कुछ उलहने की बात नहीं, यह तो पदार्थ का ऐसा स्वरूप है कि सब पदार्थ अपने आपकी सत्ता के लिए हैं, सर्व पदार्थ अपने आप में अपना परिणमन करने के लिए हैं। कोई अन्य पदार्थ मेरा परिणमन करने के लिए है ही नहीं, हो ही नहीं सकता, स्वरूप ही ऐसा है । तब सोच लीजिए – ममता में क्या सार रखा है ? ममता करें तो चीज आपकी नहीं, ममता न करें तो चीज आपकी नहीं। सो व्यर्थ अनर्थ मोह विकल्प छोड़कर अपने को केवल, अकिंचन ज्ञानमात्र निरखो । मुक्ति के लिये पुरुषार्थ करना है । अज्ञान अंधकार के ये व्यर्थ के विकल्प क्यों बढ़ाये जा रहे हैं ?

**ज्ञानी पुरुष के अकिंचन ज्ञानमात्र अन्तस्तत्त्व की प्रतीति के कारण बाह्य में ममता का अभाव** – अहो, ज्ञानी के अलौकिक वैभव पड़ा है, ज्ञानी पुरुष के वैभव में ममता नहीं रहती, देह में भी ममता नहीं रहती । देह में बस रहा है यह और देह पर जो बीते उसे भोगना भी पड़ता है इसे कुछ सीमा में, फिर भी ज्ञानी को देह में ममता नहीं । जैसे कोई पुरुष किन्हीं डाकुवों के फंदे में पड़ जाता है तो वह उन डाकुवों के साथ रहता है पर उसे उन डाकुवों से ममता नहीं रहती । जैसे बहुत जगह डाकुवों का यह काम है कि किसी आदमी को पकड़कर जंगल में ले जाते हैं। उससे वे डाकू कहते हैं कि तुम हमें इतने हजार रुपये घर से मँगा दो तो हम तुमको छोड़ेंगे अन्यथा तुम्हारी जान ले ली जायगी । वह बहुत बहुत मिन्नतें करता है कि मेरे पास रुपये नहीं हैं, इतने ही ले लो पर वे डाकू नहीं मानते हैं । आखिर उस फंसे हुए व्यक्ति को उन डाकुओं के बीच काफी दिन तक रहना पड़ता है। पर जरा बताओ कि उस फंसे हुए व्यक्ति को उन डाकुओं से कोई ममता है क्या ?

ममता नहीं है, वह तो फंदे में पड़ा है। इसी तरह यह जीव रह रहा है इस शरीर के साथ, शरीर के कब्जे में है, बन्धन में है, ऐसा समझ लो, लेकिन जो ज्ञानी पुरुष हैं उनको इस शरीर में ममता है क्या? उन्हें तो यह स्पष्ट बोध है कि यह मैं आत्मा हूँ शुद्ध ज्ञानानन्द स्वरूप, और यह देह – मल रुधिर राधमल की थैली है। अर्थात् इस देह के अन्दर मल मूत्र खून मांस मज्जा आदि अपवित्र चीजें भरी हैं। तो इन अपवित्र चीजों रूप मैं हूँ क्या? यों तत्त्वज्ञानी को इस देह में ममता नहीं है, पर करे क्या? जैसे डाकुओं के बन्धन में पड़ा हुआ धनी करे क्या? उसका कोई वश नहीं चलता, उसे रहना पड़ता है, और डाकुओं के बीच नम्र विनय से रहना पड़ता है, नहीं तो वे डाकू जान ले लेंगे। यों ही शरीर की बहुत सी बातों में चलना पड़ता है, पर इतना होते हुए भी इस ज्ञानी को देह में ममता नहीं है। जिनको अपने आपके स्वरूप का भान हो गया है वे सम्यग्दृष्टि सुखी हैं, उन्हें अब कही रंज नहीं है।

**संसार का झूठा मोह छोड़कर आत्मीय शाश्वत आनन्द पाने के यत्न में भलाई – भैया !** या तो संसार का झूठा मौज ले लो या अपना सदा के लिए सच्चा आनन्द पा लो, दो बातों में कुछ ले लो। दो बातें एक साथ न चलेगी। परिकल्पित झूठे मायामय, अज्ञान अँधेरों में समाये हुए कुटुम्ब का वैभव इनका मोह, इनका लगाव, इनसे बड़प्पन, या तो उसका मौज ले लो, सो मौज वह भी नहीं। बीच – बीच में अनेक विपदायें हैं। बीच – बीच में भी क्या, निरन्तर विपदायें हैं। अगर इस मौज की आप को इच्छा नहीं है, इसे आप हेय समझते हैं तब फिर आइये अपने स्वरूप की ओर। स्वरूपदर्शन करें और उससे सन्तुष्ट रहें, उसका लाभ प्राप्त करें, मोक्षमार्ग में आये, मोक्ष का उपाय बनायें, मोक्ष प्राप्त करें। अब चुनाव आपका है अब आप क्या चुनते हैं। संसार में जन्ममरण करना और जैसे चाहे गंदे अच्छे भले बुरे सब तरह के देहों में बंधना और वहाँ ममता, रागद्वेषादिक के संकट सहना, यह मंजूर है तो जैसा आज तक करते आये वैसा करते रहो, वही उसका उपाय है और यदि यह बात चित्त में आती है कि संसार के संकटों से छुटकारा पाना है, अपने आप के स्वाधीन आनन्द से तृप्त रहना है तो ये क्षोभ, ये संगम समागम, मूर्छा, बाह्य के लगाव परित्याग करना होगा, अपने आप के स्वरूप ज्ञान के लिए उद्यमी बनना होगा।

**मोक्षोपाय के यत्न में सब कुछ न्यौछावर कर देने के साहस की आवश्यकता –** देखिये आप अगर मोक्षमार्ग में लगने के काम में आये और वहाँ कुछ धन लाभ कम हुआ तो इसका दुःख न मानें। मिटता है तो सब मिट जाय। जब जीवन है, आयु का उदय है तो शरीर टिकने का साधन मिलेगा जरूर। और विलक्षणता तो यह है कि ज्यों ज्यों आत्मा के उद्धार के काम में लगेंगे त्यों त्यों जब तक संसार में रहना होगा ठाठ से रहेंगे। अज्ञानी मिथ्यादृष्टि जन कितना ही तप कर लें वे चक्री तीर्थंकर जैसा वैभव नहीं प्राप्त कर सकते। इसको प्राप्त करने का अधिकार सम्यग्दृष्टि ज्ञानी को ही है, पर उसके लिए हिम्मत यह होना चाहिए कि सब मिटता है तो मिट जाय, कोई हर्ज नहीं। किसी भी बड़े काम में सफल होने का साधन हिम्मत ही तो है। बहुत बड़े व्यापार के काम के लिए लोग बड़ी भारी रकम लगा देते हैं, उन्हें साहस करना पड़ता है कि लाभ मिलेगा तो ठीक, न मिलेगा न सही, इतनी हिम्मत लगाकर वे उस भारी रकम को लगा



देते हैं तब वे लाभ पाते हैं । इसी तरह अगर अपने आकिंचन्य धर्म में अपने को समा देना है, मोक्षमार्ग में अपने को लगाना है तो यह हिम्मत बनानी होगी कि मैं तो अकिंचन हूँ, मेरा मेरे स्वरूप के सिवाय कुछ नहीं है । जब कुछ नहीं है तो दुनिया की दृष्टि में जो कुछ मिला है, वह सारा का सारा ना रहे तो मेरा कोई बिगाड़ नहीं है । मेरा मेरे स्वरूप के सिवाय मेरे में कुछ न रहे, यह बात तो मेरे में शुरू से ही है । ऐसी स्थिति आती है तो आये उसका स्वागत करें, उसकी हिम्मत बनायें तब जाकर आत्मा को मोक्षलाभ जैसी युक्ति बन पायगी । वह चीज बनाना है । क्या करना है मोक्ष के उपाय के लिए ? केवल अपने आपके स्वरूप को जानते रहना है। अकिंचन चैतन्य ज्योतिमात्र अमूर्त ऐसे स्वभाव को अपने ज्ञान में लेना यह काम करना, फिर तो जो कुछ होना होगा, अपने आप होगा । किसे मुक्ति मिलेगी ? अपने को मिलेगी। क्या उपायों को दृष्टि में लेकर काम बनेगा ? अरे बाहर के सारे लक्ष्य छोड़ने से काम बनेगा। जो ऊँची श्रेणियों में साधुजन चढ़ते हैं, आजकल तो श्रेणियां नहीं हैं, साधुजनों में इतनी क्षमता नहीं है कि वे अपने को धीर बना सके । तो श्रेणी नहीं होती, लेकिन जब श्रेणियाँ मिलती थी साधन से, तो “ तो श्रेणीमें क्या रहता है” क्या उसका लक्ष्य रखते थे, क्या "उससे लाभ मिल रहा है" इसका कुछ वे ध्यान न रखते थे । उनका लक्ष्य तो केवल चैतन्यमात्र अन्तस्तत्त्व का रहता था, फिर जो होना होता था वह स्वयमेव होता था । तो मोक्ष पाने के लिए अपने आपके उस स्वरूप का चिन्तन बनाना होगा । उसका लक्ष्य बनाओ, निमित्त का लक्ष्य न रखो ।

परलक्ष्यपरिहारपूर्वक स्वलक्ष्य में आने का अनुरोध – देखिये- कर्मक्षय भी जिन साधनों में होगा उन में होगा, पर उन साधनों का लक्ष्य रखकर कर्मक्षय नहीं बनता । काम तो उसी वस्तु में होगा जो उपादान हो । कार्य उपादान से ही प्रकट होता है अर्थात् जिस पदार्थ में जो परिणमन बनता है, जो कार्य बनता है वह कार्य उस उपादान से ही बनेगा, निमित्त से नहीं । वे चाहे अनेक हों, निमित्त का कोई गुण उपादान में नहीं आता । और उपादान में जो कुछ भी बन रहा है सबकी शक्ति पहिले से ही है । ऐसा भी नहीं कि उपादान कुछ न था और हो रहा है । सब पदार्थ अपनी – अपनी शक्ति से परिपूर्ण हैं । जीव और पुद्गल ऐसे हैं कि जिनमें विभाव शक्ति है, तो निमित्त विस्तार में इसमें विभावपरिणमन होते रहते हैं । सो उसमें भी मर्म यह है कि कब किस निमित्त को पाकर उपादान किस प्रभाव में आ जाता है? यह कला उपादान की है । निमित्त की बात तो इतनी है कि वह सन्निधान में है । अपने को चाहिये मोक्ष । तो मोक्ष का उपाय जो केवल स्वरूप है उसे जानना, समझना और उसमें रमण करना है, अन्य लक्ष्य मोक्ष के उपाय नहीं है । सार की बात इतनी है कि मोह ममता को छोड़ें मोह ममता बेकार की बात है । अगर इसमें सार हो तो इसे भी करें । अगर ममता करने से ही सार निकलता तो ममता होना ही धर्म था । पर इस ममता में कुछ भी सार नहीं है । खूब विचार करके देख लो । इन प्राप्त समागमों में अभी तक बहुत – बहुत ममता किया होगा, उनके प्रति बहुत – बहुत विकल्प किए होंगे, पर जरा बताओ तो सही कि आज तक उनसे आपने लाभ पाया क्या ?

उन परपदार्थों से ममता करने से सार क्या निकला सो तो बताओ । बल्कि फल यह मिला कि संसार में रूलना अभी तक बना हुआ है । तो इस ममता में कुछ भी सार नहीं है । इससे ममता को त्यागें और मुक्त होने का अपना दृढ़ संकल्प बनायें। निमित्त सन्निधान में भी परिणमयिता की परिणति कला का कथन – यह परिणमन की विधि का प्रसंग चल रहा है। निमित्त के उपस्थित होने पर उपादान में कार्य चलता है, इस प्रसंग में यह बात बतायी गई कि यह कला उपादान की है कि वह निमित्त को पाकर अपने आप में विभावपरिणमन कर ले । यह बात सुनकर मन में यह जिज्ञासा जग सकती है कि तब तो निमित्त की कुछ बात न रही । कुछ भी चीज सामने हो वही निमित्त कहलाने लगेगी । फिर तो जो लोकव्यवहार में निमित्त की व्यवस्था है कि ऐसा निमित्त जुटायें उससे कार्य बनेगा तो यह सब व्यवस्था व्यर्थ हो जायगी । कार्य हो रहा है, जो निमित्त आया उसकी उपस्थिति में कार्य बन जाते हैं । तो किसी भी पदार्थ का निमित्त पाकर उपादान अपना विभाव परिणाम बना ले और तब अलग - अलग निमित्त की उपस्थिति की छंटनी कैसे होगी ? भले ही यह जिज्ञासा बने, पर वस्तुस्वरूप जानने से समस्या हल हो जायगी । वस्तुस्वरूप यों है कि उपादान में कला तो अवश्य है कि वे अपनी ओर से विकार रूप परिणम जायें लेकिन वह इस प्रकार के निमित्त को पाकर अपना यह प्रभाव बनायेगा, यह भी तो विशेषता उस घटना के बीच है और इस स्थिति से निमित्त की एक विशेषता सिद्ध होती है। जैसे कोई मनुष्य कुर्सी पर बैठा है तो उसके बैठने में निमित्त कुर्सी तो हुई और उसमें उसी की विशेषता हुई है, मगर सड़ी हो, गली हो, टूटी हो तो उस पर वह पुरुष नहीं बैठ सकता । तो वह कुर्सी पुष्ट है, बलिष्ठ है, ठीक है, बैठने योग्य है, ऐसे पुष्ट निमित्त को पाकर मनुष्य बैठ सका, सो अब बैठने की क्रिया में कला पर विचार करें तो यह तो पुरुष की ही कला है कि वह ऐसी पुष्ट कुर्सी का निमित्त पाकर बैठने रूप परिणम गया । तो मनुष्य के बैठने में निमित्त होने पर भी कला तो पुरुष की कही जायगी । वह बैठने रूप परिणति, वह कला निमित्त की न कही जायगी । निमित्त में विशेषता तो अवश्य है । यदि ऐसी पुष्ट कुर्सी न हो तो न बनेगा बैठना, लेकिन निमित्त की विशेषता निमित्त में ही समाप्त है । निमित्त से बाहर कार्य में, उपादान में नहीं पहुँचती है । निमित्त की विशेषता निमित्त में है । उपादान में यह कला है कि किसी विशिष्ट समर्थ पुष्ट निमित्त को पाकर यह उपादान अपने उपयोग रूप से परिणम सकता है । इसमें दोनों जगह बातें दिखती हैं लेकिन परिणमन की जो बात है उसका सम्बंध, उसकी कला उपादान में है, और इस तरह भी समझ सकते हैं कि उपादान में योग्यता नहीं है, तो उस प्रकार के पदार्थ पड़े भी रहें, वे निमित्त नहीं हो पाते । जैसे सिद्ध भगवान कहाँ रहते हैं? जहाँ कि कार्माणवर्गणायें हैं वहाँ ही सिद्ध प्रभु हैं लोक में ही मुक्त जीव है और लोक में ही सर्वत्र कार्माणवर्गणायें भरी हैं, वे तो कर्मरूप परिणम कर जीव के दुःख का कारण बनती हैं । लेकिन न उनके बंधन है, न उनके दुःख का कारण है। तो उपादान में ही स्वयं ऐसी कला है कि वह किसी प्रकार के पदार्थ का निमित्त पाकर किस रूप परिणम सकता है।

प्र०252

आत्महितैषी की उपादान को प्रधानतया लखने की प्रकृति का कारण – इस प्रसंग में कुछ ऐसी दृष्टि जगी है कि उपादान को प्रधानता दी जा रही है । और कार्य हो रहा है दोनों कारणों से, दोनों कारणों में एक तो निमित्त कारण हुआ और उपादान कारण में कार्य हुआ तो यह चित्त में शंका हो सकती है कि जब निमित्त बिना कोई कार्य नहीं होता तो निमित्त से एकदम दृष्टि मोड़कर और एक उपादान में ही दृष्टि ले जाने का यत्न क्यों किया जा रहा है ? जब कारण दोनों हैं तो बात दोनों की करें, लक्ष्य दोनों का करें, प्रधानता दोनों की करनी चाहिए । फिर ऐसा ना करके उपादान पर ही लक्ष्य किया जाता है और निमित्त से लक्ष्य हटाया जाता है ? इस सम्बंध में वास्तविकता यह है कि पहिला निर्णय तो यह कीजिए कि निमित्त की उपस्थिति में जो कार्य होगा वह विभाव का होगा और निमित्त के अभाव में जो कार्य होगा वह स्वभावकार्य होगा । अब आपको स्वभावकार्य से रुचि है या विकार से रुचि है? अगर स्वभावपरिणमन से रुचि है तो स्वभाव के परिणमन वाली बात में प्रतीति करना चाहिए, एक बात । दूसरी बात यह है कि कुछ अवस्थाओं में जो मोक्षमार्ग की अवस्थाएँ हैं ( मोक्ष अवस्था की व मिथ्या अवस्था की बात नहीं कह रहे ) किन्तु इनके बीच जो मोक्षमार्ग की अवस्था हैं उन अवस्थाओं में कुछ आश्रयभूत तत्त्व है ऐसा कि जिस की उपस्थिति में कर्मों के झड़ने का अथवा मोक्षमार्ग का काम चल रहा है । एक निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध है वहाँ, लेकिन निमित्त का लक्ष्य करने पर वहाँ मोह और पर दृष्टि बनती है। उससे तो कार्य बहुत बिगड़ा हुआ हो जायेगा । संसार में रूलने का कार्य बन बैठेगा । इससे जीव को निमित्त का लक्ष्य करके रहना उचित नहीं है, लेकिन निमित्तनैमित्तिक भाव से मना भी नहीं किया जा सकता । यह तो कार्य की पद्धति की जानकारी की बात है। एक जानकारी की बात होना और एक कर्तव्य की बात होना । जानकारी तो यह है कि जितना भी अमूर्त से हटा हुआ परिणमन है वह स्वभावपरिणमन नहीं है, विभावपरिणमन है । वह सब निमित्तनैमित्तिक भावपूर्वक है। लेकिन कर्तव्य क्या है ? यदि हम निमित्त का लक्ष्य करके उसका कोई विचार बनायें, पर दृष्टि बनायें तो भला काम न होगा, विकाररूप परिणमन का ही कार्य होगा । इस कारण निमित्त का लक्ष्य रखना कर्तव्य नहीं है । निमित्त के लक्ष्य से जीव में विकारपरिणमन होगा और यदि स्वाश्रित दृष्टि होगी, सबसे निराला चैतन्यमात्र यह मैं हूँ ऐसी अन्तर्दृष्टि होगी तो स्वभाव का विकास बनेगा, बात सब तैयार है यहाँ, क्योंकि सब जीव ही ये पूरे तैयार हैं, परिपूर्ण हैं बस इसी कला पर सृष्टि है ।

**दृष्टि की सृष्टाधारता** – देखिये दृष्टि पर जीव की सृष्टि है । मैं अपना भविष्य कैसा बनाऊँ, अपने को क्या बनाऊँ, यह सब हमारी दृष्टि पर निर्भर है । कितना ऐश्वर्य है इस जीव का । यह बात अन्य पदार्थ में न मिलेगी । यह जीव जैसी दृष्टि बनाता है वैसी इसकी सृष्टि होती जाती है । दृष्टि सब सृष्टि का आधार है। संसार में कैसी सृष्टियाँ हैं ? यहाँ कोई किन्हीं चीजों के संयोग मेल से या वैज्ञानिक आविष्कार से कीड़ा मकोड़ा, पेड़ पौधा – पशु, पक्षी, मनुष्य आदि बना तो दे! नहीं बना पाता है, और तो जाने दो प्राणियों

के अंग का जो मल है वह ही कोई वैज्ञानिक बना दे। तो ये सब जीव के जितने परिणामन हैं वे उस जीव की दृष्टि पर निर्भर हैं। कोई जीव पशु बन गया तो जैसे कुम्हार घड़ा बना लेता है ऐसे घड़ने जैसी बात उस पशु के बनने में हुई है क्या? बताइये किस चीज से बना वह पशु, किसने बनाया, कहाँ बैठकर बनाया? कोई इसका ठीक उत्तर नहीं बैठता। और यह प्राकृतिक बात देखिये कि जीव ने दृष्टि ऐसी कषाय भरी की कि जिससे ऐसा कर्मबन्ध हुआ कि जिसके उदय में स्वयं ही प्रकृत्या यहाँ वहाँ के फैले हुए अपने साथ विस्त्रसोपचय रूप से लगी हुई आहारवर्गणायें शरीररूप परिणम गई। शरीर बना, अब यह वृद्धि को प्राप्त हो रहा, ये सब बातें इस जीव में स्वयं हो रही हैं, कोई करने वाला हो जगत के सब पदार्थों का तो बना ही नहीं सकता। अनन्तानन्त पदार्थ हैं, उनकी संभाल कर सकने वाला कौन है? लोग कहते हैं ऐसा कि ईश्वर की एक शक्ति है, एक लीला है, एक ऐसी विशेषता है, ऐसी वह अनन्त सामर्थ्य वाला है कि सारे जगत के पदार्थों को वह रच देता है। ऐसा कोई ईश्वर अगर है तो यह अपने आनन्द का अनुभव करेगा या इन समस्त परिणमनों को करेगा, एक बात। दूसरी बात यह है कि ये होंगे कैसे? विज्ञान सिद्ध बात नहीं बनती। निमित्त उपादानपूर्वक होने वाले कार्य में उनकी विधि विचारें। ये सब कार्य बिना उपादान के किसी भी प्रकार न हो सकेंगे। निमित्त उपादानपूर्वक होने वाले सभी कार्यों को उन पदार्थों के ही ऊपर छोड़ दे। वे हैं ना, तो निरन्तर उत्पाद वे करते ही रहेंगे। यह उनमें स्वभाव पड़ा है। अब कहीं कोई कमती नहीं हो सकती। जो एक सत् है, जहाँ पड़ा है वहीं उत्पाद व्यय करता रहेगा, यही सृष्टि कहलाती है। तो जीव की जो सृष्टि हो रही है वह जीव की दृष्टि पर हो रही है। इस कारण दृष्टि का विशुद्ध करना अति आवश्यक है। हम सही परिज्ञान करें तो हमें ज्ञानप्रकाश मिलेगा और हम अच्छे शान्त वातावरण में रह सकेंगे।

**अज्ञान की महती विडम्बना** - अज्ञान से बढ़कर विडम्बना कोई नहीं है। लोक में तो यह बात पहिले मालूम पड़ जाती है। जिसको जिस बात का ज्ञान नहीं है वह उस बात में लगे, तो कितनी गलतियाँ, कितनी विडम्बनायें, कितनी बात होती है, लोग उस पर हंस देते हैं, क्योंकि अज्ञान में विडम्बनायें बसी हुई हैं। एक बार गृहस्थावस्था में हम खेत पर से दो तीन गाड़ी गुड़ लेकर आ रहे थे तो रास्ते में एक गांव मिलता है मामा का गांव। बैसाख के दिन थे, बड़ी तेज धूप थी तो मामा ने एक दिल्लगी की कि अरे यह गुड़ गर्मी के मारे पिघला जा रहा है, इस पर एक दो घड़ा पानी छिड़क दो तो इसका पिघलना बंद हो जाय। तो हमने क्या किया कि मामा के घर से दो एक घड़ा पानी लाकर उसमें छिड़कना शुरू किया तो हमारे उस कार्य को देखकर सभी लोग हँसने लगे। तो यहाँ यह बता रहे हैं कि अज्ञान में कितनी विडम्बना होती है, लोग हँसते हैं। जिसको जिस चीज का ज्ञान नहीं है उसके उस कार्य को करता देखकर लोग समझते हैं कि देखो यह बेहोश है, इसे कुछ सुध नहीं है। अब जरा परमार्थ तत्त्व पर तो आइये। हम आप लोग कर क्या रहे हैं? घर में मोह, कुटुम्ब में वैभव में मोह, इज्जत में मोह। और ये सभी चीजें असार हैं, है एक पुद्गल का ढेर, ईंट पत्थर का ढेर और वे भी विनाशीक, भिन्न उनसे मेरा सम्बंध क्या? परिचय

क्या ? कर्मों के प्रेरे हुए अनेक योनियों में भटकते भूलते यहाँ पैदा हो गए, उन्हें तो कहीं न कहीं पैदा होना ही था । अब इस मोही जीव की यह आदत है कि जो मिला उसी में मोह करता है । कोई हिसाब का मोह नहीं है कि इस जीव को तो इस जीव से ही मोह होना चाहिए, क्योंकि यह ही पुत्र है, यह ही स्त्री है, आदि । यह तो एक अटपट मोह है । चूंकि विकार वासना है इसके, इस कारण जो भी सामने मिला उसी में मोह करने लगता है। तो है ना यह बिल्कुल अज्ञानपूर्ण बात । इसमें कितनी विडम्बना भरी है सो यह बेचारा सहता जाता और पता भी नहीं कर पाता ।

**रत्नत्रय में ही वास्तविक इज्जत की संभूति** - इज्जत की बात क्या ? क्या है इज्जत ? इस अनन्त काल में थोड़े काल के लिए स्वार्थी जनों ने यदि कुछ गा दिया तो यह कोई आत्मा की इज्जत है क्या ? आत्मा की इज्जत तो रत्नत्रय में है । अपने स्वरूप का श्रद्धान हो, ज्ञान हो और उस ही में रमण हो तो इज्जत बन चुकी । और उसका स्पष्ट उदाहरण यह है कि उनके नाम की हम आप मूर्ति बनाकर पूजते हैं। इससे बढ़कर जीव की और इज्जत क्या होगी ? जो मूर्ति अपनी ओर से कुछ नहीं कहती, कोई आदमी अपनी ओर से कुछ कहता है तो लोगों का आकर्षण या भाव बढ़ाने में कारण पड़ता है, मगर मूर्ति कुछ नहीं कहती । वहाँ हम आप कुछ ज्ञान करते हैं, हम आप ही अर्थ लगाते हैं, हम आप ही भाव भरते हैं और उन प्रभु की भक्ति उपासना किया करते हैं । तो यह स्पष्ट उदाहरण है कि इज्जत तो वास्तव में रत्नत्रय के धारण करने वाले की है, अन्य किसी की इज्जत नहीं है । और वह इज्जत वास्तव में परमार्थ से उनकी उनके लिए हैं । और जो उनकी उपासना करते हैं उनका यह आंशिक रत्नत्रय इज्जत के लिए है । तो प्रकट सब असार है, रंचमात्र कहीं भी सार नहीं है । कोई बड़े आराम से रह ले, अच्छी मौज की जिन्दगी बिता ले तो उसने लाभ कौन सा लूट लिया ? मरण तो होगा ही । मरण के बाद फिर न जाने कहाँ जन्म होगा, न जाने उस जीव पर क्या बात बीतेगी ? तो कौन सा लाभ उसे मिल गया ? अगर कुछ सुख से रह लिए, कुछ आराम से रह लिए, अपना कुछ स्वार्थ साध लिया तो उसमें कौन सी बात लूट ली गई ? लाभ तो मात्र रत्नत्रय में है, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्कारित्ररूप परिणाम में । इस बात की रुचि रखने वाले, इस ओर लगने का उत्साह रखने वाले बिरले हैं और बहुतायत बनी हुई है मिथ्यादृष्टियों की, मिथ्या आचरण करने वालों की, लेकिन ज्ञानी पुरुष कभी सत्पथ से डिगता नहीं हैं कि लोगों की भावना देखकर, लोगों का रवैया देखकर, उनकी प्रवृत्ति निरखकर यह भी सोच लें कि अरे सार तो इसमें है, इसमें लगना चाहिए, ऐसा भाव ज्ञानी के नहीं जगता । तो ज्ञान में तो लाभ है और अज्ञान में विडम्बना है।

**स्वरूपस्मरण में ही वास्तविक लाभ** - अब जिनका होनहार अच्छा है, निकट संसार है, जन्म मरण से छूटने का समय निकट आ गया है, जिसको संसार से मुक्त होने की बात नजदीक मिली है उसके यह ज्ञानप्रकाश का भाव बनता है । मैं हूँ और यही मैं हूँ मेरा सर्वस्व हूँ, मेरा सब कुछ परिणमन, विधि सब

मेरे में इतने में ही चलता है । इससे बाहर मेरा कहीं कुछ नहीं है, ऐसा निरखता है, और ऐसा देखकर यह तृप्त रहता है । यह सब प्रताप है आकिंचन्य का । अपने आपको अकिंचन, अपने आपको अपने स्वरूप में सर्वस्व भरा हुआ जो निरखेगा उसका मोह टूटेगा । जिसका मोह मिटेगा उसको शान्ति प्राप्त होगी । शान्ति का और कोई रास्ता नहीं है। मोह कर करके यह जीव शान्ति प्राप्त कर सके, यह कभी नहीं हो सकता । जो लोग आज भले अच्छे जीवित हैं और बड़े सुख से, आराम से रहते हैं, हंसी खुशी से रहते हैं उनकी यह हंसी खुशी, उनका यह आराम कितने दिनों का है? वह दिन तो सब पर आयगा जब कि रोना पड़ेगा । वियोग का दिन आयगा, मरण का दिन आयगा और वहाँ उन्हें पश्चात्ताप करना पड़ेगा, और जिसने अपने अंतः प्रकाशमान आत्मस्वरूप को जाना है और यह निर्णय किया कि मेरा सब कुछ यहीं है, मुझे अन्य से कोई आशा नहीं है, मुझे अन्य के प्रति कोई आकर्षण नहीं, मैं कभी भी किसी भी जीव में कुछ नहीं चाहता । मैं तो यह हूँ, इतना ही हूँ, इतने से ही मेरा सम्बंध है । इतने को ही अपने को जो दृष्टि में रखेगा वह तो अन्तः प्रसन्नता के साथ यहाँ से तिर जायगा । उसको क्लेश के समय न आयेंगे । तो यह सब महा लाभ है, यही स्वलक्ष्य है, यही परदृष्टि से निवृत्त होना है। अपने आप में रमने में ही लाभ है, यह बात जिसके हृदय में समायी है वही जीव धन्य है और वही उपासनीय पुरुष है।

अपनी भलाई के अर्थ स्व लक्ष्य रखने व ज्ञाता रहने का कर्तव्य – देखिये, अब भले काम के लिए यह सिद्धान्त निकला कि जानकारी तो पूर्णतया कर लो, पर कर्तव्य है आत्मा साधना का, कर्तव्य है अपने आप के लक्ष्य का । अब किन्हीं बाह्यपदार्थों की दृष्टि रख करके अपने में विकल्प बनाने का कर्तव्य नहीं है। इससे भी बात विचारें तो निज का लक्ष्य भी एक कमजोरी की अवस्था है। लक्ष्य करना और जानकारी रखना, इन दोनों में अन्तर है । प्रभु परमात्मा आत्मा को भी जानते, पर को भी जानते, पर लक्ष्य न आत्मा का करते और पर का तो करते ही नहीं । लेकिन जब तक ऐसी सहज दशा उत्पन्न नहीं होती है तब तक अपना कर्तव्य है स्वलक्ष्य करने का । जब लक्ष्य में कुछ न कुछ आता ही है तब कर्तव्य है अपना लक्ष्य करना और जहाँ ऐसी सहज वृत्ति जग जाती है कि लक्ष्य में कुछ आता ही नहीं है, ज्ञान में अब आ रहा है तो उनके लिए लक्ष्य करने के लिए कुछ न रहा । केवल एक ज्ञानपरिणमन । ज्ञान ध्यान और तप, इन तीनों में उत्कृष्ट दशा है ज्ञान की । यहाँ ज्ञान से मतलब अर्जित ज्ञान नहीं, विद्या नहीं किन्तु केवल ज्ञातादृष्टा, केवल जानना यह सबसे उत्कृष्ट स्थिति है । इसके जानकर जब इस स्थिति में नहीं रहते तब वे ध्यान करते हैं, और जब कभी ऐसी स्थिति जगती है कि ध्यान में भी नहीं रह पाते तो वे संयमी तपश्चरण आदिक के कार्यों में लगते हैं । अब समझ लीजिए कि अपने अन्दर का स्वभाव, वैभव, धन, सर्वस्व ये अपने आपके लिए कितने महत्त्वशाली और उपयोगी हैं, जिनकी हम सुध नहीं लेते और बाह्य में परवस्तुओं की आशा रखकर दुःखी होते हैं ।

विज्ञान दृष्टि और हित दृष्टि – परिणमन के याथातथ्य को दो दृष्टियों से समझिये – एक वैज्ञानिक दृष्टि और दूसरी हित दृष्टि । विज्ञान दृष्टि में सर्वतोमुखी निर्णय बना है । वहाँ निमित्त की अनुपस्थिति में कार्य नहीं

होता, यह दिखा और निमित्त की किसी परिणति से कार्य नहीं होता उपादान में यह भी दिखा । कोई पुरुष केवल एक ही पदार्थ की दृष्टि रखे तो वहाँ यह दिखेगा ही कि यह पदार्थ है, ऐसे गुण वाला है और समय – समय पर उसमें परिणमन होते हैं और उसमें परिणमन उसके ही उत्पाद व्यय से होते हैं, उसमें किसी दूसरे का कोई हाथ नहीं है यह दिखा, लेकिन यह भी तो निर्णय पड़ा हुआ है कि इस प्रकार का ही विभावपरिणमन हो ऐसी नियमितता क्यों है ? तो उसका उत्तर होगा कि निमित्त के सन्निधान में और उपादान की योग्यतानुसार कार्य होता है, ऐसे ज्ञान का एक महान बल है। अब हित दृष्टि की ओर से देखिये तो हित दृष्टि का एक ही उसूल है कि पर का लक्ष्य न हो। पर का लक्ष्य न करो यदि अपना हित चाहते हो, आत्मोद्धार चाहते हो तो एक ही सिद्धान्त है मूल में कि पर का लक्ष्य मत करो, स्व ही लक्ष्य हो और उससे भी बढ़कर ये स्थिति बने कि न स्व लक्ष्य में रहे, न पर लक्ष्य में रहे । लक्ष्य और अलक्ष्य का विकल्प ही न हो । एक अपने आप का सहज परिणमन होता हो, यह है हित की स्थिति । और और बातें किस प्रकार हो रही हैं और हमें हित के लिए किसे निरखना चाहिए, ये दो बातें अपने अपने क्षेत्र में भली प्रकार जानना चाहिए । फिर भी हित की दृष्टि की प्रधानता में हित वाला ही वर्णन किया जायगा, पर का लक्ष्य न रहे इस पद्धति का ही वर्णन किया जायगा, और इस वर्णन में द्वैत न दिखना चाहिए । पर न दिखना चाहिए ऐसा वर्णन होगा । लेकिन उस वर्णन को हित में और भक्ति में उपासना में न ले जाकर एक निर्णय जैसी बात घोषित करे तो यह एकान्त की बात अयुक्त हो जाती है । निर्णय में तो सर्वतोमुखी निर्णय होगा और हितदृष्टि में जैसे हित हो उस प्रकार की दृष्टि बनती है।

#### प्र०254

परलक्ष्य न करके स्वलक्ष्य करने के उपदेश की प्रधानता का कारण – यहाँ यह आशंका की जा सकती है कि निर्णय में जितनी बातें आती हैं उतनी ही दृष्टि रखने में क्या हर्ज है? निर्णय की तो बात है, सच तो बात है । सत्य की ओर से क्यों मुकरा जाय ? निमित्त की स्थिति में कार्य नहीं होता, यह जब सत्य है तब फिर सत्य बात का तो कितना ही आश्रय किया जाय, कितना ही निरखा जाए , उसमें पर को भूलने की बात क्यों कही जाती है? उक्त आशंका के समाधान में सत्य की बात सुनो । एक होता है घटित सत्य और एक होता है परमार्थसत्य । सत्य का अर्थ है जो सत् में हो सो सत्य, जो सद्भूत वस्तु है अथवा जो उपादान है उसमें जो हो सो सत्य । इस सत्य को कहेंगे परमार्थसत्य । जो एक सत् में हो रहा वह सत्य है । किसी भी सत् में किसी दूसरे का कुछ नहीं होता । और घटित सत्य यह है कि निमित्तनैमित्तिक भावपूर्वक कार्य हो रहे हैं तो किस स्थिति में, किस निमित्त की उपस्थिति में, उपादान में किस किस तरह कार्य होता है यह सब बताना एक घटना सत्य है । अब घटित सत्य को ही ले लीजिए । एक कार्य पड़ा हुआ है यह कि मुझे शान्ति मिले, सत्य शान्ति मिले, निर्बाध शान्ति मिले, जिसके बाद फिर अशान्ति में न आना पड़े । तो ऐसी शान्ति भी तो एक घटना है वह घटना कैसे घटित होगी ? सो प्रयोग और अनुभव करके समझ लिया जायगा कि जब परवस्तु लक्ष्य में रहती है तब शान्ति से भेंट नहीं होती है। और जब पर लक्ष्य छूटकर केवल

एक स्वलक्ष्य रहता है वहाँ आकुलता दूर होती है। तो शान्ति के लिए परलक्ष्य की बात छोड़कर स्वलक्ष्य में आने की बात भी तो एक घटित सत्य है, इसलिए हितदृष्टि में पर को लक्ष्य न करने का उपदेश है और एक स्व ही लक्ष्य में रहे ऐसा संदेश है।

### प्र०255

**निमित्त और नैमित्तिक भाव का भाव** – निमित्त और नैमित्तिक भाव के मायने क्या है ? निमित्त तो कहलाते हैं बाह्यपदार्थ, जो उपादान में होने वाले कार्य के साथ अविनाभाव रखते हों, और नैमित्तिक कहलाते हैं वे कार्य जो कार्य निमित्त से अविनाभाव रखते हों। अर्थात् जिनके होने पर कार्य हो, जिनके न होने पर कार्य न हो वह है निमित्त, पर कार्य जिसमें न हो। कार्य जिसमें हों उसे कहते हैं उपादान। अविनाभाव की बात उपादान में कार्य के साथ नहीं लगायी जा सकती, क्योंकि उपादान तो सदा है। जैसे रागभाव के लिए यह कहा जायगा कि राग प्रकृति के होने पर राग होता है, रागप्रकृति का उदय न होने पर राग नहीं होता, इस कारण राग भाव का अविनाभाव उपादान में घटाने लगे तो क्या ऐसा अविनाभाव घट जायगा कि आत्मा होने पर राग भाव होता है, आत्मा के न होने पर राग भाव नहीं होता। ऐसा कौन सा समय है जब कि आत्मा न हो ? फिर वहाँ यह अविनाभाव क्या बनेगा कि आत्मा के न होने पर राग न हो, आत्मा के होने पर राग हो ही। दोनों तरह से नहीं बनता। आत्मा के होने पर राग होता ही रहे, यह भी नहीं बनता और आत्मा न हो यह भी नहीं बनता। तो विभाव का अविनाभाव निमित्त के साथ है लेकिन निमित्त वह है कि जिसमें कि कार्य नहीं होता, जिसका कि वह परिणमन नहीं है किन्तु अन्वयव्यतिरेक हो जैसे कर्म।

### प्र०256

**जीव के विभाव होने में आश्रयभूत पदार्थ का संकेत** – जीव में क्रोध किसी दूसरे पुरुष के व्यवहार की अरुचि से हुआ। कोई कैसा ही चलता है, कैसा ही अपना व्यवहार कर रहा है, बोल रहा है, वह न सुहाया, उसकी रुचि न हुई, क्रोध जग गया, तो क्रोध तो हुआ नैमित्तिक और पुरुष हुआ निमित्त। यह स्थूल दृष्टि से कहा जा रहा है। पुरुष निमित्त वस्तुतः नहीं कहलाता क्रोध का ? वह आश्रयभूत कहलाता है। आश्रयभूत पदार्थ के सम्बंध में यह बात है कि उपादान यदि उसका आश्रय करे तो आश्रयभूत बनेगा, न आश्रय करे तो न बनेगा। केवल जीव के विभावपरिणमन के लिए ही आश्रयभूत निमित्त होता है, अजीव की परिणति के लिये नहीं। अजीव में परस्पर निमित्तनैमित्तिक भाव ही है। वहाँ ऐसा नहीं है कि कोई आश्रयभूत पदार्थ हो और कोई निमित्त हो। जीव के लिए ही, जीव के कार्य के लिए ही ये दो भाग हैं कि कुछ होगा आश्रयभूत, कुछ होगा निमित्त। जैसे घड़ी रखी है और एक टेबिल पर रखी है तो घड़ी का टेबिल आश्रयभूत नहीं कहा जा सकता, निमित्तभूत कहा जायगा। आश्रयभूत वस्तु वह कहलाती है कि



जिसका आश्रय लें तो ले, न लें तो न लें, दोनों बातें बन सकती हैं जहाँ, पर अजीब अजीबों में ऐसा नहीं है। जैसा निमित्त होगा वैसी ही बात बनती है। जीव में है ऐसा कि कुछ आश्रयभूत हो वहाँ। एक पुरुष गाली देता है, मोही पुरुष ने उसे आश्रयभूत बनाया और निर्मोही ज्ञानी मुनि ने उसे आश्रयभूत नहीं बनाया। निमित्त की ऐसी बात है कि उस मुनि के केवल संज्वलन कषाय ही है और वह तीव्र कषाय के लिए निमित्त नहीं है। क्योंकि वह मदंशक्ति की प्रकृति है कि गाली – गलोज देने वाले व्यक्ति का आश्रय ना बना सकी। तो यों निमित्तनैमित्तिक भाव में अविनाभाव है, आश्रयभूत पदार्थ में नहीं। कर्मों के उदय से क्रोध उत्पन्न हुआ तो कर्म तो निमित्त हैं और क्रोध नैमित्तिक हुआ।

**कर्मदशा के लिये आत्मपरिणाम की निमित्तभूतता** – आत्मा के क्रोध कषाय का निमित्त पाकर कर्म बँधे, तो निमित्त हुए आत्मा के कषायभाव और नैमित्तिक हुआ कर्म में बन्धन। कर्म में कुछ भी काम हो, उसके लिए सब निमित्त बनेंगे, आश्रयभूत न बनेंगे, क्योंकि कर्म जड़ है। जड़ पदार्थ के कार्य के लिए कोई आश्रयभूत हो, कोई निमित्त हो ऐसा भाग नहीं है उसके लिए सभी निमित्त है और इसी कारण कर्मबन्ध में गलती कभी नहीं होती। कोई मनुष्य किसी भी जगह, किसी भी ढंग से, कैसे ही मायाचार से कुछ भी गुप्त कार्य करे, कोई मनुष्य उसे जान सके या ना जान सके, मगर कर्म का बन्धन तो होगा ही, क्योंकि कर्मों को कषाय निमित्त चाहिए उस जीव ने कषाय की। चाहे रसोई घर में बैठकर कषाय करे, चाहे किसी कमरे में अकेले बैठ कर कषाय करे, चाहे मायाचारी रखकर कषाय करे, कोई न समझ सके इस प्रकार से कषाय रखे तो रखे, कितने ही पुरुष ऐसे होते हैं कि आ तो रहा है क्रोध, मगर वचन यों बोलेंगे कि अपनी बड़ी शान्ति दिखा रहे हैं और मुझे कुछ गम नहीं क्या कहा, क्या बात है आदिक कुछ भी कहें, मगर चित्त में क्रोध बस रहा है तो कर्मों का बन्धन तो होगा ही। पुरुषों से मायाचार कर लिया तो करे मगर कर्म से मायाचार नहीं कर सकते। क्योंकि कर्मों के बन्धन के निमित्त हों तो वे बंधेंगे ही। चेतन में भूल हो जायगी पर अचेतन न भुलेंगे। उनमें जब जहाँ जिस तरह का निमित्त पाकर जो कर्म होना होगा वह होगा ही। जब आत्मा ने कषायभाव और कर्म भाव किया तो निमित्त है कर्मबन्ध और नैमित्तिक है कषायभाव।

प्र०257

**निमित्तभूत पदार्थ और आश्रयभूत पदार्थ के निमित्तत्व का अन्तर** – निमित्तभूत कर्म और अन्य पदार्थों में यही अन्तर है कि जीव के परिणामन में कर्म तो निमित्त होते हैं और अन्य पदार्थ आश्रयभूत होते हैं। बाह्यपदार्थ जब कल्पना के विषय हुए तब वे निमित्त होते हैं इस कारण उन्हें निमित्त शब्द से न कहकर आश्रय मात्र कहना चाहिए। विषय मात्र हो जीव के, तब क्रोध भाव जगे, कर्म का उदय जगे। क्रोधपरिणामन होने को है तो जो बात सामने होगी, जो परिणति दिखेगी उसको आश्रयभूत बनाकर वह क्रोध करेगा। और कोई ऐसा भी हो सकता है कि उस ढंग के क्रोध होने के लिए आश्रयभूत अगर नहीं मिलता है

तो कषाय तो वहाँ जग जायगी मगर उसमें तीव्रता न आयगी । और ऐसा स्थिति में कोई यह शंका करे कि फिर तो निमित्त की बात सही न रही । कर्म का उदय आये, क्रोध कषाय का उदय आये और आश्रयभूत उसे न मिल सके ढंग का तो क्रोध उसके तेज न हो सकेगा । तो बात वहाँ यह है कि फायदा उसे अभ्यास का होता है। साक्षात् फायदा नहीं होता, किन्तु वासना जो अन्दर है वह उसी किस्म की है कि वहाँ बन्धन होगा ही । मगर अभ्यास का फायदा उसे यह है कि आश्रयभूत पदार्थों का वह त्याग कर दे तो उसका अभ्यास यों बनेगा कि कभी वह अपने भीतर वासना में भी अन्तर डाल लेगा । तो वहाँ अभ्यास का अन्तर आया, उसका लाभ हुआ । लेकिन जिस प्रकृति का जिस अनुभाग में कर्म का उदय आया उसे उसका व्यक्त रूप नहीं बन पाया आश्रयभूत पदार्थ न होने से, मगर भीतर – भीतर वासना होने से उतना ही काम करेगा । देखिये इसी बुनियाद पर दो प्रकार के उपदेश किए जाते हैं। एक तो यह कि भाई घर छोड़ा तो क्या फायदा ? वासना तो बनाये रहे। एक तो इस तरह का उपदेश मिलता है । गृह त्याग कर दिया, निर्ग्रन्थ हो गए, वन में रहने लगे, मगर मोह न छूटा तो क्या फायदा हुआ ? यों उपदेश दिया जाता है। और एक यों उपदेश दिया जाता कि देखो बाह्य पदार्थों का त्याग करो, इन विषयों का त्याग करो । चरणानुयोग में यह वर्णन बहुत आता है, और वहाँ इस बात पर प्रधानता नहीं देते कि त्याग करें या ना करे, बंध तो वासना के अनुसार होगा । यह वहाँ कथन नहीं करते, इसी पर ही जोर देते हैं कि तुम वैभव का त्याग करो अथवा अमुक चीज का त्याग कर दो, इतनी चीजों का परिणाम रख लो, यह उपदेश चलता है। इन दोनों उपदेशों का समन्वय कैसे हो ? बात अलग – अलग क्षेत्र की है । एक दे रहा है वासना को बुरा बताकर वासना के त्याग पर जोर और एक दे रहा है बाह्य पदार्थ के सम्बंध को खतरनाक बताकर बाह्य पदार्थों के सम्बंध के त्याग पर जोर । समन्वय यों है कि बाह्य पदार्थों के त्याग से तो अभ्यास का लाभ मिलता है और वासना के त्याग से साक्षात् लाभ मिलता है। तो आश्रयभूत पदार्थों का परिहार करने से भी लाभ है लेकिन साक्षात् लाभ है उस अभ्यास से, उस ज्ञान से, उस उपादान से जिससे कि वासना दूर होती है ।

**कर्म की निमित्तभूतता** – बाह्य पदार्थ और कर्मोदय ये दोनों निमित्त हैं मगर इनमें अन्तर है। एक तो विषयभूत है और एक निमित्तभूत है । आश्रयभूत को कहा गया है कि ये निमित्त के नोकर्म हैं – राग प्रकृति का उदय, राग प्रकृति के बाह्य साधन की उपासना में अपना फल दिखाता है । तो पुरुषों के लिए कहलाये वे आश्रयभूत और कर्मोदय के लिए कहलाये बाह्य पदार्थ नोकर्म । जैसे निद्रा प्रकृति के उदय आने पर नींद आती है, ठीक है, आ गई नींद, और कोई भैंस का दही खूब खाये किसी दिन तो देखो उस दिन कैसी नींद आती है ? तो निद्रा प्रकृति के उदय के लिए भैंस का दही नोकर्म है । नोकर्म का मतलब है कि जिसके सन्निधान से निमित्त अपना प्रभाव पूरा बना सके वह नोकर्म है। तो कर्म हमारे कल्पना के विषय होकर निमित्त नहीं होते । बहुत से प्राणी ऐसे हैं कि कर्मों के सम्बंध में कोई जानकारी नहीं रखते, कर्म कितने कितने प्रकार के हैं, कर्म की कितनी सूक्ष्म वर्गणायें हैं, इस जीव के साथ विस्रसोपचय लगे हैं, कर्मों के कितने प्रकार हैं, कितने ढंग हैं, इन बातों का किन्हे ज्ञान है ? कर्म कल्पना के विषयभूत नहीं हैं मगर वे

निमित्तभूत हैं। जैसे कोई चीज जलाने के लिए आग कल्पना का विषय बने तब जले ऐसी बात नहीं है, आग मिलेगी तो वह चीज अवश्य जल जायेगी। जैसे किसी ने भूल से पीछे रखी हुई आग पर पैर रख दिया तो वहाँ यह गुंजाइश न चलेगी कि भाई हम तो आग को कल्पना में ले ही नहीं रहे थे, आग ने क्यों हमारे पैर को जला दिया? तो जल यों गया कि वह पैर अजीब है और आग अजीब है, वहाँ कल्पना में लेने पर कोई चीज न जलेगी किन्तु वहाँ तो सीधा निमित्तनैमित्तिक भाव है। हाँ आग पड़ने पर भी अब जीव तो अन्दर में दुःखी हो रहा है उसके लिए कल्पना का विषय बन जायगा। जीव के परिणमन के लिए बाह्य पदार्थ कल्पना के विषय होते हैं, और कर्म कल्पना के विषय होकर फल नहीं देते, किन्तु वे आते हैं तो फल देते ही हैं। काल्पनिक और प्राकृतिक ये दोनों ही निमित्त हैं, आत्मा से पृथक प्राकृतिक निमित्त तो है कर्मोदय कर्म की अवस्था और काल्पनिक निमित्त है आश्रयभूत पदार्थ। हैं दोनों आत्मा से जुड़े।

जीव ने राग किया तो वहाँ प्राकृतिक निमित्त है पर प्रकृति का उदय और काल्पनिक निमित्त हैं स्त्री पुत्र वगैरह। तो ये दोनों के दोनों आत्मा से जुड़े हैं कर्म भी जुड़े हैं और वह कुटुम्ब भी जुड़ा है। उन दोनों की परिणति से आत्मा में राग नहीं हुआ। न कर्म की परिणति से आत्मा में राग हुआ, न कुटुम्ब की परिणति से राग हुआ। इस कारण परमार्थतः निमित्त आत्मा के साथ कार्य कारण भाव नहीं किन्तु निमित्तनैमित्तिक भाव है कर्ता कर्म भाव नहीं। कर्म कर्ता हो जीव के राग का अथवा कुटुम्ब कर्ता हो जीव के राग का, ऐसी बात नहीं है हाँ निमित्त मात्र हैं वे दोनों, एक है काल्पनिक निमित्त और एक है प्राकृतिक निमित्त। हमारा वश काल्पनिक निमित्त से हटाने का हो सकता है क्योंकि कल्पना की चीज ही तो है। आज हम कल्पनायें किए हैं – निमित्त हो रहा है, न कल्पनायें करें, निमित्त न होगा, इस कारण बाह्य पदार्थों का त्याग करने का उपदेश है और उसको लक्ष्य में न लेने का उपदेश है।

## प्र० 258

**एक पदार्थ में ही कर्तृकर्मभाव** – इस प्रसंग में दो विषय बताये गए थे कि कर्तृकर्म भाव और दूसरा निमित्तनैमित्तिक भाव। कर्तृकर्मभाव की दृष्टि से जैसे घड़े का कर्ता मिट्टी है और निमित्तनैमित्तिक भाव की दृष्टि से घड़े का कर्ता कुम्हार है। यह बात कुछ संकेत रूप में कही गई थी। अब उस ही प्रसंग में विवरण सहित उसका मर्म समझिये। कर्तृकर्म भाव तो एक सत्ता वाले पदार्थ में है, एक सत्ता मात्र अर्थात् एक ही पदार्थ में उपादान में ही जो परिणमन हो रहा है उस परिणमन को तो कहते हैं कर्म, और उस उपादान में जिसमें कि परिणमन रम रहा है उसे कहते हैं कर्ता। परमार्थ दृष्टि से कहा जा रहा है यह। जो पदार्थ जिस रूप परिणमता है वह उसका कर्ता कहलाता है। परिणमयिता और परिणाम – परिणमने वाला और परिणमन, ये दो बातें कही जा रही हैं मगर शब्द रखे जा रहे कर्ता कर्म। ये शब्द न रखे जाने चाहिये थे, लेकिन लोकव्यवहार में इस शब्द का प्रयोग होता रहता है, इस कारण इन शब्दों को बताया गया है। वैसे तो जब पदार्थों का ऐसा ही स्वभाव है कि वे हैं और परिणमन रहते हैं, वे हैं और अपनी शक्ति से परिणमते हैं, अपने उत्पाद से हैं, अपने ही व्यय से हैं। किसी एक पदार्थ में किसी दूसरे पदार्थ का द्रव्य गुण पर्याय कुछ भी

नहीं पहुंचता । तो स्पष्ट बात यह है कि लोक में जितने पदार्थ हैं वे सब है और परिणामन उनमें होता रहता है । तो इस दृष्टि से उनमें कर्ताकर्म शब्द की बात न कही जानी चाहिए थी । कोई करने वाला ही नहीं, खुद खुद में परिणमता है, वहाँ करने की बात क्या हुई ? लेकिन लोकव्यवहार में कर्ता कर्म की रूढ़ि है और जिन्हें समझना है वे इस कर्ता कर्म के रंग में रंगे चले आ रहे हैं । कुम्हार ने घड़ा बनाया, जुलाहे ने कपड़ा बनाया, उसने दुःखी किया, उसने सुखी किया, इस तरह जब कर्ता कर्म के व्यवहार में चलें आ रहे हैं तो उनको ही समझाने के लिए प्रयत्न है तब परमार्थ से कहा जाता कि वस्तुतः कर्ता कर्म एक ही में है, एक का दूसरे में कर्ता कर्म सम्बंध नहीं है ।

**कर्ताकर्म के तथ्य से ज्ञानी के कषायों की क्षीणता** – कर्ता कर्म के इस मर्म को जानने से कषायों में फर्क आता है । कषायें क्षीण होती हैं । क्रोध किस पर करना ? उसने मेरा क्या किया ? उसने जो कुछ किया खुद में खुद की योग्यता से परिणमन किया है, इसके आगे उसका कुछ कार्य नहीं है । तब क्रोध किस बात पर करना ? विचार विचार से क्रोध में अन्तर आ जाता है । जब यह भाव जगता है कि देखो नाहक बिना अपराध के यह मुझ को यों कह रहा है, तब वहाँ क्रोध बढ़ता है । जहाँ यह दृष्टि बनी कि उस बेचारे का ऐसा ही परिणाम था ऐसी ही योग्यता थी, इसको ऐसा ही अपना भाव बनाने में शान्ति दिखी, इसने ऐसा भाव किया, उसके आगे कोई कार्य नहीं है । तो चाहे उस घटना में अपने को कुछ हानि भी पड़ी हो, धन की या अन्य बात की, लेकिन जहाँ यह विचार मूल में बना कि इसका तो कार्य इस तक ही था, इसमें ही समाप्त हो गया, इसके आगे इसने कुछ किया नहीं तो वहाँ क्रोध न जगेगा । तो परमार्थतः कर्ताकर्मभाव की समझ यह बड़े बड़े ज्ञानी की बात है इस समझ बिना हम आज तक जगत में रुलते आये जन्म मरण करते आए । यह मर्म न जाना कि दुःख पाया हमने आप में अपने खोटे अशुभ परिणमन से पाया और जन्म मरण से छुटकारा पाऊँगा तो अपने आप में अपने ही परिणमन से पाऊँगा । सबसे बड़ा काम पड़ा है हम आपका इस मनुष्यभव में इस उपाय बना लेने का कि जनम मरण का संकट हमारा मिट जाय क्योंकि कोई तत्त्व नहीं । मरे फिर जन्मे । जन्म के बाद कुछ परिचय हो जाता है लगने ऐसा लगता है कि यही मेरा सब कुछ है इसमें मेरा बड़प्पन है, इससे ही काम चलता है लेकिन इतना भी तो सोचिए ही जहाँ अगले भव में जन्म लेंगे उसका आज तो कुछ परिचय नहीं । तो मेरे लिए तो वे सब अपरिचित हैं और जन्म के बाद परिचय बनाया जाता है । तो परिचय बनाना और दुःखी होना और मर जाना इसके सिवाय और प्रोग्राम क्या चल रहे हैं जिन्दगी में सो ढूँढें । अब उसमें परिचय हो जाने पर बात कुछ सच्ची सी लगती है कुछ यों महसूस भी करने लगते कि बच्चों को कहाँ छोड़ा जाय इनकी तो जिम्मेदारी हम पर ही है ये सब विकल्प दौड़ने लगते हैं। मगर उस पहिले स्थिति को तो सोचो कि जब परिचय ही न था तो कितना क्लेश है ? जन्म लेना परिचय बनाना दुःखी होना और मर जाना इसके सिवाय और कोई रोजगार नहीं चल रहा ये सब व्यर्थ के रोजगार है । परिचय बनाने की बात बिलकुल मिथ्या है । कोई जीव कहीं से मरकर यहाँ पैदा हो गया । बस उसे अपना मान लिया यह गलती तो इसके खुद के अज्ञान की है । उस अज्ञान का संसरण करें ज्ञानबल को

बढ़ायें अपने आपको समझायें । यदि अपनी उस समाधि के अभ्यास से यह सब कुछ बुझता है मिटता सा है तो बुझने दो मिटने दो । मिटता कुछ नहीं है । जो पदार्थ सत् है वह रहेगा बुझता है तो बुझे । मेरे ज्ञान में ये सब बातें न आयेंगी तो मेरी रक्षा ही तो है। भली प्रकार से निर्णय करके परख लो कि इस जगत में जनम मरण करते रहने से कोई लाभ नहीं है । शान्तस्वभावी हैं हम और नाना नटखट करके हम अशान्त हुआ करते हैं इसमें कोई तत्त्व की बात नहीं है । तो जन्म मरण से छुटकारा मिले यह काम है हम आपका सबसे बड़ा । और उस छुटकारा के लिए आवश्यकता है इस तत्त्व ज्ञान की । जहाँ बताया जा रहा है कि कर्ता कर्म भाव पदार्थ का उसका उस ही में है । तो कर्ता कर्म भाव की यह परमार्थता जब हम जान लेते हैं तो पर के विकल्प नहीं रहते कषायें शान्त होती हैं निर्विकल्प अंतस्तत्त्व के अनुभव की प्रेरणा होती है अनुभव बनता है । यही उपाय है जन्म मरण के मिटने का । तो कर्ता कर्म भाव का एक ही अद्वैत पदार्थ में सम्बंध है ।

**जीव विभाव और कर्मावस्था में निमित्तनैमित्तिक भाव की स्थिति** –निमित्तनैमित्तिक भाव क्या होता है ? यह सम्बंध है पृथक सत् पदार्थ में । जुदे जुदे सत्तावान पदार्थ में निमित्तनैमित्तिक भाव घटित होता है । जैसे कुम्हार ने घड़ा बनाया यह निमित्तनैमित्तिक भाव की दृष्टि से कहा जा रहा है । तो यहाँ कुम्हार जुदी सत्ता रख रहा है और घड़ा जुदी सत्ता रख रहा है । घड़ा मिट्टी में है कुम्हार कुम्हार में है तो भिन्न-भिन्न सत्ता वाले पदार्थों में निमित्तनैमित्तिक भाव हुआ करता है जैसे जब जीव योग उपयोग को करता है तब वहाँ कर्म बन्धन हो जाता है । योग के मायने हैं परिस्पंद । मनवचन काय की हालत का निमित्त पाकर जो आत्म प्रदेशों में परिस्पंद होता है उसे योग कहते हैं । और उपयोग क्या है जिसमें ज्ञान को जमाने का यत्न होता है ना उस यत्न को उपयोग कहते हैं तो जीव ने योग और उपयोग किया । हर जगह जहाँ भी वह प्रीति करता है, द्वेष करता है कषाय करता है जो भी जीव नटखट करता है, कर सकता है वहाँ योग और उपयोग है । तो उस योग और उपयोग का निमित्त पाकर जो कर्माणवर्गणा जीव के साथ विस्रसोपचय रूप से लगी हैं वे कर्मरूप बन जाती हैं तो कर्मरूप बन्धन होना यह तो नैमित्तिक भाव है और जीव में योग उपयोग होना यह निमित्त है । जीव के ही कषाय का निमित्त पाकर कर्म बंधे नातो कषाय तो निमित्त हुए और कर्म बंधन नैमित्तिक हुए । यह भिन्न - भिन्न सत्ता वाले पदार्थों में है, जीव की सत्ता अलग है और कार्माण स्कंधों की सत्ता अलग है । उनमें निमित्तनैमित्तिक भाव बताया गया है और जब उन पुद्गल कर्मों का उदय आता है तो जीव में कषायभाव जगता है, उस समय कर्मोदय निमित्त है और कषाय जगना नैमित्तिक भाव है ।

प्र० 259-260

**निमित्तनैमित्तिक भाव के प्रसंग में भी कर्ताकर्मभाव की सत्ता झलक-** जीव और कर्म के निमित्तनैमित्तिक भाव के प्रसंगों में भी कर्ताकर्मभाव को देखें तो जीव ने योग उपयोग किया सो जीव कर्ता और योग उपयोग कर्म है । कार्माणवर्गणायें कर्मरूप पर्याय बनी तो कर्मबन्ध तो कर्म हुआ और वे कार्माणवर्गणायें कर्ता हैं । जब कर्म का उदय हुआ उस समय जीव के कषाय जगे ऐसा निमित्तनैमित्तिक भाव है इतने पर भी कर्म में जो उदय आया सो उदय है कर्म और उसका कर्ता है वह ही कर्मरूप द्रव्य । और जीव में जो क्रोधादिक कषायें जगी

सो उसका कर्ता है जीव और उसका कर्म है कषाय । तो यों कर्ताकर्म तो एक पदार्थ में देखा जाता है और निमित्तनैमित्तिक भाव भिन्न - भिन्न सत्ता वाले पदार्थों में निरखे जाते हैं । यह है निमित्त की बात । चाहे वह काल्पनिक निमित्त हो अथवा प्राकृतिक । जैसे किसी जीव को संतान आदिक के व्यवहार से क्रोध जग गया तो इस क्रोध जगने में निमित्त तो है क्रोध प्रकृति का उदय। यह तो है प्राकृतिक निमित्त। और काल्पनिक निमित्त है संतान का व्यवहार । बच्चे ने कुछ असुहाया काम कर दिया उसका आश्रय पाकर क्रोध जगे तो उसमें काल्पनिक निमित्त हुआ वह बच्चा और प्राकृतिक निमित्त है क्रोध प्रकृति का उदय। तो अब इन दोनों निमित्तों का भी तात्पर्य देखिये । काल्पनिक निमित्त का मतलब है - जिन बाह्य वस्तुओं को विषय बनाकर जीव के विभाव होते हैं उन बाह्य वस्तुओं को काल्पनिक निमित्त कहते हैं। निमित्त में विषय में आकर यह कार्य पड़े, इसे चाहो काल्पनिक निमित्त कहो या आश्रयभूत वस्तु कहो । जब यह जीव क्रोध कर रहा तो यह ज्ञान में किसको लिए हुए है किस प्रसंग में झट क्रोध जग रहा है ? इसका जो उत्तर है उसे कहते हैं आश्रयभूत वस्तु। जब कभी विकट क्रोध जगने को होता है और क्रोध जगता है किसी दूसरे के व्यवहार से पर वह है नहीं सामने अथवा वह बलवान है उसका हम कुछ बिगाड़ सकते नहीं । तो जो सामने मिला छोटा बड़ा बस उसका ही विषय बनाकर क्रोध करने लगता है। जैसे कभी कोई स्त्री अपने पति के किसी व्यवहार से क्रोध में बैठी हुई है अब वह कर तो सकती नहीं कुछ। क्रोध जगने को है उस समय सामने बच्चा है तो वह स्त्री उस बच्चे को पीट पाटकर अपने को शान्त कर लेती है । जैसे एक प्रसिद्ध कहावत है - कुम्हार से न जीते गधे के कान मरोड़े । किसी कुम्हार और कुम्हारिन में कभी लड़ाई हो गई थी कुम्हार ने उसे पीट दिया था । अब वह कुम्हारिन करे क्या मन ही मन कुढ़ रही थी कुम्हार का कुछ तो कर सकती ही नहीं थी सो पास में बँधे हुए गधे के कान ऐंठ कर अपने क्रोध को शान्त किया । तो क्रोध करते समय उस समय ज्ञान में क्या आया कल्पना में क्या आया लक्ष्य में किसे लिया ? इसका जो उत्तर है बस वही आश्रयभूत वस्तु है काल्पनिक निमित्त हैं।

**आश्रयभूत निमित्त का उपादानपरिणति के साथ अन्वयव्यतिरेक का अनियम -** काल्पनिक निमित्त में नियम नहीं रहता । यह वास्तव में निमित्त नहीं कहलाता । यही तो कारण है कि मोही जन कुटुम्ब का आश्रय करके मोह बढ़ाते हैं योगी जन जो कि उनका आश्रय नहीं करते हैं उनकी कल्पना में नहीं आता है तो वह सामने उपस्थित हो तब भी निमित्त तो नहीं है । जिस घर का परित्याग कर दिया उसी घर में साधु आहार लेने चला जाय क्योंकि उसके लिए तो सब एक है । उस समय यदि वह यह सोचता कि यह मेरा घर थायहाँ आहार को नहीं जाना हैइसमें ममता जगेगी या न जाना चाहिए साधु को ऐसा कुछ सोच कर अगर घर में नहीं जाता तो उसमें ममता का दोष है उसकी कल्पना में तो आया कि यह मेरा घर था यह न था । अब तो उसके लिए एकसमान है तो उस घर भोजन भी हो और वे स्त्री पुत्रादिक सामने हों आहार भी दे रहे उतने पर भी उस योगी की कल्पना में वे स्वजन रूप से विषय नहीं बन रहे और उनको कर्म बन्धन नहीं होता । तो यह काल्पनिक विषय है वास्तविक निमित्त नहीं कहलाता । जीव के विभावपरिणमन के वास्तविक निमित्त

को तो कहा है प्राकृतिक निमित्त कर्म की अवस्था। कर्म की प्रकृति के उदय उपशम आदिक प्राकृतिक निमित्त कहलाते हैं। कर्म का उपशम हुआ मंद कषाय हुई कर्म का उदय है कषाय जगीउदीर्ण हुईतीव्र कषाय हो गई तीव्र उदय हुआ तीव्र कषाय है। तो कर्म की अवस्था प्राकृतिक निमित्त कहलाती है जीव के विकार के लिए क्योंकि इन कर्मों की जैसी अवस्था होती है उसके ही अनुकूल जीव में नैमित्तिक भाव बने।

प्र० 261

**अनुकूल निमित्त और योग्य उपादान की नियत अवस्था** – इस प्रसंग में यह जिज्ञासा बन सकती है कि आत्मा यदि उपयोग ठीक रखे तो कर्म के उदय फिर निमित्त भी नहीं हो सकते ऐसा भी तो हो सकेगा। जब कोई सम्यग्दृष्टि जीव स्वानुभव की ओर चल रहा है तो उस समय उसका उपयोग विशुद्ध है स्व का अनुभव कर रहा है वह वहाँ उस समय अनेक कषायों के उदय चल रहे हैं पर काम तो नहीं हो रहा वे निमित्त तो न रहे तो जैसे काल्पनिक निमित्त के साथ ढिलाई है। कल्पना में आया तो निमित्त नहीं होता। तो यों ही इसके साथ भी तो ढिलाई हो सकती है। फिर वास्तविक निमित्त में भी वह बल न रहा। इस जिज्ञासा का समाधान यह है कि भाई कभी उपयोग ठीक हो तो उपयोग ठीक होने के समय उदय काल से पहिले उस प्रकृति में संक्रान्ति हो जाती है पर उदयकाल अगर पा गया कोई कर्म तो ठीक उस उदय के समय में उस कर्मप्रकृति के उदय के निमित्त के अनुकूल जीव में परिणमन होगा। वह चाहे व्यक्त रूप न दे सके वासना रूप न हो मगर उससे अनुकूल कर्मबंध भी होता है। वर्तमान में जितनी शक्ति की अवस्था रह जाय जिस कर्म मेंउसके अनुकूल वहाँ नैमित्तिक क्रिया होती है। कर्म के उदय की यह व्यवस्था है कि जीव ने आज कोई कर्म बाँधा और मान लो वह बाँध लिया अरबों वर्ष की स्थिति का तो उसमें एक यह आबाधाकाल का नियम रहता है कि मान लो वह अरबों वर्ष की स्थिति वाला कर्म जो आज बाँधा है वह डेढ़ दिन तक उदय में न आ सका तो यह डेढ़ दिन आपका आबाधाकाल कहलाता है। अब डेढ़ दिन के बाद वह कर्म उदय में आने लगा तो उसमें तो अरबों खरबों स्पर्धक स्कंध पड़े हैं अब वे सभी तो एक साथ उदय में न आयेंगे। अगर सभी एक साथ उदय में आयें तो अरबों की स्थिति न रही। जितने कर्म बाँधे थे वे कर्म भिन्न भिन्न क्रमशः समयों में उदय होने के लिये बाँधकाल में ही विभक्त हो जाते हैं। तो उनमें जब जो स्कंध उदय में आते हैं तो उदय काल में वे फल के निमित्त होते ही हैं। फल कैसा हो वह उस अवसर की बात है। देखिये उदयकाल सबका अपने अपने समय में एक एक समय का हैमगर उदयावली से उदय का सम्बंध बन जाता है, मानो असंख्यात समय की एक उदयावली है एक सेकेण्ड का बहुत छोटा असंख्यातवां हिस्सा तो सामान्यतया इसी को लोग उदय कहते है पर वस्तुतः उस उदयावली में जो असंख्यात हिस्सा तो सामान्यतया इसी को लोग उदय कहते हैं पर वस्तुतः उस उदयावली में जो असंख्यात समय है उसमें जिस समय में उदय आया वह उदय का समय है। शुद्ध परिणाम की ओर से उस उदयकाल से पहिले भी कर्म बदल सकते हैं पर उदय काल में आने पर फिर उसके अनुकूल नैमित्तिक भाव होता है। तो यह प्राकृतिक निमित्त है। और काल्पनिक निमित्त हैं धन वैभव स्त्री पुत्रादिक ये सब। तो इससे हमें यह शिक्षा लेनी है कि हम कल्पना

में इन पदार्थों को न लायें तो हमारे कर्म ढीले पड़ जायेंगे और अभ्यास हमारे कितने ही कर्मबन्धनों को बिल्कुल रोक देगा । तो इस कारण हमें अपनी कल्पना अपना उपयोग विशुद्ध बनाने का ध्यान रखना चाहिए और उसका उपयोगधर्म व भक्ति व आत्मस्वरूप का चिन्तन है। इन दोनों उपायों से अपना ज्ञानबल बढ़ायें और जन्ममरण के संकट से छूटने का समय निकट करें।

प्र० 262

नोकर्म न मिलने पर कर्म का उदय निष्फल होने से निमित्तत्व व्यवस्था के विघटन की आशंका – यहाँ एक जिज्ञासा हो रही है कि करणानुयोग में भी ऐसा बताया गया है कि कितनी ही प्रकृतियों के बाह्य साधन न मिलने पर वे निष्फल हो जाते हैं । प्रकृतियों का उदय आये पर बाह्य आश्रयभूत पदार्थ न मिले तो वे प्रकृतियाँ अपना फल नहीं दे पाती क्योंकि कर्म और नोकर्म दो प्रकार के कारण कहे गए हैं । कर्म तो है निमित्तभूत और नोकर्म है कर्म का सहायक । जैसे निद्रा कर्म का उदय आया और उस दिन खाया हो किसी ने भैंस का दही तो खूब अच्छी नींद आयगी और निद्रा प्रकृति के उदय चल रहे हैं और हो रहा है कोई इष्टवियोग तब तो निद्रा नहीं आती । तो क्या यह कहा जायगा कि इस दिन उसके निद्रा कर्म का उदय न चला । तो कितने ही बाह्यसाधनों के न मिलने पर प्रकृतियाँ निष्फल हो जाया करती हैं । यह बात इस प्रसंग में कैसे घटेगी ? जहाँ यह कहा जा रहा है कि निमित्त का नैमित्तिक कार्य के साथ अन्वयव्यतिरेक है ।

निमित्तत्व व्यवस्था विघटन की आशंका का समाधान – समाधान उक्त जिज्ञासा का यह है कि जब ऐसी स्थितियाँ होती हैं कि बाह्य साधन नहीं मिल रहे, अथवा प्रतिकूल साधन मिल रहे हैं फिर ऐसी स्थितियों के समय कर्मोदय काल से एक समय पहिले स्तिबुक संक्रमण से संक्रान्ति हो जाती है, और तब यह कहा जायगा कि सही उदय काल उसके आया ही नहीं, ऐसी बहुत सी प्रकृतियाँ होती हैं, जैसे यहाँ हम आपके सम्भव है कि चारों गतियों की सत्ता पड़ी हुई हो । पहिले समय में कषायबद्ध जो कर्म बंधे थे उनमें चारों गतियाँ भी हम आपकी पड़ी हुई है, यह सम्भव है। आयु तो केवल दो ही रह सकती है – एक जिस आयु को भोग रहे हैं वह, और दूसरी यदि नवीन आयु का बंध हो गया तो वह । यों आयु कर्म की दो की ही सत्ता रह सकती है । किसी एक की ही रहती है, जब कि नवीन आयु कर्म कोई नहीं अब तक बाँध सके, तो उसकी एक की ही सत्ता है । किन्तु गतियों की ऐसी बात है, कषायों का निमित्त पाकर गतियाँ चारों में कोई न कोई बंधती रहती है और सम्भव है कि चारों गतियाँ इस समय हमारी सत्ता में हैं, और जब सत्ता में है तो उनका उदय भी होगा । अब नरक गति का उदय भी चल रहा है तिर्यच का भी चल रहा, मनुष्य तो चल ही रहा, देवगति का भी चल रहा तो उसे स्थूल दृष्टि से तो कहेंगे कि चारों गतियों के उदय चल रहे हैं, लेकिन सूक्ष्मदृष्टि से बात यह है कि नरकगति या देवगति या तिर्यचगति, इन गतियों की प्रकृति उदय में आते आते उदय काल से पहिले सब मनुष्य गति रूप बदल करके फिर मनुष्य के रूप में उदय आती है तो इन गतियों के उदय को बाह्य साधन न मिल सका कि अपने ही सही रूप में इसका उदय काल आ जाय । जब स्तिबुक संक्रमण द्वारा अन्य प्रकृति रूप परिणाम करके उदय में आया तब निमित्त के साथ नैमित्तिक भाव का



अन्वयव्यतिरेक कैसे विघटित हुआ ? उन प्रकृतियों का स्वमुख से फल नहीं मिलता किन्तु पररूप से फल मिल जाता और फिर वस्तुतः यह कह सकते हैं कि उनका वास्तविक उदय न हो सका। उदयावली में तो आये वे पर वे उदयकाल से एक समय पहिले संक्रमण को प्राप्त हो गए। तो यहाँ तक यह बात जाननी चाहिए कि विभावपरिणमनों में निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध है और तभी ही सुनिश्चित व्यवस्था है कि अमुक अमुक प्रकार के कार्य अमुक स्थिति में होते हैं । निमित्तनैमित्तिक भाव माने बिना घटना की व्यवस्था नहीं बन सकती, लेकिन इतना होने पर भी जब परिणति पर दृष्टि डालते हैं, वस्तु के स्वरूप पर पदार्थ के स्व पर दृष्टि करते हैं तो वहाँ यह स्पष्ट विदित हो जाता है कि प्रत्येक कार्य अपने अभिन्न आधारभूत उपादान से प्रकट हुई उपादान की शक्ति से बने और उत्पादव्यय स्वभाव के कारण यह सब हुआ । वहाँ किसी भी पर का निमित्त का द्रव्यगुणपर्याय किसी का भी उपादान में प्रवेश नहीं है। तो यों निमित्तनैमित्तिक भाव बराबर जानकर भी परिणमनस्वातंत्र्य पर जिसकी दृष्टि बनी है, ये दोनों निर्णय जिसके पड़े हुए हैं वह ज्ञानी पुरुष पर लक्ष्य छोड़कर स्वलक्ष्य में आकर अपना उद्धार कर लेने में समर्थ है ।

प्र० 263

**निमित्त व नैमित्तिक भाव का कालयौगपद्य** – अब इस समय यह विषय और विचार में रखिये कि निमित्त पहिले होता है या नैमित्तिक कारण पहिले होता है ? कुछ लोग इस पद्धति से भी कह देते हैं कि जब कार्य हो गया तब किसी बाह्य पदार्थ में निमित्त का उपचार करते हैं । इस कथन में तो ऐसा जाहिर होने लगता कि कार्य पहिले होता है और निमित्त की बात निर्णय आदि बाद में होते हैं । कुछ लोग इस पद्धति से कहते हैं कि निमित्त पहिले तैयार समर्थ है सो फिर वह आगे निमित्त कार्य को कर पाता है । ऐसी स्थितियों में इसका निर्णय करना भी आवश्यक हो गया कि निमित्त पहिले होता है या नैमित्तिक ? समाधान इस जिज्ञासा का यह है कि होते तो निमित्तनैमित्तिक दोनों एक साथ याने निमित्त संज्ञा और नैमित्तिक संज्ञा ये दोनों एक साथ होती हैं । जैसे पिता और पुत्र के बारे में पूछा जाय कि बताओ पिता पहिले होता है या पुत्र ? तो बिना विशेष विचार किए बहुत से लोग तो यह कह देंगे कि पिता पहिले होता है पुत्र बाद में होता है। लेकिन कोई स्वतंत्र परिणमन की धुन में रह रहा हो तो वह यों भी कह सकेगा कि पुत्र पहले होता है तब पिता की बात पीछे कही जाती है । लेकिन ये दोनों संज्ञायें पिता पुत्र एक काल में होती हैं क्योंकि जब तक पुत्र नहीं होता तब तक पुरुष को पिता नहीं कहा जाता । तो यह बात कैसे बनी कि पुत्र से पहिले पिता था ? वह व्यक्ति था यह तो कह सकते हैं मगर पिता था यह नहीं कहा जा सकता क्योंकि पिता का नाम पड़ता ही तब है जब कि पुत्र हो । तो पुत्र होने के साथ ही पिता हुआ उससे पहिले पिता नहीं हुआ । उससे पहिले कोई किसी नाम का व्यक्ति था और ढंग की बात थी । तो पिता और पुत्र ये दो संज्ञायें एक साथ हुई ।

**कारण और कार्य का कालयौगपद्य के दृष्टान्त** – निमित्तनैमित्तिक भाव की युगपत्ता के सम्बन्ध में और दृष्टान्त लो । सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान में बताओ पहिले कौन होता है और बाद में कौन होता है ? यहाँ निमित्त तो है सम्यग्दर्शन और नैमित्तिक है सम्यग्ज्ञान । यों उदाहरण में ले लीजिए । उनके बारे में कोई पूछे कि बताओ

सम्यग्दर्शन पहिले होता कि सम्यग्ज्ञान ? तो इसका सही उत्तर यह होगा कि दोनों एक साथ होते हैं । देखिये – सम्यग्दर्शन होने के लिए यद्यपि बहुत सच्चा ज्ञान हो तभी सम्यग्दर्शन होता है लेकिन यहाँ ज्ञान तो तभी सम्यग्दर्शन होता है लेकिन यहाँ बात चल रही हैं ऐसे सम्यक्त्व की कि जिससे ज्ञान में सम्यक्पना आया । अनुभवपूर्वक जो ज्ञान होता है वह सम्यग्ज्ञान होता है और अनुभव बिना वैसा ही ज्ञान हो चाहे जैसा कि अनुभव के बाद हुआ लेकिन अनुभवरहित होने के कारण उसमें सम्यक् संज्ञा नहीं होती । जैसे जैनबद्धी में गोम्मटेश्वर की प्रतिमा है उसे देखने कोई गया न हो और यहीं से पुस्तकों द्वारा अथवा दूसरों से सुनकर अच्छी तरह से जानकारी कर लिया हो कि बाहुबली स्वामी की मूर्ति इतने फीट ऊँची हैपैर इतने मोटे हैं, अंगुलियाँ इतनी लम्बी हैंहाथ इतने लम्बे व इतने मोटे हैं आदि । यों बाहुबली की मूर्ति का ऐसा परिचय कर लिया जैसी कि वह प्रतिमा । ऐसा ज्ञान कर लेने वाला पुरुष कभी मौका पाये और वहाँ पहुंचकर साक्षात् उस मूर्ति के दर्शन करे तो उस दर्शन के समय भी वैसा ही ज्ञान हुआ जैसा ज्ञान पहिले कर चुका थालेकिन यह बतलाओ कि दर्शन के समय में ज्ञान में जो स्पष्टता हैविशदता हैवैसी स्पष्टतावैसी विशदता क्या पहिले थी? बल्कि पहिले जाना उसने और भी ज्यादा था । उस मूर्ति के देखते समय में अनेक लोग ज्ञान नहीं रख पाते हैं कि यह मूर्ति कितने फीट ऊँची हैइसके हाथों और पैरों की अंगुलियाँ कितनी बड़ी हैं इसके हाथ पैर आदि कितने बड़े हैंतो वह व्यक्ति दर्शन करने से पहिले उस प्रतिमा के अंगों की नाप भी जानता था इतने पर भी दर्शन से पहिले उसका ज्ञान सम्यक् न थाऐसे ही ज्ञान ज्ञानथालेकिन अब दर्शनपूर्वक अनुभव पूर्वक जो ज्ञान हुआउस ज्ञान में दृढ़ता हैस्पष्टता है और कुछ इस तरह का भी निर्णय है कि देखिये—जिस मूर्ति के बारे में हमने ऐसा ही जाना था समझा था चित्र में देखा थायह वही है ऐसा दृढ़तापूर्वक ज्ञान है । तो जो अन्तर उस मूर्ति के दर्शन से पहिले हुए मूर्ति के ज्ञान में और दर्शनपूर्वक हुए मूर्ति के ज्ञान में है ऐसा ही अन्तर सम्यग्दर्शन से पहिले होने वाले तत्त्व निर्णय में और सम्यग्दर्शन पूर्वक होने वाले तत्त्व निर्णय में है । स्थूल रूप से बात वही है। और तब यह कहा जा सकता कि वाह पहिले सच्चा ज्ञान होगा तब सम्यग्दर्शन हो सकता है। ज्ञान बिना सम्यक्त्व कैसे होगा ? उसी के लिए वस्तु के स्वरूप का निर्णय अभ्यास चर्चा अध्ययन आदिक चलाये जाते हैं । तो जब ज्ञान होगा तभी तो सम्यक्त्व होगा। आत्मा के बारे में ज्ञान किया—यह देह से निराला हैअमूर्त है ज्ञानमात्र हैऔर जब ऐसा अनुभव करने के लिए यत्न करेंगे सो सम्यक्त्व होगा । तो देखो – सच्चे ज्ञानपूर्वक ही सम्यग्दर्शन हुआ यों कहने में आता है । और बात भी बहुत दृष्टि में सत्य है। कहीं वस्तुस्वरूप के विपरीत ज्ञान करने के बाद सम्यक्त्व नहीं होता । जैसा वस्तु का स्वरूप है उसके अनुकूल ज्ञान चल रहा हो तो सम्यक्त्व होगा । बात यह ठीक है, इतने पर भी सम्यग्दर्शन होता है स्वानुभवपूर्वक । तो स्वानुभवपूर्वक हुए सम्यग्दर्शन सहित जिसका ज्ञान हो वह ज्ञान एक विशेष स्पष्टता को लिए हुए है । जिसमें यह दृढ़तापूर्वक कहा जाता कि तत्त्व यही है ऐसा ही है अन्य प्रकार है ही नहीं हमने साक्षात् देखा । तो जैसे सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान के बारे में यह प्रश्न हो कि पहिले कौन होता है ? तो वहाँ उत्तर है कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एक साथ होते हैं । ज्ञान पहिले भी था परन्तु सम्यक् संज्ञा सहित ज्ञान सम्यग्दर्शन के

साथ ही हुआ। यों ही समझिये कि जीव के क्रोध कषाय जगी उसमें निमित्त है क्रोध प्रकृति का उदय। तो बतलाओ क्रोध प्रकृति का उदय पहिले होता है या क्रोधकषाय पहिले होती है? उत्तर यह है कि दोनों एक साथ होते हैं। क्रोधप्रकृति का उदय क्रोधकषाय के होने में निमित्त है। जिस समय क्रोध प्रकृति का उदय है उसी समय क्रोधकषाय है और बंध की भी यही बात है। बंध होता है कषाय का निमित्त पाकर। तो बताओ कषाय पहिले होती है कि कर्मबन्ध पहिले होता है? उसका भी उत्तर यही कि दोनों एक साथ होते हैं। जिस समय में कषाय है उस ही समय में कर्मबन्ध है। तो निमित्त और नैमित्तिक ये दोनों एक साथ होते हैं।

**निमित्त नैमित्तिक भाव के योगपद्य के विरोधी वादों का समन्वय** – अब कुछ उन लोगों के आशय का भी समन्वय कीजिए जिनका कहना कुछ और प्रकार से है। किसी ने यह कहा है कि जब नैमित्तिक कार्य हो जाता है तब निमित्त पर विचार किया जाता है। बात सही है यह भी। जब नैमित्तिक कार्य समझ में आया तब निमित्त का उपचार किया गया न कि निमित्त का सत्त्व बना। निमित्त तो नैमित्तिक कार्य के समय ही था। पर हमने कब समझा कि यहाँ निमित्त हैयहाँ यह निमित्त था। हम यह कब समझ पाते हैं और यहाँ हम दूसरे को कैसे समझा पाते हैं? जब नैमित्तिक कार्य का ज्ञान हुआ पहिलेतब हम निमित्त की बात को समझा पाते हैं। तो समझाने में उपचार करने में यह बात सही है पर नैमित्तिक पहिले हो पीछे निमित्त का सत्त्व हो यह बात सही न रही। नैमित्तिक अगर पहिले हो गया तो निमित्त के सत्त्व की जरूरत भी नहीं रहती और पहिली बात तो यह है कि उसका नैमित्तिक नाम ही न रहेगा। तो निमित्त का उपचार भले ही बाद में हो और बाद में क्या कोई दो चार दिन बाद भी कर दे। दो चार दिन पहले हुए कार्य का निमित्त क्या है? इसका वर्णन कोई कई दिन बाद करे तो इसका यह अर्थ न होगा कि नैमित्तिक कार्य होगा दो चार दिन पहिले और निमित्त होगा दो चार दिन बाद। निमित्त और नैमित्तिक दोनों कार्य एक साथ होंगे। उपचार करने की बात एक समझने और समझाने के क्षेत्र की बात है। अब उस दूसरी बात का भी समन्वय करो। जो लोग कहते हैं कि निमित्त पहिले होता है तब यह तैयार बनकर किसी नैमित्तिक कार्य को करता है। उनकी बात इतनी दृष्टि में सच है कि जो नैमित्तिक कार्य के समय निमित्त हैं, जिनका निमित्त पाकर नैमित्तिक कार्य बना है वह पदार्थ अपने सत्त्व में पहिले से ही था, निमित्त था, यह नहीं कहा जा रहा है पर उसकी सत्ता थी। जैसे पुत्र होने से पहिले पुरुष की सत्ता थी, वह पुरुष था जिसको कि पिता कहा गया। तो यों सत्त्व पहिले था, पर पहिले सत्त्व होने पर भी निमित्त न था। तो यों निमित्तनैमित्तिक ये दोनों एक साथ होते हैं।

#### प्रश्न—264

**निमित्तनैमित्तिक का काल योगपद्य होने पर भी निमित्तनैमित्तिक की भेद व्यवस्था** – अब निमित्तनैमित्तिक की युगपत्ता सुनकर यह जिज्ञासा होना प्राकृतिक है कि जब निमित्त और नैमित्तिक एक साथ होते हैं तो यह व्यवस्था कैसे बनायी जाय कि यह तो निमित्त है और यह नैमित्तिक। जैसे बछड़े के दो सींग होते हैं वे दोनों सींग एक साथ पैदा होते हैं उनमें क्या कोई यह कह सकता है कि यह सींग कारण है और यह कार्य

? दायें सींग ने बायें सींग को पैदा किया और बायें सींग ने दायें सींग को पैदा किया क्या यह कहा जा सकता है ? नहीं कहा जा सकता । उसमें कार्य कारण भाव नहीं है क्योंकि वे दोनों एक साथ हैं, यों ही यहाँ भी बताया कि जब निमित्त और नैमित्तिक दोनों एक साथ हो गए तो उनमें एक व्यवस्था कैसे बनायी जाय कि यह पदार्थ तो निमित्त है और यह पदार्थ नैमित्तिक है। इसका समाधान यदि कोई कुछ विवेक से काम ले तो बहुत ही सरल है। जिसमें कार्य हो ऐसा पदार्थ और जिसमें कार्य ना हो किन्तु जिसके साथ अन्वयव्यतिरेक रहा ऐसा पदार्थ, ये दो भिन्न-भिन्न पदार्थ हैं ना। तो एक साथ तो कहा नहीं जा सकता इन दोनों में। जो निमित्तभूत पदार्थ है उसका तो निमित्त में रहने वाली आधेयता से निरूपण होता है और जिसमें कार्य हुआ वह पदार्थ नैमित्तिक में रहने वाली आधेयता से निरूपित पदार्थ है। दोनों पृथक पृथक पदार्थ हैं और हैं एक साथ । तो एक साथ होने पर भी एक निमित्तनिष्ठ आधेयता से निरूपित है, एक नैमित्तिकनिष्ठ आधेयता से निरूपित है । तो यह निमित्त है, यह नैमित्तिक है, यह विवेक हो जाना बिल्कुल सरल है। जैसे दीपक और प्रकाश ये दोनों एक साथ होते हैं ना ? जिस समय दीपक जलाया गया, क्या प्रकाश जलाने के कुछ देर बाद में होगा या प्रकाश पहिले होता है और दीपक पीछे बनता है? दीपक और प्रकाश ये दोनों बातें एक साथ होती हैं, फिर भी कोई भूल करता है क्या कि प्रकाश तो निमित्त है और दीपक नैमित्तिक है? कोई यों कहता है क्या ? सभी लोग यही कहते हैं कि दीपक कारण है और प्रकाश कार्य है । प्रकाश दीपक से पैदा हुआ, प्रकाश से दीपक नहीं पैदा हुआ। बस इस निमित्त और नैमित्तिक के सम्बन्ध में भी बात स्पष्ट है । कर्मोदय, कषाय यद्यपि एक साथ होते हैं लेकिन यह स्पष्ट विदित है कि कर्म निमित्त कारण है और कषाय नैमित्तिक कारण है और जब कर्मबंध और कषाय इन दोनों के सम्बन्ध में बात कहते हैं तो वहाँ भी यह स्पष्ट विदित है कि कषाय निमित्त है और कर्मबन्ध नैमित्तिक है । इस सब प्रकरण को जानकर हमें यह समझना है कि कषाय नैमित्तिक हैं, मेरे स्वभाव नहीं हैं । उनसे हटकर अनादि अनन्त चैतन्यस्वभाव पर दृष्टि जानी चाहिए, जिससे कि जन्म मरण मिटने का उपाय मिले ।

प्रश्न—265

**निमित्तनैमित्तिक भाव के पहिचान की एक साधारण विधि** – इस प्रसंग में निमित्त नैमित्तिक भाव की चर्चा चल रही है । निमित्त और नैमित्तिक इन दोनों की पहिचान का मोटा उपाय क्या है ? दो पदार्थों में हम कैसे झट जान जायें कि यह तो नैमित्तिक भाव है और यह निमित्त बना । उसकी मोटी पहिचान यह है कि जो निमित्त बना है ऐसा निमित्तभूत द्रव्य तो नैमित्तिक भाव बिना भी रह सकता है, पर नैमित्तिक भाव निमित्त की उपस्थिति के बिना नहीं रह सकता । इस प्रकरण में दो प्रकार के क्षेत्रों में यह निर्णय करते हैं- एक तो ऐसा कि साक्षात् निमित्त हुए बिना पूर्व समयों में वह निमित्तभूत पदार्थ रहा और निमित्त न रहा । एक यह कि नैमित्तिक भाव हो सके ऐसी स्थिति भी हो, फिर भी वह निमित्त न बने, एक यह क्षेत्र । जैसे – कर्मोदय निमित्त है जीव के कषाय में ।

कर्म निमित्त है, पर उदय से पहिले कर्म सत्ता में मौजूद है, वह भी पृथ्वी के टुकड़े के समान पड़ा हुआ है। उसका कोई प्रभाव नहीं है कर्म जब उदय काल में आता है तब ही वह कषाय में निमित्त होता है और वह कषाय का उत्पाद करता है। इससे पहिले कर्म सत्त्व में बना रहे, उससे इस जीव की कोई बरबादी नहीं है। कर्म अगर सत्त्व में सदा बना रहे, उनका उदय न आये तब तो यह बहुत ही बढ़िया बात हो जाय, मगर यह हो कैसे ? जो कर्म सत्त्व में हैं वे खिरेंगे, उनका विपाक होगा, उदय काल आयगा, किसी भी प्रकार खिरेंगे, यह तो अवश्यम्भावी बात है पर सत्त्व जिस समय रह रहा है उस समय उस सत्त्व के कारण उस जीव को नुकसान नहीं पहुंचा। जीव की बरबादी है तो कर्म के विपाक काल में है। विपाक की परम्परा प्रति समय चल रही है, तो जो निमित्तभूत बनता है ऐसे कर्म का उदय काल से पहिले भी सत्त्व है, पर नैमित्तिक भाव नहीं है, एक बात, दूसरी बात यह है कि किन्हीं परिस्थितियों में कर्म का उदय हो और नैमित्तिक भाव न बने, यह भी बात बन जाती है। यह बात कुछ स्थूल दृष्टि से सोचनी होगी। जैसे कितनी ही प्रकृतियों का उदय, उदयाभावी क्षय रहता है उसका नैमित्तिक भाव नहीं बन पाता।

इस समय हम आपके सम्भव है चारों गतियों का भी उदय चल रहा हो लेकिन फल मिल रहा है केवल मनुष्य गति के उदय का। वे तीन गतियों के उदय निष्फल हो जाते हैं, क्योंकि उनका विपाक भोगने के लायक नोकर्म नहीं है। भव तो मनुष्य का मिला है, तब वहाँ नरक गति के उदय का फल नहीं मिल सकता, तिर्यच और देवगति के उदय का फल नहीं मिल सकता। यह स्थूल दृष्टि की बात है। सूक्ष्म दृष्टि से तो उदय काल एक समय का है। उस सम्बन्ध में ये तीन गतियाँ नहीं आ पातीं। उससे एक समय पहिले उनका संक्रमण हो जाता है। लेकिन निमित्त तो कहलाया। निमित्त की बात तो सदा चित्त में रहती है ना। जैसे यह सब तो निर्णय पड़ा ही हुआ है कि रोटी बनने के निमित्त साधन आग, चकला, बेलन, आटा आदि होते हैं। यदि ऐसा ख्याल न हो तो इस साधन को जुटाये ही क्यों ? निमित्त के सम्बन्ध में यह सुविदित रहता है कि अमुक कार्य के होने में ये पदार्थ निमित्त होते हैं और निमित्त तो असल में तब हुए जब कि नैमित्तिक कार्य हो रहा हो, उस काल में, लेकिन निमित्त कौन होता, कैसे होता, यह सब व्यवस्था पड़ी हुई है। तो नैमित्तिक कार्य के बिना भी निमित्त का सत्त्व रहता है पर नैमित्तिक कार्य निमित्त की उपस्थिति बिना हो ही नहीं सकता। जब जो कुछ भी बात बीत रही है, कषाय परिणमन आदिक उस समय निमित्त की उपस्थिति है ही। उसके सन्निधान बिना वैभाविक कार्य नहीं हो सकता। तो निमित्त नैमित्तिक के पहिचान की एक यह मोटी विधि है।

## प्रश्न—266

निमित्त के सन्निधान बिना परिणमन न हो सकने के सम्बन्ध में शंका समाधान – इस प्रसंग में एक जिज्ञासा

उठ सकती है कि कहीं कहीं तो निमित्त के बिना भी विभाव परिणमन हो जाता है । जिस जीव के कषाय नहीं है 11 वें, 12 वें, 13 वें गुणस्थान में, लेकिन प्रकृति बंध और प्रदेश बंध तो चलते ही रहते हैं । साता वेदनीय सम्बन्धी प्रकृति बंध और प्रदेश बंध होता बताया गया है करणानुयोग में । फिर यह कहना कि निमित्त के अभाव में नैमित्तिक भाव नहीं होता । देखो यहाँ कषाय के अभाव में भी साता वेदनीय का बंध हो गया यह जिज्ञासा उठ सकती है, लेकिन यह जिज्ञासा इस प्रसंग में सही ज्ञान किया जाय तो शान्त हो जाती है । साता वेदनीय का जो बंध बताया गया है 11 वें, 12 वें, 13 वें गुणस्थान में तो वह बंध नहीं, वस्तुतः आस्रव है, और वह आस्रव ईर्यापथ आस्रव कहलाता है । उस ही को प्रकृति और प्रदेश बंध की अपेक्षा बंध कह दिया है। बंध चार प्रकार के होते हैं – प्रकृतिबंध, प्रदेशबंध, स्थितिबंध और अनुभागबंध । जैसे जब हम भोजन करते हैं तो जो भोज्य पदार्थ खाया गया उसमें हमने इतना ही तो प्रयत्न किया कि उसे मुख में डाल लिया और दाँतों से चबाकर निगल गए, वह पदार्थ पेट में चला गया । अब पेट में भोजन पहुंच जाने के बाद हमारी क्या करतूत चलती है ? अरे वह भोजन पेट के अन्दर पहुंच गया तो अपने आप ही वहाँ चार तरह के काम होते रहते हैं उस एक किलो भोजन में जो खाया गया उसमें इतने परिमाण का भोजन तो खून बनेगा, हड्डी, माँस, मल, पसेव आदिक बनेगा, ये सब बातें बन रही हैं । ये बन रही हैं अपने आप में प्राकृतिक, निमित्तनैमित्तिक भाव में और इतने स्कंध परमाणु ये रस रूप बनकर इतनी देर तक इस शरीर में टिकेंगे, ये दो ही घंटे रहेंगे, पसेव बनकर निकल जायेंगे, ये 24 घंटे रहेंगे, मल बनकर निकल जायेंगे, ये 25 दिन रहेंगे, ये खून बनकर रहेंगे । इस तरह से उन भोजन के घंटों में स्थिति भी पड़ जाती है और जो रस रूप बनेंगे वे स्कंध इतने होंगे, जो मलरूप बनेंगे वे इतने होंगे । यों प्रदेश का परमाणुओं का भी वहाँ भाग हो जाता है । यह तीसरी बात हुई । चौथी बात यह बन जाती है कि रस रूप बनने वाला यह स्कंध इतनी शक्ति रखता है, वीर्य रूप बनने वाला यह स्कंध इतनी शक्ति रखता है, बहुत स्कंध हैं, शक्ति कुछ भी हो, मल कितना भी अधिक हो पर उसमें क्या शक्ति ? और खून मल से कम है मगर उसमें शक्ति अधिक है, और वीर्य की मात्रा बहुत कम है फिर भी शक्ति सबसे अधिक है । तो जैसे यह चार तरह का बँटवारा हो जाता है इसी तरह बाँधे हुए कर्मों में भी चार तरह का बँटवारा हो जाता है इतने कर्म परमाणु ज्ञान को ढकने वाले होंगे, ये सुख और दुःख के कारण बनेंगे, ये कषाय करने के निमित्त बनेंगे, ये अन्तराय डालेंगे, ऐसी उनमें प्रकृति पड़ जाती है पहिली बात । दूसरी बात, इस प्रकृति वाले परमाणु इतने होंगे जो ज्ञानावरण होंगे, ज्ञान को ढाकेंगे, उन कर्मों की गिनती इतनी होगी, सुख दुःख देने वाले कर्मों की गिनती इतनी है, यों प्रदेश बँटवारा भी हो जाता है। तीसरी बात यह है कि उन में स्थिति पड़ जाती है ये कर्म, ये प्रकृति, ये कर्म स्कंध इतने दिनों तक जीव में रहेंगे ऐसी स्थिति पड़ जाती है। और चौथी बात- यह है कि उन प्रकृति में उन कर्मों में शक्ति पड़ जाती है कि इतनी डिग्री का इतनी तीव्रता में अथवा इतनी मंदता में यह अपना फल देगा । यों चार प्रकार के बन्धन होते हैं । उनमें से प्रकृति बन्ध और प्रदेश बन्ध तो योग से होते हैं। आत्मा के प्रदेश जो कि हिलते है उस समय कर्मों में प्रकृति और प्रदेश उस योग के निमित्त से होते हैं, और स्थिति और

अनुभाग शक्ति का बनना यह कषाय से होता है। तो चूंकि 11 वें, 12 वें, 13 वें गुणस्थान में कषाय नहीं है तो वहाँ स्थिति बंध और अनुभाग बंध नहीं होता। प्रकृति बंध और प्रदेश होते हैं। उन्हें बंध शब्द से यों कहा कि जहाँ स्थिति बंध और अनुभाग बन्ध होता है वहाँ प्रकृति बंध और प्रदेश बन्ध होता ही है। ऐसा साहचर्य होने की वजह से जहाँ स्थिति बंध और अनुभाग बंध नहीं है वहाँ भी यही नाम ले लेते हैं कि प्रकृति बंध और प्रदेश बंध हुआ। असल में उसका नाम है आस्रव और ईर्यापथ आस्रव। इन निष्कषाय तीन गुणस्थानों में मात्र आस्रव है, बंध नहीं है, मगर बंध के परिच्छेदों में करणानुयोग शास्त्रों में बंध शब्द से कह दिया गया है। उसका भाव यह समझना चाहिए कि केवल एक समय को आया और गया। इस तरह से ही वहाँ प्रकृति बंध और प्रदेश बंध होता है। तात्पर्य यह है कि नैमित्तिक भाव निमित्त की अनुपस्थिति में होता नहीं है। अगर हो जाय तो वह स्वभाव बन जायगा, विभाव न कहलायगा। इस प्रकार जीव और कर्म के उदाहरण को लेकर निमित्तनैमित्तिक भाव की व्यवस्था बतायी गई है।

### प्रश्न—267

नैमित्तिक भाव के लिये नियत जाति के निमित्त होने के नियम का कारण – इस प्रसंग में अब यहाँ एक जिज्ञासा बन जाती है कि जीव का जो विभावपरिणमन होता है, कषाय भाव होता है उनमें निमित्त कर्म का उदय होता है और अन्य परमाणु नहीं होते। इसका कारण क्या है? दुनिया में पुद्गलों का इतना ढेर पड़ा हुआ है, शरीर भी हैं, ये तो निमित्त होते नहीं कषाय में और कर्मों के उदय कषायभाव में निमित्त होते हैं इसका कारण क्या है इसका कारण स्पष्ट है कि कर्म भी एक ऐसा विशिष्ट अनुभाग शक्ति रखते हैं कि वे ही जीव के विभाव में निमित्त बन पाते हैं, शरीर के परमाणु नहीं। और भी अनेक पुद्गल का ढेर है, वह भी नहीं बन पाता। केवल जीव के साथ बंधे हुए वे कर्म ही कषाय के निमित्त बन पाते हैं। प्रतिनियत ही कोई निमित्त होता है, इसके उदाहरण तो लाखों करोड़ों मिलेंगे। जल के गर्म होने में आताप ही निमित्त होता है। क्यों जी ठंड क्यों न निमित्त रह जाये? भाई ऐसी ही शक्ति वाला, ऐसे ही रूप, रस, गंध, स्पर्श वाला, ऐसी ही योग्यता वाला निमित्तनैमित्तिक बन पाता है अन्य नहीं। यह बात तो यहाँ अनेक उदाहरणों में मिल जाती है। तो यों ही समझिये कि विशिष्ट अनुभाग शक्ति वाले कर्म जीव के विभाव में कषाय में निमित्त होते हैं, अन्य परमाणु निमित्त नहीं होते। इस प्रकरण में बहुत पहिले एक अभिमत कुछ लोगों ने बताया था कि कुछ लोग ऐसा मानते लगते हैं कि जब जीव में कषाय भाव जगता है उस समय किसी में निमित्त का व्यपदेश किया जाता है तो जब व्यपदेश नैमित्तिक भाव होने के पश्चात् किया जाता है तो उसको पहिले से कैसे निमित्त समझाया जाय कि यह कर्म इसका निमित्त है। उत्तर भी उसी प्रकरण में संक्षेप में दे दिया था कि व्यपदेश उपचार कथन नैमित्तिकभाव समझने के बाद हुआ, किन्तु निमित्तपना नैमित्तिकभाव होने के बाद आया सो बात नहीं। निमित्तपना नैमित्तिक भाव के साथ हुआ।

### प्रश्न-268

निमित्तभूत पदार्थ का अपनी स्वतन्त्रता से सद्भाव-देखिये-सिद्धान्त-शास्त्रों में भी स्पष्ट कथन है कि आज

कषाय की, जिस समय की उसी समय कर्म का बन्ध हुआ और उसी समय प्रकृति, स्थिति, प्रदेश और अनुभाग, इन चारों का विभाग भी तुरन्त हो गया, तो प्रकृति बन्ध के मायने यही तो हैं कि ये कर्म इस-इस प्रकार के कार्य के होने में निमित्त होंगे। ज्ञानावरण कर्म जीव के ज्ञान को ढांकने का कारण बनेगा।

तो देखिये-निमित्त का निर्णय पहिले हो गया ना। अब चाहे आगे ऐसी भी परिस्थिति आ सके कि तपश्चरण, ज्ञान वैराग्य के बल से उन कर्मों को उदयकाल से पहिले ही खिरा दे तो वह उस समय के निमित्तनैमित्तिक भाव वाली बात होगी। तो जब यह क्रोध प्रकृति उदय काल में आती है तो जीव में क्रोध कषाय जगती है। तो क्रोध कषाय होने के समय में ही क्रोध प्रकृति निमित्त बनी हुई है। अब हमने समझा कि अरे क्रोध प्रकृति का उदय आया तब क्रोध जगा। नैमित्तिक भाव जगने पर निमित्त का अनुमान किया गया। जैसे किसी पहाड़ से धुवाँ निकल रहा है उस धुवाँ को देखकर हम अग्नि का ज्ञान कर रहे। अग्नि निमित्त है, धुवाँ नैमित्तिक है। अग्नि से धुवाँ उत्पन्न हुआ यों समझ लीजिए। अथवा उस अग्नि के कुछ हिस्से उपादान ही तो हैं जो धुवाँ रूप परिणम रहे हैं। अग्नि कारण है और धुवाँ कार्य है। वहाँ कार्य जानने के बाद हमें कारण का ज्ञान हुआ। धुवाँ के परिचय के बाद वहाँ अग्नि है इतना ज्ञान हुआ, पर इसके मायने यह तो न हो जायगा कि धुवाँ होने के बाद अग्नि का सत्त्व हुआ। वह तो समान काल में है, पहिले से भी है। तो व्यपदेश हुआ, उसकी समझ बनना और बात है, निमित्त होना अन्य बात है। ऐसी ही बात इन कर्मोदय और कषायों की भी समझना चाहिए कि कषाय जगने पर हमने यह ज्ञान किया कि इसके ऐसी क्रोध कषाय का उदय है, इस कर्म का उदय है। तो यह केवल एक समझ ही तो बनी। व्यपदेश हुआ, विचार हुआ। लेकिन इसके मायने यह नहीं है कि कषाय जगने के बाद वह क्रोध प्रकृति उदय में आये ही। वह तो उसके समान काल में ही है। तो इन चर्चाओं में निमित्तनैमित्तिक भाव के विषय में यह निर्णय करके रख लेना कि निमित्त नैमित्तिक भाव यह ऐसा सुनिश्चित है कि यह जीव कर्मोदयरूप निमित्त के सन्निधान में ही कषाय आदिक भाव कर रहा है, उनकी अनुपस्थिति में जीव के कषायादिक नहीं होते। इसका कारण यह है कि कर्म में ऐसे ही निमित्त की शक्ति है, इस तरह कह लीजिए अथवा यों कह लीजिए कि इस जीव में, उपादान में इस तरह की ही शक्ति है कि यह अमुक अमुक प्रकार के निमित्त को पाकर स्वयं कषायरूप परिणमता है।

### प्रश्न—269

अनुकूल निमित्त के सन्निधान में उपादान में अपना प्रभाव बनाने की क्षमता-भैया ! शब्दों से कुछ कह लीजिए, ज्ञानी पुरुष अर्थ एक समझेगा। जो बात यथार्थ है वही उसके परिचय में होगी। शब्दों से चाहे किस पद्धति से कह लो। वह तो कहने का ढंग है जल्दी समझाने का, देर से बता सकने का, ये जुदी-जुदी विधियाँ हैं, पर बात सब में वह एक ही है जिस बात को ठीक तरह से किसी ने समझा हो जैसे कोई पुरुष यह कहता है कि मेरे सिर में दर्द है तो ऐसा कहकर भी ज्ञानी पुरुष बात सही समझ रहा है। और कोई यों कहे कि सिर की नसों में कुछ खून रुक गया है, जिसके निमित्त से सिर में इस तरह की अवस्था बनी है और उसका निमित्त पाकर जीव में वेदना हो रही है। बात दोनों में कही गई एक ही, और ज्ञानी ने



वही बात समझा, मगर एक कथन जरा देर से कहने और समझने का है और एक कथन सीधा जल्दी बता देने का है। अब सीधा जल्दी बता देने का कथन है उसका अर्थ कोई दूसरा भी लगा सकता है, क्योंकि वह संक्षिप्त भाषा है और जो देर से कथन करने की पद्धति है वह जरा स्पष्ट परिभाषा है। उसमें अर्थ दूसरा नहीं कर पाता। अन्तर यही तो है, पर ज्ञानी पुरुष उन दोनों में बात उस एक को ही समझता है जो यथार्थ बात है। यथार्थता यही है। जैसे अध्यात्म सूत्र में एक सूत्र में कहा है “निमित्त प्राप्योपादानं स्वप्रभाववत्” निमित्त को पाकर उपादान अपने प्रभाव वाला बनता है।

### प्रश्न-270

**निमित्तनैमित्तिक भाव के प्रसंग में भी दोनों का स्वातन्त्र्य - निमित्त उपादान तथा निमित्तनैमित्तिक भाव के सम्बन्ध में वर्णन चल रहा है कि निमित्त कैसा होता है, इस सम्बन्ध में व्यावहारिक बातें अधिक हुआ करती हैं, पर व्यावहारिक बातों में ही अधिक लगे हुए मनुष्यों को वस्तुस्वरूप भी यों जंचने लगता है कि एक पदार्थ दूसरे का कर्ता ही तो है और युक्तियाँ यों मिलने लगती हैं कि देखो यह निमित्त न होता तो यह कैसे हो जाता, इसी बल पर इस सम्बन्ध में अनेक बातें कही जाती हैं कि निमित्त सहाय होता है, निमित्त प्रेरणा करता है, निमित्त मित्रता का काम करता है। यों अनेक बातें होती हैं। उससे तो यह सिद्ध होता है कि निमित्त की बरजोरी बहुत कुछ सिद्ध है। मानो यज्ञदत्त ने हाथ पकड़कर कहीं किसी कार्य में जुटा दिया, या कुम्हार ने मिट्टी को दबा दबाकर घड़ा बना दिया, यों तो लगता है कि देखो निमित्त की बड़ी बरजोरी है। जब कोई दो पहलवान कुश्ती करते हैं तो एक पहलवान दूसरे पहलवान को कितना दबाता है, जोर लगाता है, तो इन बातों से यह बात विदित होती है कि निमित्त की बड़ी बरजोरी है किसी कार्य को करने में, ऐसे अनेक तरह के विचार उत्पन्न होते हैं, उन सबके समाधान में इतनी बात समझना है कि जिस पदार्थ का जितना जो कुछ सत्त्व है उस पदार्थ के उतने ही प्रदेश में उसका ही कार्य बनता है, उससे बाहर कुछ आदान प्रदान नहीं होता। यह बात तो वस्तुस्वरूप की है। इतना दृष्टि में आने पर फिर सब निर्णय हो जाता है कि निमित्त किसी अन्य पदार्थ में कुछ करता है अथवा नहीं।**

**निमित्तकर्तृत्वप्रतिपादक वचनों का प्रयोजन निमित्त की विशिष्ट परिस्थिति का परिचय - जो कुछ निमित्त के बारे में अनेक बातें कही जाती हैं वह निमित्त की विशिष्ट परिस्थिति का प्रतिपादन है। जैसे कहा गया कि कुम्हार ने मिट्टी के लौधे को पकड़कर घड़ा बनाया तो यह कुम्हार की उस विशिष्ट परिस्थिति का परिज्ञान है। ऐसी-ऐसी क्रियाओं में परिणत कुम्हार, ऐसी-ऐसी जाति का व्यापार करने वाला कुम्हार घड़े के निष्पादन में निमित्त है, तो निमित्त की कैसी परिस्थितियाँ हैं उनका परिज्ञान है इन वाक्यों में, न कि निमित्त ने अपनी कुछ परिणति प्रेरणा असर गुण कुछ भी उपादान में डाला। अतः यह सिद्ध न करना कि कुम्हार अपना गुणपर्याय मेहनत विचार कुछ भी घड़े में डाल देता है। वह तो एक निमित्त की विशिष्ट परिस्थिति का ज्ञान है,**

कुम्भकार की ओर से देख रहे हैं तो यों लग रहा है कि घड़ा बनने में कुम्हार का व्यापार निमित्त है, और जरा मिट्टी की ओर से भी देखिये कि कुम्हार के ऐसे व्यापार होने का निमित्त वह घड़ा है, वह मिट्टी है। यदि कुम्हार मिट्टी चाक आदिक का आश्रय किए बिना किसी भी जगह किसी तरह का हाथ करे तो लोग यह कह देंगे कि इसका दिमाग कुछ चल गया है। कुम्हार का हाथ व्यापार उस ढंग से जो चल रहा है तो वह है नैमित्तिक और वह मिट्टी का आश्रय जो किया वह है निमित्त। तो निमित्तनैमित्तिक भाव तो प्रति क्रिया में परस्पर लगाया जा सकता है। तो निमित्त के सम्बन्ध में जो कुछ विशेष बातें कही जाती हैं, प्रेरणा की, मित्रता की, असर की, वे सब निमित्त की विशिष्ट परिस्थिति का ज्ञान कराने वाली हैं, न कि निमित्त कुछ उपादान में गुणपर्याय दे देता है।

### प्रश्न—270-273

उपादानभूत वस्तु के स्वरूप पर दृष्टि देने से निमित्तों के निमित्त की औपचारिकता का परिचय—जब की विशेषता पर दृष्टि दें और वस्तु का स्वरूप उस ही वस्तु के स्वरूप में परिसमाप्त होता है, इस निर्णय पर उपयोग रखें तो सर्वत्र यह विदित होगा कि निमित्त उदासीन कारण हुआ करता है। कोई भी निमित्त प्रेरक नहीं होता। कौन सा उपादान किस प्रकार की स्थिति सम्पन्न वस्तु को निमित्त पाकर परिणाम, उस क्रियासम्पन्न निमित्त में प्रेरणा जैसा बोध होने लगता है। मिट्टी से घड़ा बनने में किस शक्ति और क्रिया वाला कुम्हार निमित्त होता है? इस बात का बोध कराने के लिए प्रेरणा वाली बात कही जाती है कि कुम्हार ने उस मिट्टी को दबाकर घड़ा बना दिया। केवल सत्त्व को निरखा जाए तो इतने क्रियावान कुम्हार के बीच भी मिट्टी में जो घड़ारूप परिणामन है वह केवल मिट्टी में मिट्टी की परिणति से ही है। उस समय एक विशिष्ट परिस्थिति वाला कुम्हार निमित्त हुआ। हाँ जब उस निमित्त की स्थिति पर दृष्टि रखकर देखा जाता तो कई निमित्त प्रेरक प्रतीत होते हैं। इस प्रेरकता के कथन का भी तात्पर्य यह लेना कि अपनी ही क्रिया का परिणामन करते हुए ऐसे निमित्त उपादान की सन्निधि में है, बहुत शक्ति का कार्य करने वाला निमित्त है तब उपादान में नैमित्तिक भाव हो रहा है। इतना सम्बंधभर जानने पर निमित्त की प्रेरकता का यह अर्थ नहीं लेना कि उपादान नहीं परिणम रहा और निमित्त परिणम रहा है, यह बात नहीं है। तो जितने ये भेद पड़े हैं निमित्त के, वे निमित्त की विशिष्ट परिस्थितियों के कारण पड़े हैं।

तब कह सकते हैं कि कोई प्रेरकनिमित्त, कारक निमित्त, साधक निमित्त, प्रतिबन्धक निमित्त, उत्तम्भकनिमित्त, ज्ञायकनिमित्त और उदासीन निमित्त, विषयरूपनिमित्त, संयोगरूपनिमित्त और वियोगरूप, यों अनेक प्रकार के निमित्त होते हैं। उस कार्य के बीच निर्णय केवल एक ही है कि विशिष्ट योग्यता वाला पदार्थ अपनी योग्यता से अनुकूल अन्य पदार्थों को निमित्त पाकर परिणम जाता है। यह सिद्धान्त इन सभी प्रकार के निमित्तों के बीच है, इनसे कहीं बाधा नहीं आती, पर निमित्त की विशिष्ट परिस्थितियाँ देखने से निमित्त अनेक प्रकार के नजर आते हैं।

**प्रश्न—274**

**प्रेरक निमित्त के प्रसंग में भी उपादान में निमित्त की अकिंचित्करता का परिचय** – देखिये प्रेरक निमित्त क्या है ? जिस निमित्त क्रिया में क्रिया रूप परिणत हुआ पदार्थ जो निमित्त पड़ा है, उसको निमित्तमात्र पाकर उपादान में अपने में अपनी क्रिया बन रही है, उसे प्रेरक निमित्त कहते हैं, प्रेरक निमित्त के बारे में इससे बढ़कर और क्या दृष्टान्त दिया जायगा ? जैसे अग्नि ने पानी को गर्म कर दिया । पानी में खूब खलबली मचा दिया अग्नि ने, ऐसा प्रतीत होता है, अथवा कुम्हार ने उस मिट्टी के लौधे को पसारकर घड़ा बनाया या किसी पुरुष ने किसी का हाथ पकड़कर खींच लिया, उस जगह से हटा दिया, उतनी प्रेरणा वाली घटना के बीच भी सिद्धान्त एक ही है, बड़ी तेज क्रिया में परिणत पुरुष निमित्त है एक के हट जाने में । कोस, कुशूल, पर्याय से घट बन जाने में निमित्त है एक बड़ी तेज शक्ति से अपने में ही अपनी ही क्रिया करने वाला कुम्हार । तो कुम्हार ने जो श्रम किया वह कुम्हार ने अपने में, अपने में से श्रम किया । इतना तेज श्रम करने वाला कुम्हार घड़े की निष्पत्ति में निमित्त है ऐसी बात बताने का सुगम तरीका प्रेरक निमित्त कहकर बताता है । परमार्थतः किसी भी अन्य वस्तु का असर पर्याय गुण शक्ति किसी अन्य में नहीं पहुंचती। वस्तु की स्वतन्त्रता जान लेने का एक अद्भुत प्रभाव है, चमत्कार है, ऐसा वह जानने वाले में उत्पन्न होता है ।

**विडम्बना मेटने का उपाय वस्तु स्वातन्त्र्य परिचय** – संसार में सबसे महान क्लेश विडम्बना विपदा है मोह की । जीव सब स्वतंत्र हैं, अमूर्त ज्ञानमात्र हैं। जीव के स्वरूप पर दृष्टि देने पर विदित होगा कि किसी जीव का बाहर में कहीं कुछ नहीं है । यह सबसे निराला अमूर्त रूप रस गंध स्पर्श से रहित है, केवल ज्ञानानन्द स्वरूप में रत । ऐसा यह मैं आत्मा हूँ । इस आत्मा का बाहर में कौन है ? प्रेरक निमित्त का एक उदाहरण आया ही था । देखो – यहाँ ये दो बुढ़िया बात कर रही थीं, उस पर हम क्षोभ कर रहे, क्षोभ करने का उद्देश्य बुढ़िया से विरोध न था किन्तु कोई बात इष्ट लग रही, यह स्वतंत्रता की चर्चा, वस्तुस्वरूप का कथन जो एक हित के लिए आवश्यक है, वह इष्ट जंच रहा, उस इष्ट में कुछ बाधा समझ में आयी, कुछ क्षोभ में आये तो इन क्षोभ में भी प्रेरणा बुढ़िया ने नहीं की, किन्तु इस प्रकार की क्रिया में परिणत वह बुढ़िया क्षोभ में नहीं हुई, बस इतनी भर बात प्रेरक विषय में समझने की है । और इस विषय को समझकर फिर यह सर्वत्र विदित होगा कि कोई भी निमित्त उस उपादान में कुछ प्रेरणा नहीं करता, किन्तु इस निमित्त स्वरूप अपने आप में प्रेरित है और ऐसा प्रेरित निमित्त किसी विभाव क्रिया में निमित्त कारण पड़ता है, इतनी भर बात समझ लेना है । अब ध्यान में आया होगा कि घर गृहस्थी में रहने वाले लोग जो एक दूसरे के प्रेरक हैं, ऐसा जो दिखता है उसमें केवल इतनी ही सार की बात है कि अपने –अपने स्वार्थ के लिए अपनी – अपनी चेष्टा करने वाले इन मोही जीवों ने, जिन्होंने अपने विषय के साधन, अपने सुख की बात उनके निमित्त से मान रखी है, यह प्रेरित हो जाता है अर्थात् अपनी मोह- राग- द्वेष परिणति से परिणत हो जाता है। वास्तविक सम्बन्ध कुछ नहीं हैं। स्वरूप में जैसे आप तैसे हम। हमसे सम्बंधित बातों में आपको राग नहीं जग रहा, और आपसे सम्बंधित बातों में हमको राग नहीं जग रहा और वे दोनों बातें बिलकुल भिन्न हैं, जैसे हमसे

भिन्न हैं वैसे ही आप से भिन्न हैं। फिर न आपका यहाँ कुछ है, न हमारा कुछ है। अमूर्त ज्ञानमात्र अपने आपका स्वरूप है। इस स्वरूप का जिसने परिचय किया, अनुभव किया वह तो संसार संकटों से पार हो जाता है और इस ही स्वरूप से अनभिज्ञ रहे मोही मूढ़ रहकर संसार में जनम मरण की परम्परा बढ़ाते रहते हैं। जैसे पूर्वजन्म के प्रसंग कुछ दिन रहकर खतम हुए। आज तो नहीं इसी प्रकार इस जन्म के भी ये प्रसंग कुछ दिनों को रहकर ये भी वियुक्त हो जायेंगे, रहेंगे नहीं, लेकिन इस मोही की धुन तो एक ही सब भवों में है, जो मिला उसे ही अपना माना है। इसकी यह टेक किसी भव में नहीं मिटी और यही कारण है कि समागम तो मिटते गए मगर इसके जनम मरण की परम्परा न मिटी। इस मोह को दूर करने में ही कल्याण मिलेगा। कल्याण का अन्य कोई उपाय नहीं है।

**मोहविध्वंसक औषधि** – मोह को दूर करने की यह खास औषधि है कि प्रत्येक सत् पदार्थ की स्वतंत्रता की परख कर लें, इससे ही मोह दूर होगा। बाकी और जो उपाय किए जायेंगे वे औषधियाँ नहीं हैं, वे दवा हैं मोह को दबा देंगे पर मिटा न सकेंगे। थोड़ी देर को राग दूर कर लिया। यों तो घर में मन न मिलने पर या प्रतिकूल होने पर घर का भाई भी कह देता है कि इससे तो अच्छे गैर लोग हैं हमारा तो इसमें राग रहा ही नहीं। पति पत्नी के बीच भी कोई विवाद ऐसा उत्पन्न हो जाय तो एक दूसरे के प्रति कह देते हैं कि हमारा तो रंच भी राग इसमें नहीं रहा। अब हमारे जरा भी इससे स्नेह नहीं रहा। तो क्या यह बात उनकी सत्य है? स्नेह नहीं रहा, यह बात तो नहीं है पर स्नेह दब गया। ऐसी प्रतिकूल घटनायें आयीं कि राग की जगह द्वेष आ गया। उस द्वेष ने राग परिणति को दबा दिया, एक जीव में जब द्वेष जग रहा तो राग कहाँ से आया?

यों राग मिटने से कोई वैरागी हो गया क्या? जो सम्यग्ज्ञानपूर्वक राग का मिटना है वह है वैराग्य वाली बात। ऐसा सम्यग्ज्ञान, वस्तु की स्वतंत्रता का परिज्ञान करे। प्रत्येक पदार्थ अपने आप में अपने उत्पाद व्यय ध्रौव्य के कारण ऐसे ही शीलस्वभाव के कारण निरन्तर परिणमता रहता है। जो जहाँ जिस प्रकार परिणमना है, होता है। किसी भी पदार्थ में यह हठ नहीं पडी है कि मुझे इसके बाद इस तरह का परिणमन करना है। हो रहा है यद्यपि ऐसा ही कि अनन्त परिणतियाँ हैं और वे क्रमशः परिणत हो जाती है, लेकिन हठ किसी का कुछ नहीं है। हठ केवल शुद्ध पदार्थ में है, सो उसमें हठ क्या करें, वहाँ निरन्तर सदृश परिणमन होता रहेगा, वहाँ दूसरे प्रकार का परिणमन नहीं। विभाव परिणमन में उपादान अपनी योग्यतानुसार अनुकूल निमित्त को पाकर उस प्रकार से परिणम जाते हैं। तब इस स्थिति में भी निमित्त स्वतंत्र है और उसने अपने आप में अपने ही उत्पादव्यय का काम किया। उपादान स्वतंत्र हैं, उस समय भी उपादान ने अपने आप में ही परिणमन का कार्य किया। यों किसी पदार्थ का कोई दूसरा पदार्थ स्वामी नहीं, अधिकारी नहीं। ऐसे हम आप जीव हैं, जो कि अमूर्त ज्ञानमात्र विलक्षण परम अनुपम आनन्दस्वरूप जो सत् पदार्थ है सो अपने में अपना ही निरन्तर परिणमन करते रहते हैं। इसका कोई भी अन्य पदार्थ कुछ नहीं लगता। मोह के वश हुआ यह जीव परपदार्थ से मोह करता है। इस जीव की ऐसी टेक पड़ गई है कि जो भी जीव अपने घर में

पैदा हो गए अथवा कहीं बाहर से आये उन्हें अपना मान लेता है। कदाचित् उन घर के चार जीवों की जगह कोई और आ गए होते तो उनसे मोह करने लगता। ऐसा भी होता है कि जिनसे यह जीव राग करता है वे कहो उससे बिल्कुल राग न करते हों, याने वे सब तो इससे हटना चाहते हैं लेकिन यह पुरुष राग करता है, तो बताओ – यह इकतरफा राग है कि नहीं?...है। तो ऐसे ही समझिये कि अगर कोई दूसरा मनुष्य चाह रहा हो और उसे यह मित्र भी चाहता हो तो वहाँ उन दोनों का इकतरफा राग है, परस्पर नहीं, क्योंकि सभी जीव अपने आप में अपने भाव के अनुसार अपने में कषाय परिणमन किया करते हैं। कोई किसी अन्य के प्रयोजन के लिए नहीं करता। तो प्रेरक निमित्त का भी जहाँ कथन आ रहा हो वहाँ पर केवल यह बात जाननी है कि इस कार्य में इस प्रकार की क्रिया में वह पदार्थ निमित्त हुआ है, न कि उस पदार्थ ने अपने में से कोई द्रव्य गुण पर्याय निकालकर दूसरे पदार्थ को किया।

### प्रश्न-275

**कारक निमित्त के प्रसंग में भी उपादान में निमित्त की अकिंचित्करता का परिचय** – जैसी बात प्रेरक निमित्त में है वही बात कारक निमित्त में भी। जिस अनुकूल विकार परिणत पदार्थ को निमित्त करके उपादान अपना विकार बनाता है उसे कारक निमित्त कहते हैं। कहते हैं ना कि क्रोध प्रकृति ने जीव को क्रोधी कर दिया, लोभ प्रकृति ने जीव को लोभी कर दिया वहाँ उस प्रकृति ने अपनी परिणति से इन ज्ञानानन्द स्वभाव वाले जीव को क्रोधी लोभी किया हो सो बात नहीं, किन्तु इस प्रकार की चारित्र्य योग्यता रखने वाला यह जीव उस क्रोध लोभ प्रकृति के उदय का निमित्त पाकर यह अपनी परिणति से क्रोधी लोभी हुआ। इस कारक निमित्त में इतनी बात ज्ञान में आयी कि जो निमित्त पड़ा वह स्वयं विकारी है। विकृत पदार्थ अमुक विकार में निमित्त पड़ा, इतनी बात जानने के लिए कारक निमित्त की बात कही जाती है। तो प्रेरक निमित्त हुआ अथवा कारक निमित्त हुआ सभी के। वस्तु स्वरूप पर दृष्टि देने से विदित होगा कि सभी उपादान से बाहर ही बाहर रहे इसलिए वे उदासीन हुए। यों वस्तु की स्वतन्त्रता का ज्ञान करने वाला व्यक्ति पर वस्तुओं में मोहित नहीं होता है और उसे अपने कल्याण का मार्ग मिलता है। लोक में विकार रूप परिणमन एक दूसरे का निमित्त पाकर हो रहे हैं। इस प्रसंग को जब लोग निमित्त की प्रधानता से देखते हैं तब उनकी यह परिभाषा बनती है कि देखो इसने बाधा डाल दिया, इसने इसको सिद्ध कर लिया, इस को बंद किया, इस पर प्रेरणा की आदिक अनेक शब्दों में कह लेते हैं। वस्तुस्थिति यह है कि वे सब निमित्त इन शब्दों से चाहे कहा जाय लेकिन निमित्त का द्रव्य, गुण, पर्याय, असर, प्रभाव कुछ भी उपादान में नहीं पहुंचता। निमित्त को निमित्त मात्र पाकर उपादान अपने में प्रभाव उत्पन्न करता है, तो इस घटना को, निमित्त का प्रभाव, इस शब्द से कहा करते हैं और ऐसा ही कहने में एक सुगमता है संक्षिप्तता है।

प्रश्न—276

साधक निमित्त के प्रसंग में भी उपादान में निमित्त की अकिंचित्करता – कुछ निमित्त होते हैं साधक, जिनका निमित्त मात्र पाकर उपादान अपने गुणों का उत्कर्ष सिद्ध कर ले उसे साधक निमित्त कहते हैं। जैसे मूर्ति दर्शन, सत्संग आदिक कारण को साधक निमित्त ही तो कहा करते हैं। ये सब साधक कारण हैं। प्रभु के दर्शन करें, मंदिर में पूजन करें, ये सब अपने उत्कर्ष के साधन हैं, वस्तुतः ये सब निमित्त उत्कर्ष के करने वाले नहीं हैं, पर जो जीव जिस योग्यता वाला होता है अपनी योग्यता अनुसार प्रभु दर्शन करके जो अपना भाव भरता है, भक्तिपूर्ण भाव बनाता है उसमें आश्रय क्या पड़ा ? वह मूर्ति। अतएव वह मूर्तिदर्शन साधक – निमित्त कहलाता है। किन्हीं शब्दों में कहा जाय। जो तथ्य बात है वह दृष्टि में रहनी चाहिए। यों तो प्रभु दर्शन भक्ति ही ऐसी है कि प्रभु का सामर्थ्य बताना और अपने उत्थान में साधक आश्रय निमित्त हुए हैं तो उनको केवल साधक निमित्त, आश्रय निमित्त इतना न कहकर उनको ही अपना सर्वस्व कहना यह भक्ति की पद्धति है। भक्ति के समय तत्त्व ज्ञान की बारीक बातें न प्रयोग में लाना चाहिए अन्यथा उस भक्ति में कमी आ जायगी। जैसे प्रभु के सामने ही कोई दर्शन करे और वहाँ तत्त्व ज्ञान की बात झाड़े कि हे प्रभु ! आप मेरा कुछ नहीं करते, मैं ही अपना निमित्त पाकर अपने में भाव बनाऊँ, अपना उत्कर्ष करूँ तो आप मेरे लिए निमित्त कहलाते हैं। तो यह भी कोई भक्ति की पद्धति है क्या ? तत्त्व ज्ञान सही है लेकिन भक्ति के प्रसंग में तत्त्व ज्ञान की सूक्ष्मता नहीं आया करती है। उस समय निमित्त की प्रधानता से ही कथन होता है, पर तत्त्वज्ञानी उसका अर्थ बोलकर ही समझता है। भक्ति में वह ऐसा कह देता कि हे प्रभु ! आपने अंजन जैसे चोर को तारा, हमें भी तार दो, इतने पर भी वह तत्त्वज्ञानी पुरुष जानता है कि उस अंजन चोर ने स्वयं ही अपने आप में ज्ञानबल पैदा करके, भक्ति बल बढ़ाकर, प्रभु का आश्रय लेकर अपने में उत्कर्ष किया, पर तत्त्व ज्ञान का प्रसंग तो ध्यान मनन में है और गुणानुराग में, भक्ति में भक्ति का ही प्रसंग है। तो साधक निमित्त अनेक होते हैं आत्मोत्कर्ष की स्थिति में, फिर भी यह बात ओझल न रखना कि उपादान अपनी ही शक्ति से, अपनी ही परिणति से अपने आप में अपना ही उत्पाद कर रहा है। वहाँ बाह्य निमित्त मात्र है। इस वर्णन में यह सर्वत्र दृष्टि करते जायें कि देखो – पदार्थ के उत्पाद की कितनी स्वतंत्रता है ? आखिर पदार्थ है ना, तो है के साथ ही उसकी स्वतन्त्रता भी लगी है। बस यहाँ लोग उसकी स्वतंत्रता को भूलकर ही तो दुःखी हो रहे हैं। इसके मायने यह नहीं कि आजादी की स्वच्छन्दता होने से सुखी हो जायेंगे।

हम आजादी और स्वच्छन्दता की बात नहीं कह रहे, हम पारमार्थिक आजादी की बात कह रहे हैं, जिससे मोह हटता है। उस स्वतंत्रता की पहिचान यह है कि यहाँ मोह नहीं रहता। जहाँ मोह भाव हो और फिर अपनी आजादी माने तो वह स्वच्छन्दता है, स्वतंत्रता नहीं है। वास्तविक स्वतंत्रता तो मोह के परित्याग में ही होती है। तो वस्तु स्वातंत्र्य जानने से मोह मिटता है, यह स्पष्ट बात है। जब यह समझ में आ जाय कि प्रत्येक पदार्थ अपने आप का ही मालिक है, अपने आप की ही दशा का करने वाला है, अपनी ही स्थिति

रूप परिणमता है, उसका सर्वस्व उसका स्वयं खुद है, उससे बाहर उसका कुछ नहीं। यही बात मेरी है, मेरा स्वरूप एक विशुद्ध चैतन्यमात्र है। केवल एक चित्प्रकाश, जिसका पहिचाननहार, जाननहार भी कोई नहीं, जिसका सम्बंधी कोई नहीं है। ऐसे उस चित्प्रकाशमय आत्मा का, इस जगत में कहाँ क्या है ? कौन मेरा उत्कर्ष साधन है, कौन मेरा बिगाड़ करने वाला है? सर्व पदार्थ अपने आप में अपना उत्पादव्ययध्रौव्य अनादि से करते आये हैं और अनन्तकाल तक करते चले जायेंगे।

**मोहवश ही भिन्न में आत्मीयता की कल्पना** – यह जीव मोह में पागल बनकर अपने में सम्बंध घटित करता रहता है। जैसे कोई पागल लड़का, किसी कुवें के निकट बैठा हो और वहाँ कोई मुसाफिर मोटर में, कोई साइकिल में, कोई ताँगा, रिक्शा आदि में आते हैं, और थोड़ी देर को पानी पीने के लिए उस जगह वे रूक जाते हैं। बाद में पानी पीकर वे अपने निर्दिष्ट स्थान चले जाते हैं। उनके चले जाने पर वह पागल लड़का रोता है, अपना सिर धुनता है – हाय ! मेरी मोटर चली गई, मेरे रिक्शा, ताँगा, साइकिल आदि चले गए। इस तरह जो समागम मिले घर द्वार, कुटुम्ब, मित्र, धन वैभव आदिक ये हमारे रंचमात्र भी नहीं हैं। अज्ञान अंधेरे में मोह में जो कुछ बक रहे हैं सो बकें, लेकिन इस चित्प्रकाशमात्र आत्मा का ये कुछ वैभव नहीं हैं, ये पुण्योदय के अनुसार अपनी परिणति से यहाँ हैं और फिर चले जायेंगे। चले जायेंगे, इसमें तो कुछ शक नहीं है। चले जाने पर यह जीव रोता है - हाय ! मेरा सब कुछ गया। तो यह सब मोह की विडम्बना है। उस मोह का विनाश होगा वस्तुस्वरूप के परिज्ञान से। उसी के लिए यह सब चर्चा चल रही है।

यह बात अपने हित के लिए विशेष साधक है। उसकी ओर उसके परिज्ञान ज्ञान की ओर उत्साह न जगना, यही तो एक मोह की निशानी है। और संसार में अगर बहुत से लोगों की वोटों का निर्णय करें तो मिथ्या निर्णय बनेगा कि सच्चा ? जब सभी जीव मोही हैं, विपरीत है, दुःखी है, अज्ञानी है तो इनका निर्णय कोई प्रवर्तन देखकर, इनकी बहुतायतता देखकर किसी काम का जो निर्णय कर लेवे अपने हित के लिए, तो यह तो अनर्थ का कारण है। एक भी ज्ञानी का अगर प्रसाद मिल गया तो उसे सब कुछ प्राप्त हुआ समझिये और हजारों अज्ञानियों से अगर कोई प्रशंसा भी मिल गई तो उससे कोई आत्मा का उत्कर्ष नहीं। उत्कर्ष तो एक ज्ञानी द्वारा प्रशंसा किए जाने पर भी नहीं है, मगर वहाँ तो यह सम्भव है कि कोई वास्तविक मार्ग के लिए बात कह रहे हैं। तो आत्मा के उत्कर्ष के लिए अनेक निमित्त साधक निमित्त हैं लेकिन वहाँ भी निमित्त में निमित्त का ही परिणमन है, उपादान में उपादान का ही परिणमन है। प्रत्येक पदार्थ अपने उत्पादव्यय स्वभाव के कारण प्रतिसमय उत्पन्न होते हैं और विलीन होते हैं।

**प्रश्न—277**

**प्रतिबंधक निमित्त के प्रसंग में भी उपादान में निमित्त की अकिंचित्करता** – एक होता है प्रतिबंधक निमित्त।

किसी कार्य में प्रतिबंध आ जाय, जिसको निमित्त पाकर किसी कार्य में प्रतिबंध आ जाय, जिसका अभाव होने पर उपादान में विशिष्ट कार्य बने उसे प्रतिबंधक निमित्त कहते हैं। जैसे नौसादर और चूने का लेप अग्नि के कार्य को रोक देता है। अग्नि तो जलाने के लिए तैयार है, मगर किसी पत्ते का बर्तन बनाया और उस पत्ते की पीठ पर खूब लेप कर दिया उस औषधि का तो उस पत्ते के बर्तन में पानी भरकर दाल भी पकायी जा सकती है। आग में वह पत्ते का बर्तन जलेगा नहीं। बहुत से लोग तो हाथ में कोई चीज लगा लेते और वे बहुत तेज गर्म साँकल हाथों में पकड़ लेने का काम दिखाते हैं, पर वे जलते नहीं हैं। तो वहाँ यदि प्रतिबंधक औषधि न होती तो आग जलाने का कार्य कर लेती। अब प्रतिबंधक निमित्त होने पर अग्नि में जलाने के कार्य में रूकावट आयी। उसमें जलाने का जो निमित्त होता है वह प्रतिबंधक निमित्त होता है। लोकव्यवहार में हमारे अनेक कार्यों में रूकावट डालने वाला प्रतिबंधक निमित्त मिलता रहता है, उन प्रतिबंधक ने क्या किया यहाँ? सो कुछ नहीं। मगर ऐसा योग है कि प्रतिबंधक निमित्त का सन्निधान हुआ तो उपादान अपने विशिष्ट कार्य से रुक जाय। उसके उसके योग्य उस समय परिणमन होगा, तो ऐसा निमित्त कहलाता है प्रतिबंधक, किन्तु वहाँ भी निमित्तभूत पदार्थ में उसके उत्पादव्यय से उसका परिणमन हुआ और उपादानभूत पदार्थ में उसकी योग्यतानुसार उस ही में परिणमन हुआ, वस्तु की स्वतंत्रता स्वतंत्र है। कुछ निमित्त उत्तम्भक होते हैं।

#### प्रश्न—278

मन्त्रप्रयोग के प्रसंग में मात्रिक की अन्य में अकिंचित्करता – बहुत से मंत्र साधक उत्तम्भन आदि कार्यों के लिए यत्न करते हैं, कोई चलते हुए को रोक देना, प्रगति करते हुए की प्रगति में बाधा डालना, ऐसे कार्यों के लिए मंत्र साधना करते हैं वह एक उत्तम्भक निमित्त है। और उस समय जो कार्य होता है जिस उपादान में उसके लिए निमित्त कहा जाता है लेकिन स्वतंत्रता वहाँ भी है। उपादान अपने आप की योग्यता से ऐसा बना। पहिले जब गजरथ बहुत चला करते थे तो उस समय में कुछ ऐसी धारणा लोगों की थी कि जो जोशी लोग होते थे वे अपने ही घर बैठे हुए रथ का चका तोड़ देते थे। उनका घर वहाँ से मीलों दूर हो, फिर भी मंत्र साधना के बल से वे ऐसा कार्य कर देते थे। तो वहाँ उन्होंने क्या किया? अपने आप में ही अपना तंत्र किया लेकिन वहाँ ऐसा हो जाता था। ऐसी धारणा थी। वहाँ भी मंत्र साधना निमित्त है और यहाँ उत्तम्भन आदिक हो गए। उनकी साधना के तंत्र ऐसे होते थे कि किसी बाँस के अत्यन्त पतले पंचोंकी एक अर्थी बना देते थे तो साधना करके उस साधना के जोश में उस अर्थी के कुछ बाँस तोड़ देते थे। वहाँ उसी तरह की घटना घटी। वहाँ तथ्य कितना है, यह विषय तो अलग है मगर उत्तम्भन निमित्त की बात कह रहे हैं। कदाचित् ऐसी भी घटना हो जाय तो भी उपादान की स्वतंत्रता पर दृष्टि दें कि वहाँ अर्थी में जो क्रिया हुई है, जो तोड़ फोड़ हुई है वह उसकी परिणति से होती है। वहाँ वह मंत्रवादी साधक नहीं है। मंत्र की बात सुनो – कितने ही लोग ऐसे मंत्रवादी हैं कि मंत्र से बिच्छू, सर्प आदिक के विष हटा देते हैं, और यह बात बहुत देखी भी जाती है। इस घटना में जरा विचार तो करो कि जिस पुरुष को सर्प ने डसा है उसका



शरीर विष से व्याप्त हो गया है । मंत्रवादी दो चार हाथ दूर खड़ा है, मंत्र पढ़ रहा है और कितने ही मंत्रवादी ऐसे होते हैं कि वे अपने गांव में ही मंत्र बोल रहे, जिस व्यक्ति को सर्प ने डस लिया है उसके पास भी नहीं जाते, फिर भी सर्प का विष दूर हो जाता है । तो क्या किया मंत्रवादी ने उस पुरुष में ? कुछ नहीं किया । उसने स्वयं अपने भाव में जोश पैदा किया, उसकी साधना की बात की और यहाँ उससे विष उतरा, तो विष उतरने में उस मनुष्य वाली बात ही कारण है । उसके ही प्रत्यय से ऐसा परिणमन हुआ पर निमित्त है वहाँ मंत्रवादी का मंत्र प्रयोग । तो छोटे मोटे मंत्र तंत्र की बात ही जब इस बात को सिद्ध कर देती है कि उपादान में क्या हो रहा, उसमें कारण वह दूसरा है, पर सबका अपने आप में कार्य है। कुछ घटनायें ऐसी सुनी भी हैं कि आजकल दृष्टि बंद करने वाले मदारी लोग भरे जल्सा में बैठे हुए लोगों से बजे तो हों 4, पर कह देते कि देखो अब 12 बजे रहे हैं, तो लोग अपनी अपनी घड़ी में 12 बजे का ही समय पाते हैं यद्यपि हमने अपनी आँखों नहीं देखा, पर बहुत से लोगों द्वारा बड़े प्रभाव पूर्वक कहते हुए सुनते जरूर हैं । तो ऐसा होने में वहाँ होता क्या है ? उस दृष्टि बंधक ने अपने आप में अपना परिणमन किया और वहाँ घड़ी देखने वालों ने अपने आप में बुद्धि से अपना परिणमन किया । तथ्य तो वहाँ भी यही है, प्रत्येक घटना में यही निरखते जायें कि कोई पदार्थ किसी दूसरे पदार्थ का कोई कार्य नहीं करता । ऐसा निमित्त उत्तम्भक निमित्त कहलाता हैं ।

### प्रश्न-279

**ज्ञायक निमित्त के प्रसंग में निमित्त की उपादान में अकिंचितकरता** – कुछ निमित्त ज्ञायक निमित्त होते हैं, जिस पदार्थ का निमित्त पाकर स्वफल या किसी पदार्थ के सत्त्व आदिक का ज्ञान कर लिया जाता है उसको ज्ञायक निमित्त कहते हैं । यदि हिरन सामने बाई ओर से दाहिने ओर को निकल गया तो लोग कहते हैं कि आज सगुन हुआ, मेरा कार्य सिद्ध हो जायगा। और इस तरह की बात कभी देखी भी जाती है । तो ऐसे समय में उस सगुन को फलवान बनाने का जो निमित्त बताता है वह ज्ञायक निमित्त है । जब अकम्पनाचार्य आदिक मुनियों पर आपत्ति पड़ी थी रक्षाबन्धन के दिन, उस समय में श्रवण नक्षत्र कांप रहा था, रात्रि को निरखा मुनि ने । वह श्रवण नक्षत्र का कम्पन था ज्ञायक निमित्तता । अनेक ज्ञायक निमित्त होते हैं । आप किसी की दुकान पर बैठे हुए थे, वहाँ पर आप अपना छाता भूल गए । जब आप लोटे जा रहे थे तो रास्ते में किसी छाता वाले पुरुष को अथवा छाता को देखकर आपको याद आया कि वहाँ मेरा छाता रह गया । तो आप को याद दिलाने में जो छाता निमित्त है वह है ज्ञायक निमित्त । पर वहाँ यह बतलाओ कि उस छतरी ने आप में ज्ञान पैदा किया, या आपका हाथ पकड़कर वह उस दुकान में आपको ले गई? क्या किया उस छतरी ने ? वह छतरी तो अपने आपके परमाणुओं में थी, अपने ही स्वयं उत्पादव्ययध्रौव्य से रह रही थी इससे आगे उसका कार्य तो न था, लेकिन उसका निमित्तमात्र पाकर उसको निरखकर जो एक ज्ञान हुआ 'छतरी भूल आये' तो आपकी याद के लिए वह छतरी ज्ञायक निमित्त हो गई, लेकिन उस छतरी ने आप में किया कुछ भी नहीं । आप स्वयं उसको देखकर अपनी याद कर लेंगे । तो वस्तु में स्वतंत्रता की दृष्टि बन

जाय, इससे बढ़कर कोई भाग्यशाली पुरुष नहीं है। लेकिन यह मोही प्राणी इन धन वैभव के समागमों को पाकर अपने को भाग्यशाली समझ रहा है। इसके अज्ञान का रंग इतना गहरा पड़ा हुआ है भीतर में कि कभी धर्म के नाम पर धर्म के ऊपरी काम भी कर रहा है, मगर भीतर में उस धर्म का कुछ भी असर नहीं होता। असर हो भी कैसे? उस के चित्त में तो बाह्य प्राप्त समागम समाये हुए हैं, कषायों का लोभ ही चढ़ा हुआ है। यदि ये विकार भाव इसके चित्त से हट जायें और उसकी साधना में एक स्पष्टता आ जाय, उसकी सिद्धि में सफल हो जाय।

**पोजीशन पॉयजन का बिरादर** – वस्तु स्वातन्त्र्य के उपयोग का अभ्यास इस जीव को हितकारी है, न कि यह लौकिक पोजीशन हितकारी है। पोजीशन तो प्वायजन है अर्थात् विष है। जैसे विष का भक्षण करने वाला पुरुष मरण को प्राप्त हो जाता है इसी तरह पोजीशन की बात चित्त में रखने वाला पुरुष भी नष्ट हो जाता है। वह पोजीशन भी है क्या? कदाचित् कुछ स्वार्थी लोगों ने प्रशंसात्मक दो शब्द बोल दिए तो उससे लाभ क्या मिला? यह लौकिक पोजीशन तो इस जीव की दुर्गति और विनाश का कारण है। वास्तविक पोजीशन तो यह है कि अपने आप के भाव न बिगड़ने पायें, अपना शुद्ध भाव रहे। अपने को अपने में निरखना, अपना कार्य करना, अपने इस ज्ञानस्वरूप को अपने उपयोग में लेना, गुप्त लेना, बड़ी शान्ति से लेना, वह है अपने आपका वास्तविक पोजीशन। वही पोजीशन अपना भविष्य सुधारेगा, वही वर्तमान को सुधारता है, और अतीत में चाहे कितनी ही कुछ गड़बड़ी की हो, पाप किया हो। उन सबका भी सुधार कर देता है। स्वरूपानुभव में इतनी सामर्थ्य है कि त्रिकाल का सुधार हो जाता है। पोजीशन तो वहाँ है। लोग यहाँ क्या कहते हैं? इन अज्ञानी जनों का कुछ लगाव रखना और उनकी कुछ बात से अपने में सन्तोष रखना। जैसे बहुत से नेताजन इस बात से तृप्त हैं कि अगर लाखों की भीड़ हो गई, हमारा विशेष स्वागत हो गया, सरकार ने विशेष प्रबंध कर दिया तो वहाँ तृप्त हो गए। देखो – कहाँ तो वे नेताजन बहुत – बहुत कष्ट पाते रहते हैं, मगर उस 10-5 मिनट के स्वागत समारोह में अपनी उस कल्पित इज्जत से तृप्त होना चाहते हैं। यह पोजीशन तो निरन्तर इस जीव को बैचन करने का कारण है। देखिये – भरत चक्रवर्ती के पास कितना बड़ा वैभव साम्राज्य था, फिर भी उसकी दृष्टि रहती थी समस्त पर वस्तुओं से हटकर स्व में आने की। उस स्वदृष्टि में आने पर भले ही सम्मान बढ़े लेकिन साथ में यदि यह कला पड़ी है तो वह भूल में नहीं है, वह तो सुध में है। ये सब बातें जब वस्तु की स्वतन्त्रता समझ में आती है तब अनायास ही प्राप्त होती हैं।

**स्वभाव विकास के विविध प्रतिच्छेदों में भी स्वातन्त्र्य का दर्शन** – पदार्थ में स्वाभाविक परिणमन होते हैं उनके सम्बंध में निमित्त की बात बताने की आवश्यकता नहीं रहती। कारण यह है कि उन परिणमनों में केवल कालद्रव्य ही निमित्त है अन्य कोई निमित्त नहीं है, लेकिन जो परिणमन भिन्न है – पहिले समय में कुछ रूप से था, अब किसी अन्य जुदे रूप से है, ऐसे परिणमनों में कोई निमित्त होते ही हैं, क्योंकि वे भिन्न परिणमन हैं। पहिले परिणमन से अगला परिणमन भिन्न प्रकार का हो तो वहाँ कोई निमित्त अवश्य होता है

। तो ऐसे परिणमनों के लिए यहाँ निमित्त की चर्चा चल रही है । स्वभाव परिणमन की धारा पूर्णतया न चल रही हो और किसी अंश में अब परिणमन बन रहा हो तो वहाँ भी निमित्त होता है । जैसे हम आपकी जब कभी अपने हितरूप स्वभाव पर दृष्टि पहुंचती है तो यद्यपि वह एक स्वभाव की ओर का ढलना है लेकिन परिणमन तो भिन्न है ना । अभी कुछ और था, अब कुछ और हुआ और कुछ समय बाद और हो जायगा । तो यहाँ निमित्त है ज्ञानावरण आदिक कर्मों का क्षयोपशम, दर्शनमोह का उपशम आदिक और कुछ चारित्र आवरण करने वाली प्रकृतियों का क्षयोपशम विशेष यह तो निमित्त होता है और बाह्य साधन- अच्छे साधन में सत्संग में रहना या जैसे कि कुछ धर्मात्मा पुरुष नजर आये, जिनका कि केवल एक स्वभाव ररण में ही हित का विश्वास है और उसका शरण गहने के लिए अपना जीवन माना है, ऐसी बात उनकी समझ में ही बैठी हो तो उनका सहवास ये सब बाह्य साधन बनते हैं । तो अपने को उपयोगी तो यही कि ऐसा साधन बने कि अपने हितकारी निजस्वरूप की दृष्टि बराबर रहे और असार अहित, जिनके लगाव में कुछ भी आत्मा का लाभ नहीं है उनसे उपयोग हटे और दुर्लभ जो मानव जीवन पाया है उसकी सफलता मिले, यही काम मात्र इस जीवन में करने योग्य है। बाकी तो सब संसार का झमेला है, जहाँ सार कुछ नहीं है; जितना बाहर में मौज माना जा रहा है वह भी एक अँधेरा है ।

### प्रश्न—280

**निमित्त की उदासीनता** – इस प्रसंग में निमित्तों की चर्चा चल रही है कि किसी भी उपादान की क्रिया होने में कैसे – कैसे कार्य निमित्त हुआ करते हैं ? कुछ निमित्त उदासीन निमित्त कहलाते हैं। यद्यपि वस्तु के स्वरूप पर मूल पर दृष्टि दी जाय तो सभी निमित्त उदासीन रहते हैं । कारण यह है कि उपादान में कुछ भी परिणमन करने के लिए निमित्तों का कुछ उत्साह नहीं है । निमित्त कुछ कर नहीं सकते, क्योंकि प्रत्येक पदार्थ का स्वरूपकिला इतना दृढ़ है कि वह किसी के द्वारा भी भेदा नहीं जा सकता, तो इस दृष्टि से सभी निमित्त उदासीन होते हैं लेकिन अपनी क्रिया न करते हुए, अपने में कोई विशिष्ट तरंग न लाते हुए केवल सन्निधान मिलता है ऐसे निमित्तों को उदासीन निमित्त कहते हैं । जो स्थिर हैं ऐसे पदार्थों का निमित्त पाकर उपादान में परिणमन हुआ तो उन निमित्त को उदासीन निमित्त कहते हैं । जैसे कोई मुसाफिर कहीं घूमने जा रहा है, ऊपर की धूप, नीचे की धूप और उस गर्मी के ताप के कारण वह बड़ा व्याकुल है। वह जा रहा है और मन में यह लालसा रखे हैं कि कहीं छाया मिल जाय तो एक आध घंटे वहाँ बैठकर विश्राम कर लूँ, फिर आगे बढ़ूँ । नहीं तो इस तरह चलते रहने में तो जान का भी खतरा है । थोड़ी दूर चले जाने के बाद उसे एक वट वृक्ष दिखा । उस वट वृक्ष के नीचे वह मुसाफिर पहुंच जाता है, वहाँ एक आध घंटे विश्राम करके आगे बढ़ जाता है। तो अब देखिये –उसको विश्राम मिला, वह वृक्ष की छाया में पहुँचा, इन बातों में वृक्ष निमित्त है तो कैसा निमित्त है ? उदासीन निमित्त है । वृक्ष ने न उस मुसाफिर को बुलाया, न कुछ चेष्टा की और न हरकत की। वह तो जहाँ का तहाँ खड़ा रहा । वृक्ष में उपादान परिणति के लिये कुछ भी बात नहीं हुई, फिर भी इस संतप्त पुरुष के विश्राम में वह वृक्ष निमित्त हुआ । तो ऐसा निमित्त उदासीन

– निमित्त कहलाता है । इसमें तो यह बात स्पष्ट है कि उस निमित्त से उसमें कोई द्रव्य, गुण, पर्याय नहीं आया फिर भी लोकव्यवहार में यह भले प्रकार कहते हैं कि इस वृक्ष से मुझे बड़ी शान्ति मिली, बड़ा विश्राम मिलता है, इसने बहुत ठंडक पैदा कर दी । तो ऐसा कथन होने पर भी वास्तविक बात ज्ञान से ओझल न करना चाहिए । प्रत्येक पदार्थ का परिणमन उसका उसमें ही होता है । किसी विभाव परिणमन में अनेक निमित्त होते हैं तो उनका खण्डन नहीं है, किन्तु पदार्थ परिणमन की बात देखी जाय तो बिल्कुल तथ्य की बात है कि जिस पदार्थ में जो परिणमन हो रहा वह उस पदार्थ में उसकी उत्पादव्यय शक्ति से हो रहा ।

### प्रश्न-281

**निमित्त की आश्रयभूतता** – कुछ निमित्त आश्रयभूत निमित्त होते हैं, जिस बाह्य-वस्तु का आश्रय करके जीव विकार भाव से परिणमता है उसे आश्रयभूत निमित्त कहते हैं। देखिये – आश्रयभूतपने की बात जीव के लिए ही लागू हो सकती है । अजीव अजीव में परस्पर में तो केवल निमित्त नैमित्तिक सम्बंध है, पर जीव के लिए, जीव विकार करे, कषाय करे तो उसमें निमित्त तो कर्म प्रकृति का उदय है, और वे बाहरी चीजें जिनमें उपयोग फंसाकर इस जीव ने विकार भाव किया वे पदार्थ आश्रयभूत निमित्त कहलाते हैं। जैसे एक प्रसिद्ध घटना बताते हैं कि कोई वेश्या मर गई तो लोग उसको श्मशान में जलाने के लिए लिए जा रहे थे । उस श्मशान में तीन प्रकार के जीव बैठे हुए थे । एक मुनि महाराज थे, एक कामी पुरुष था, और वही अनेक स्याल रह रहे थे । उस वेश्या के मृतक शरीर को देखकर तीनों जीवों में भिन्न-भिन्न भाव हुए। मुनिराज के मन में यह भाव आया कि इस संसार में कैसे दुर्लभ मानव जीवन को पाकर इस वेश्या ने व्यर्थ में अपना जीवन गंवाया । इसने खोटे कार्यों में पड़कर अपना दुर्लभ मानव जीवन व्यर्थ खोया, मुनिराज के मन में तो यह भाव आया, और उस कामी पुरुष के मन में यह भाव आया कि यह वेश्या तो मुझसे बहुत परिचित थी । अगर कुछ दिनों तक यह और जीवित रहती तो इससे मैं और भी मिलता रहता । और उन स्यालों के मन में उस समय यह भाव आया कि यदि इसे ये लोग बिना जलायें यों ही छोड़ जाते तो हमारा कुछ दिनों का भोजन बनता । तो देखिये चीज तो एक थी – उस वेश्या का मृतक शरीर, लेकिन उसको निरखकर तीन प्राणियों में तीन प्रकार के भाव हुए । ये भाव क्यों हुए ? यों कि आश्रयभूत निमित्त था, न कि निमित्तभूत निमित्त था । अब निमित्तभूत की बात सुनो – मुनिराज के ऐसे ही चारित्र आवरण का क्षयोपशम, दर्शन मोहनीय का क्षयोपशम था कि जिसकी वजह से ऐसा निरन्तर भाव बना । और कामी पुरुष के ऐसे ही दर्शनमोहनीय चारित्रमोहनीय का उदय था जिसके कारण गंदे भाव बने और उन स्यालों के भी ऐसे मोहनीय के उदय में ऐसे भाव बने तो वहाँ नैमित्तिक भाव जो हुए हैं वैराग्य के अथवा काम के अथवा भूख मिटाने के, वे सही नैमित्तिक ढंग से हुए, लेकिन नैमित्तिक भाव के होने में वह शरीर आश्रयभूत बना, तो जैसा जिसका भाव बनना था अनुकूल निमित्त होने के कारण प्रकृति की अवस्था से, उनको उस तरह के भावों में वह मृतक शरीर आश्रय बन गया । तो जो निमित्त आश्रयभूत कहलाता है, वहाँ भी यह बात समझना

होगा कि निमित्त से इस उपादान के कार्य में द्रव्य, गुण, पर्याय कुछ भी नहीं आया, किन्तु वह था जरूर अनुकूल आश्रयभूत निमित्त।

## प्रश्न—282

**निमित्त की विषयभूतता** – जिस ज्ञेय पदार्थ को विषय करके ज्ञान ज्ञेयाकार रूप परिणमता है उसको विषयभूत निमित्त कहते हैं। विषयभूत शब्दों में जो विषय पड़ा है उसका गंदा अर्थ नहीं है, ज्ञान का स्वभाव जानना है। कोई भी शक्ति बिना परिणमन के नहीं रहा करती है। जब हम आप जीवों के ज्ञान शक्ति है तो ज्ञान तो कुछ न कुछ परिणमन करेगा ही, और ज्ञान के परिणमन होने का ढंग ही यह है कि ज्ञान अपने आश्रय में रहकर आत्मा में ही रहता हुआ यह ज्ञान अपना जाननरूप परिणमन बनाये रहता है। और जानन रूप परिणमन की विधि ही यह है कि उसमें किसी का जानना रहता है, किसी का ग्रहण रहता है अर्थात् कुछ प्रकाश इस सम्बन्ध की जानकारी है, बस वहाँ जो विषयभूत हुए याने जानने में कुछ आया वह विषयभूत निमित्त है। जैसे—केवलज्ञान में तीन लोक तीन काल के समस्त पदार्थ ज्ञान में झलक रहे हैं और झलक कैसे रहे हैं? जैसे ये पदार्थ हैं वैसे झलक रहे हैं। वहाँ विपरीत झलक नहीं हो सकती। जो पदार्थ जिस रूप में जिस ढंग से जैसा सत् है उसी प्रकार केवलज्ञान में झलकता है। तो ऐसे ही क्यों झलका? यह पूछा जाय कि केवलज्ञान में इस प्रकार का ज्ञान क्यों हुआ? तो अब उत्तर आप क्या देंगे कि इसी प्रकार के पदार्थ हैं इसलिए वैसा ही जानते हैं। तो किसी तरह ये बाह्य पदार्थ निमित्त तो कहलाये। ये जिस प्रकार से हैं उसी प्रकार से ज्ञान में आये। तो उस ज्ञान के निमित्त हुए ये सब पदार्थ। तो कौन से निमित्त हैं? कारक नहीं, ज्ञायक नहीं, आश्रयभूत नहीं। आश्रयभूत निमित्त कहलाते हैं विकार परिणमन के, पर यह तो शुद्ध ज्ञान हो रहा हो वहाँ भी विषय बनता है अशुद्ध ज्ञान चल रहा हो वहाँ भी विषय बनता है तो यह विषयभूत निमित्त होता है। ज्ञान के जो विषयभूत हो वह विषयभूत निमित्त है। अब विषयभूत निमित्तों की चर्चा सुनकर इस समय कुछ निश्चय में आप आये होंगे कि सहज सुगम सूक्ष्म याने कुछ सम्बन्ध सा ही नहीं, ऐसा अत्यन्त जुदा यह विषयभूत निमित्त है। अन्य सब निमित्तों में कुछ न कुछ विशेष सम्बन्ध की बात थी, कुछ विशेष अनुकूलता का उनमें परिचय था, लेकिन यहाँ तो कुछ भी नहीं है। केवल ज्ञान में विषय है।

**अस्तित्व वस्तुत्व नामक साधारण गुणों से भी वस्तु की विविक्तता का परिचय** – जहाँ पदार्थ के 6 साधारण गुणों का वर्णन चलता है वहाँ एक प्रमेयत्व नाम का भी साधारण गुण है। अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशवत्त्व, और प्रमेयत्व, ये 6 साधारण गुण बताए गए हैं। याने कोई पदार्थ यदि है उसमें 6 बातें स्वयमेव हैं। न होने पर सत् नहीं हो सकता। तो वे 6 बातें क्या? अस्तित्व क्या? पदार्थ जिस गुण के कारण "है" उसे अस्तित्व गुण कहते हैं मायने पदार्थ का यहाँ सत्त्व है वह अस्तित्व गुण की वजह से है। वस्तुत्व गुण की वजह से पदार्थ अपने स्वरूप से है, पर के स्वरूप से नहीं। कोई पदार्थ "है" होता है तो उसमें नियमतः यह बात पायी जाती है कि वह अपने स्वरूप से है, पर के स्वरूप से नहीं है। यदि ऐसा वस्तुत्व न हो तो वह "है" रह ही नहीं सकता। कोई अपने स्वरूप से है और परस्वरूप से भी हो तो फिर

"है" क्या रहा ? वह तो कुछ न रहा । न खुद रहा, न पर रहा । और जैसे कोई चीज पर के स्वरूप से नहीं है इसी तरह अपने स्वरूप से भी न हो तो भी वह क्या रहा ? तो वस्तुत्व की वजह से ही सत्ता कायम है । पदार्थ अपने स्वरूप से है और पर के स्वरूप से नहीं है । जैसे चौकी अपने काठ आदिक के रूप से है और पुस्तक के कागज आदिक रूप से नहीं है, यह बात है तब चौकी है। अगर चौकी अपने काठ रूप से भी न हो अथवा पुस्तक के कागज रूप से हो जाय तो चौकी ही क्या रही ? तो पदार्थ में वस्तुत्व गुण होना एक साधारण बात है । देखिये बात तो चल रही है साधारण गुणों की, मगर शिक्षा लेने के लिए प्रत्येक बात समर्थ है । इस वस्तुत्व गुण ने यह आँख खोला कि प्रत्येक पदार्थ अपने ही स्वरूप से है, पर के स्वरूप से नहीं । तो यह मैं अपने स्वरूप से हूँ पर के स्वरूप से नहीं । अब स्वरूप में होती हैं चार बातें – द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव । तो अर्थ हुआ कि मैं अपने द्रव्य से हूँ, घर, वैभव कुटुम्ब, आदिक के द्रव्य से नहीं हूँ । मैं अपने निजी प्रदेश में हूँ घर वैभव कुटुम्ब के प्रदेश से नहीं हूँ । मैं अपनी परिणति से हूँ, अपने ही काल से हूँ । मुझ में जो कुछ बात बनती है वह अपने ही परिणमन से बनती है, पर की परिणति से नहीं बनती । मैं अपने ही भावों से हूँ, अपने ही स्वरूप से हूँ । कुटुम्ब, वैभव, मित्र आदिक किसी के भाव से नहीं हूँ । तब आप बतलाओ कि सम्बन्ध की गुंजाइश कहाँ रही ? मेरा मेरे स्वरूप से बाहर कहीं अन्यत्र सम्बन्ध की बात कहां हुई ? शिक्षा लेने के लिए जैन दर्शन का एक – एक अक्षर उपयोगी है, किन्तु अपनी बुद्धि तो पहिले व्यवस्थित हो, विषय-वासनाओं से रंगी हुई न हो, बाहरी मौज ममता के अंधकार में डूबा न हो, उसके लिए शिक्षा प्रत्येक अक्षर से मिल सकती है।

**द्रव्यत्व व अगुरुलघुत्व नामक साधारण गुण से भी वस्तु की विविक्ता का परिचय –** वस्तु में, पदार्थ में वस्तुत्व गुण साधारण है। वस्तुत्व गुण तक सामान्यता निर्णय बना कि पदार्थ हैं, अपने स्वरूप से हैं, पर के स्वरूप से नहीं हैं, लेकिन इसमें इतनी ही तक हठ बनाई जाय कि पदार्थ हैं, अपने स्वरूप से हैं, परस्वरूप से नहीं हैं तो इससे कुछ समझ में नहीं आया । जब तक वस्तु का परिणमन, वस्तु की क्रिया न व्यक्त हो तब तक वस्तु समझी ही नहीं जा सकती । और दूसरी बात यह है कि वस्तु में साधारण गुण भी यह है कि वह निरन्तर परिणमता रहे । कोई चीज है तो सही, किन्तु न उसका आकार, न गुण, न व्यक्त रूप, कोई अवस्था नहीं, फिर है वह क्या चीज ? तो वस्तु में एक द्रव्यत्व गुण है, जिस गुण के कारण वस्तु निरन्तर परिणमती रहती है । यदि कुछ लोगों की कल्पना के अनुसार ईश्वर इस जगत की चीजों को बनाता होता, अनन्तानन्त वस्तुएँ कभी कोई बनाये बिना भी रह जाय, उसकी सुध न रहे, कई बार भूल हो जाय, कुछ भी हो, कहीं पडा रहे, गुप्त रहे तो क्या ऐसा हो सकता है कि किसी की सुध ना रहे तो वह परिणममें बिना रह ले ? व्यवस्था न बनेगी । लेकिन जहाँ वस्तु में द्रव्यत्व गुण वस्तु की ही शक्ति मानी गई है तो चाहे आप 10 वर्ष उस वस्तु को न जाने, किसी की खबर किसी को भी न हो, तो वस्तु है ना, तो अपने "है" के कारण, द्रव्यत्व के कारण निरन्तर परिणमता रहेगा । वहाँ एक समय को भी परिणमन छूटता नहीं है । इतनी बात जानने पर भी कोई उद्वण्डता करना चाहे तो कर सकता है। लो इतना तो हमें अधिकार मिल ही गया कि मैं

हूँ, अपने स्वरूप से हूँ परस्वरूप से नहीं हूँ और निरन्तर परिणमता रहता हूँ। तो मैं तो परिणमता रहूँगा, चाहे किसी दूसरे रूप परिणमूँ, दोनों के रूप से परिणमूँ कुछ भी बन जाऊँ, कुछ भी अपने को बना डालूँ। मुझे तो द्रव्यत्व शक्ति ने अधिकार दिया है, लेकिन इस उद्वण्डता में "है" पना न रहेगा। मैं अगर किसी अन्य रूप परिणम जाऊँ, मैं न रहा, अन्य भी न रहा तो इस व्यवस्था के लिये शक्ति है अगुरुलघुत्व, जिस गुण के कारण वस्तु में सहज ही यह व्यवस्था बनी हुई है कि वह अपने स्वरूप से ही परिणमेगा, बनेगा, दूसरे के स्वरूप से न बनेगा।

**प्रदेशवत्त्व व प्रमेयत्व नामक साधारण गुण से वस्तु की विविक्तता का परिचय-** वस्तु में उपरिक्थित 4 साधारण गुण होने पर भी अगर वस्तु के बारे में कुछ प्रदेश का, आकार फैलाव का, विस्तार का कुछ भी भान न हो तो ये सब बातें समझी कहाँ जायेंगी ? और इनका आधार कुछ भी नहीं है। अतः प्रदेशत्व नाम का साधारण गुण भी अवश्य है। जो भी पदार्थ है वह नियम से प्रदेशवान है, कुछ न कुछ फैला तो है, उसका कुछ ना कुछ घेरा तो है। इतना सब कुछ ज्ञान होने पर भी अन्तिम स्पष्टीकरण देखिये – पदार्थ में एक प्रमेयत्व नाम का भी गुण है कि जो नियम से प्रमेय रहेगा, ज्ञेय रहेगा, जानकारी में रहेगा। जानकारी से छूट नहीं सकता। भले ही छद्मस्थ लोग नहीं जान पा रहे, सर्व सत् को उनके ज्ञानावरण का ऐसा ही उदय है लेकिन जब ज्ञान बिल्कुल विशुद्ध हो जाता है, ज्ञानावरण का लगाव नहीं रहता क्षय हो जाने के समय स्वयं ही अनन्त सत् इस केवलज्ञान में ज्ञेय हो जाते हैं। तो इन अनन्त पदार्थों का इस केवलज्ञान में ज्ञेय बन जाना इन ज्ञेयों का इस ज्ञान के साथ क्या सम्बन्ध है? तो कुछ भी सम्बन्ध नजर नहीं आ रहा सत् पदार्थ में और यह ज्ञानस्वरूप अपने में अपने स्वभाव रूप बन रहा है। तो उस ज्ञान में जो ये समस्त सत् विषय हुए, यह जान गए, ये निमित्त कहलाते हैं विषयभूत। यहाँ भी यह बात समझनी होगी कि विषयभूत निमित्त का भी द्रव्य, गुण, पर्याय कुछ भी इस ज्ञान में ही नहीं पहुँचा। तो वस्तु की स्वतंत्रता का ऐसा स्वातन्त्र्य विषयक बोध मोहविपदा को हटा देता है। इसलिए इस स्वतंत्रता का परिज्ञान करना बहुत आवश्यक है।

### प्रश्न—283-284

**निमित्त की संयोगरूपता तथा वियोगरूपता** – कुछ निमित्त संयोग रूप होते हैं, किन्हीं पदार्थों के संयोग के निमित्त को पाकर, उनमें से किन्हीं पदार्थों के संयोग के निमित्त को पाकर, उनमें से किसी उपादान का कोई विशिष्ट परिणमन हो तो वहाँ उसे संयोग रूप निमित्त कहते हैं। जैसे दो चीजों के संयोग होने से किसी एक पर प्रभाव हो अथवा दोनों पर प्रभाव हो तो दोनों के करना वह संयोग निमित्त होता है। जैसे – आग पर पानी डालते हैं तो आग खतम हो जाती है और पानी की भी दशा बिगड़ जाती है। तो दोनों की दशाएँ बिगड़ने में वहाँ आग और जल का संयोग निमित्त हुआ। किसी पदार्थ का स्वाद बदल जाता है संयोग में तो उन पदार्थों के स्वाद बदलने में निमित्त होता है संयोग। तो यों संयोग रूप निमित्त हुए, लेकिन वहाँ भी यह

दृष्टि देना है कि दो पदार्थों के मेल से दोनों में कुछ फर्क आया है लेकिन वह परिणमन प्रत्येक पदार्थ का उस ही पदार्थ से उत्पन्न हुआ है। किसी एक के परिणमन को कोई दूसरा पदार्थ नहीं परिणमा सकता। कुछ कार्यों में वियोग रूप निमित्त होता है। किन्हीं पदार्थों के वियोग का निमित्त पाकर उनमें से किसी भी पदार्थ का या दोनों का जो कुछ विशिष्ट परिणमन होता है तो उस समय उसे वियोग रूप निमित्त कहते हैं। जैसे दो बालक हाथ पकड़कर एक दूसरे को खींच रहे हैं, उसी समय में, हाथ छूट जाय, दोनों बालक गिर जाते हैं, तो उस एक साथ परिणमन होने में वियोग कारण हुआ। तो यों कुछ पदार्थ वियोग रूप से निमित्त होते हैं। वियोगरूप से निमित्त होने पर भी दिखता वहाँ भी यह है कि उस प्रत्येक पदार्थ में जो परिणमन हुआ है वह उसके उत्पादव्यय स्वभाव से हुआ है। किसी के परिणमन को कोई दूसरा नहीं कर सकता। यों संयोग वियोग रूप निमित्त यंत्र मशीन आदिक अनेक कार्यों में स्पष्ट विदित हो जाता है। बड़े बड़े यंत्र संचालन के कार्य इसी संयोग और वियोग रूप निमित्त से होते रहते हैं। तो यों अनेक निमित्त होते हैं लेकिन उनमें जानना यही है कि निमित्त होने का अर्थ इतना ही है कि वह पदार्थ सन्निधान में था। इसके आगे निमित्त का उपादान में कुछ गया हो सो बात नहीं है।

### प्रश्न-285

**वस्तुस्वातन्त्र्य का दर्शन** – यह सब निमित्त का वर्णन सुनकर ऐसी मिथ्या श्रद्धा न करना कि निमित्त उपादान पर ऐसा असर डालता है। उपादान पर निमित्त अपना असर नहीं डालता। किन्तु वहाँ उपादान में परिणमन की ही ऐसी कला है कि वह इस प्रकार के अनुकूल निमित्त को पाकर अपने में स्वयं प्रकट कर लेता है। निमित्तभूत पदार्थ का द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव कभी भी उपादान में नहीं पहुंचता। यह चर्चा चल रही है निमित्त की। निमित्त और उपादान के बीच यह बात है कि दोनों स्वतंत्र हैं। किसी का किसी पर असर नहीं है, पर योग इसी प्रकार है। तो फिर जो आश्रयभूत पदार्थ हैं उनका तो सम्बंध ही क्या बतायें? लोग घर वैभव, स्वजन, मित्रजन, किसी को भी उपयोग में लेकर अपने आप में रागद्वेष, क्षोभ, आकुलता का परिणमन कर लेते हैं तो वहाँ उस राग शोकरूप परिणमन में वह पदार्थ कुछ करने वाला नहीं हुआ, उसका कोई असर नहीं आया, किन्तु इस जीव ने स्वयं ही कल्पनायें करके ऐसा ही परिणमन बना लिया है। जैसे एक घटना ऐसी लें कि एक बालक दूसरे बालक को चिढ़ा रहा है, 20 हाथ दूर खड़ा हुआ अंगुली मटका रहा, जीभ चला रहा, मुँह बना रहा तो वह दूसरा लड़का चिढ़ रहा है। तो वहाँ यह बतलाओ कि उस चिढ़ाने वाले लड़के ने चिढ़ने वाले लड़के पर क्या किया? उसके मुख, जीभ, अंगुली आदिक उस चिढ़ने वाले के पास तो नहीं पहुंचे। वह तो अपने आप में ही अपना परिणमन कर रहा है। उस दूसरे पर कुछ नहीं कर रहा है और चिढ़ने वाला लड़का अपने आप में उसको निरखकर जानकर अपना अर्थ लगा रहा है कि यह मुझे चिढ़ाता है। मैं बेकसूर हूँ, मुझसे क्यों द्वेष करता है ...ऐसी बात उसके चित्त में भर जाने से वह चिढ़ रहा है। तो यहाँ वास्तविकता देखो कि उस चिढ़ाने वाले लड़के ने उस चिढ़ने वाले में कुछ नहीं किया। वह अपना काम कर रहा और चिढ़ने वाले ने अपने आप अपना ही काम किया, पर जिसका आश्रय



पाकर वहाँ विपरिणमन हुआ उस ओर से व्यवहार में यों कहा जाना कि इसने इसको दुःखी किया, सुखी किया ।

वस्तुस्वरूप के परिचय से परकर्तृत्व के भ्रम का विनाश – वस्तुस्वरूप पर दृष्टि देने से यह अंधेरा मिट जाता है कि मैं किसी को सुखी करता हूँ, दुःखी करता हूँ, जिन्दा करता हूँ, मारता हूँ आदिक, जो भ्रम बना रखा है, यह भ्रम वस्तु जानने पर नहीं रहता । परन्तु सुखी होता है कोई जीव तो साता वेदनीय के उदय में सुखी होता है, उस समय नोकर्म कोई पड़ा, पर उसका निमित्त कारण तो साता वेदनीय का उदय है । सो वह उदय भी जीव के प्रदेशों में गया नहीं, वह अपने में ही रहा, पर उस समय ऐसा योग है कि राग प्रकृति का उदय आये तो जीव में राग परिणमन हो, साता वेदनीय का उदय आये तो जीव में सुख परिणमन हो । फिर जहाँ निमित्त का भी प्रवेश नहीं वहाँ अत्यन्त भिन्न रहने वाले मुझ का दूसरे जीव में क्या प्रवेश होगा ? मैं किसी का कुछ नहीं करता । मैं अपनी कषाय से अपने में अपनी कल्पनायें बनाकर क्षोभ करता रहता हूँ । और मेरी परिणति का निमित्त पाकर जानकर दूसरा अपना अर्थ लगाकर दुःखी होता है । असातावेदनीय निमित्त कारण है दुःखी होने में, सो वह असाता वेदनीय कर्म भी उस जीव में जाता नहीं, फिर आश्रयभूत की तो कथा ही क्या ? मैं किसी को दुःखी नहीं करता, मैं किसी को जीवित भी नहीं कर सकता । वस्तुतः आयु कर्म का उदय होने पर जीव जीवित रहता है, एक भव में शरीर लिए हुए रहता है, तो अन्तरंग निमित्तकारण तो कर्मोदय है । मैं कभी किसी को मारता भी नहीं । कभी कोई जीव किसी जीव का हनन भी करे तो लोकव्यवहार में कहा तो यों जाता है, पर वस्तुतः उस कषाय करने वाले ने अपने में खोटे परिणाम किया, कषाय किया, योग किया, इसके आगे कुछ नहीं किया । और वहाँ आयुकर्म के क्षय का अवसर था तो उस अवसर में इसके प्राणों का वियोग हुआ। तो प्राणों के वियोग का निमित्त कारण आयु का क्षय है और उस काल में कोई भी निमित्त बने । तो आयु का क्षय आयुकर्म में हुआ, पर कोई जीव किसी जीव को उपादानतया मारता नहीं है। वह तो अपने भाव बिगड़ता है। यों जगत के पदार्थों में जब जो कुछ भी परिणमन हो रहा है वह परिणमन उसमें उसके कारण से हो रहा है। परपदार्थ तो निमित्तमात्र होते हैं । यह जब वस्तुस्वरूप समझ में आता है तो मोह श्रृंखला टूट जाती है। मैं मैं हूँ, मेरा सब कुछ भविष्य मेरे भाव पर निर्भर है । मैं यदि अज्ञान अंधेरे में हूँ तो उस संसार में रुलता ही रहूँगा । यदि मैं शुद्ध ज्ञानप्रकाश में आया हूँ और अपने शुद्ध चैतन्य स्वभाव को अपना रहा हूँ, इसी में अपने उपयोग को लगा रहा हूँ, स्वभाव और उपयोग जहाँ एक रस हो रहे हैं वहाँ संसार के संकट अपने आप टल जाते हैं । कर्मबन्धन टूट जाता है ।

### प्रश्न—286

वस्तुस्वातन्त्र्य के उपयोग से जीवन सफल करने की प्रेरणा – भैया ! बड़ी दुर्लभता से आज यह नररत्न पाया है । भला संसार के अन्य जीवों पर दृष्टि करके देखिये – कितनी तरह की कुयोनियाँ है । आज हम मनुष्य हुए, मन अच्छा मिला, जैनशासन का शरण मिला – तत्त्व ज्ञान की योग्यता मिली और निमित्त उपदेश,

सत्संग भी मिलता रहता है, ऐसे अवसर में हमारा कर्तव्य है कि मोह को मूल से उखाड़कर और स्पष्ट यह जानकर कि मेरा मात्र मैं हूँ, मेरा अन्य कहीं कुछ नहीं है। एक अपने आपके स्वरूप की ओर लगने का उत्साह बनायें और संसार के जन्ममरण टालने का उपाय बनाकर अपने जीवन को सफल करें। यही एक महान फल होगा इस जीवन में महान पुरुषार्थ का। इसके सिवाय बाकी जो कुछ भी किया जाता है परपदार्थों की दृष्टि करके, वह सब अंधकार है, उसमें इस जीव को शरण नहीं है, बरबादी है। तो यहाँ यह देखना है कि प्रत्येक पदार्थ व्ययशील है। स्वभाव पड़ा है प्रत्येक सत् में कि वह सत् है तो निरन्तर परिणमता ही रहेगा, और अपनी ही शक्ति स्वभाव से परिणम रहा है। उस समय जो अनुकूल निमित्त है वह निमित्त है और इस दृष्टि में वे सब उदासीन निमित्त हैं। हाँ जब निमित्त की क्रिया पर दृष्टि देते हैं, कोई किसी क्रियापरिणत होकर कारण बन पा रहा है, किसी व्यापार में संलग्न होकर कारण बन पा रहा है तो उसकी ऐसी क्रिया को देखकर कहा जाता है कि यह प्रेरक निमित्त है, यह कारक निमित्त है। वस्तुतः तो उस समय भी वैसे निमित्तको पाकर उपादान ने अपने आपमें अपना असर प्रकट किया है। उपादान किस निमित्त को पाकर अपना प्रभाव बनाता है, उस निमित्त की विशिष्टता समझाने के निमित्त को प्रेरक कारक आदिक शब्दों से कहा जाता है। वस्तुओं का परस्पर में क्या सम्बंध है, कैसी स्वतंत्रता है, इसको निरखने पर यह स्पष्ट निर्णय है कि प्रत्येक पदार्थ अपनी शक्ति से, अपने उत्पाद व्यय स्वभाव से अपने में अपना परिणमन करता रहता है।

**व्यवहार प्रयोग में वस्तु स्वातंत्र्य के उपयोग के अभ्यास का अनुरोध**—हमें अपने व्यवहार में रोज की घटनाओं में यह ज्ञान रखना चाहिए कि कभी क्रोध न उत्पन्न हो सके। किसी जीव की प्रतिकूल परिणति है तो समझे कि इसकी परिणति इसके साथ है, इसका कषाय भाव इसमें है, इससे मेरा कोई सम्बंध नहीं। मैं अपने आपमें अपने स्वभाव से ही परिणमता हूँ। मैं बुरा परिणमूँ तो मेरा बुरा होगा, मैं भला परिणमूँ तो मेरा भला होगा। इस जगत पर मान किस बात पर करें? रखा क्या है यहाँ अपना? समस्त परतत्त्व हैं। मैं तो अमूर्त चैतन्य मात्र कोई गुप्त प्रकाशमय पदार्थ हूँ। यहाँ मान का क्या अवकाश? कौनसी चीज यहाँ ग्रहण करने योग्य है जिसके पीछे मायाचार अथवा लोभ किया जाये। फिर तत्त्वज्ञान उत्पन्न करके इन कषायों से हम दूर हों और अपने स्वभाव की ओर लगे, इसमें ही हमारा कल्याण है। इसके अतिरिक्त अन्य विधि में हमारी भलाई नहीं है।

**निमित्त को पाकर उपादान में अपना प्रभाव व्यक्त कर लेने की कला**—निमित्त और उपादान के इस प्रसंग में यहाँ तक यह निर्णय हुआ कि उपादान किसी पदार्थ को निमित्त पाकर विकार रूप परिणमता है। वहाँ परिणमने की योग्यता तो स्वयं उपादान में है, किन्तु इस रूप विभाव रूप परिणमने की कला उपादान में निमित्त को पाकर प्राप्त की है। अब निमित्त की ओरसे देखा तो ऐसा जंचेगा कि यह ही क्यों निमित्त हुआ, इस कार्य के लिए अन्य कोई पदार्थ क्यों नहीं निमित्त होता? तो कल्पना में यह बात आती है कि इस पदार्थ में निमित्त होने की शक्ति है, इस कारण यह पदार्थ निमित्त हुआ। जैसे घड़े के बनने में दंड, चक्र, कुम्हार, ये

सब निमित्त कहलाते हैं। उस समय खड़े तो कुछ बालक भी हैं, गधा भी खड़ा है, कुछ आने जाने वाले मुसाफिर भी खड़े हो जाते हैं। ये सब क्या घड़े के निमित्त कहलायेंगे। न कहलायेंगे। तो अन्य पदार्थ निमित्त नहीं है और दंड, चक्र आदिक ही उनके निमित्त हो पाते हैं। यह अन्तर कैसे पड़ा? तो एक उत्तर यह आ जाता है कि दंड चक्र आदिक पदार्थों में निमित्त होने की शक्ति है, अन्य पदार्थ में नहीं है। कुछ यह निर्णय हुआ कि निमित्तत्व शक्ति है, इस विषय में आगे बतावेंगे, पर यहाँ इतना मानकर आगे चर्चा में बढ़ना कि किन्हीं अनेक पदार्थों में निमित्त होने की शक्ति है, अन्य पदार्थों में नहीं है।

### प्रश्न-287

**निमित्त में उपादान को बलात्कार न परिणमाने की शक्ति न मानने के कारण की जिज्ञासा**—अब एक जिज्ञासा इस प्रसंग में यह बनती है कि जब निमित्त में निमित्त होने की शक्ति है तो वह निमित्त जबरदस्ती ही बलात्कार क्यों नहीं कार्य कर देता? जब दंड चक्र आदिक में घड़े में निमित्त होने की शक्ति है तो ये दंड, चक्र आदिक घड़े को बना क्यों नहीं डालते? कई जगह तो देखा जाता है ऐसा कि जिसमें निमित्तत्व शक्ति है वह पदार्थ जबरदस्ती कार्य कर देता है। जैसे अग्नि में निमित्तत्व शक्ति है कि जल को गर्म कर दे तो अग्नि जब सामने होगी तो वह जल को गर्म कर ही देगी। या चुम्बक में लोहे को खींचने की शक्ति है तो चुम्बक में आकर्षण निमित्तपने की शक्ति है तो देखा यह जाता है कि चुम्बक लोहे को जबरदस्ती खींच लेता है। तो जैसे कुछ पदार्थों में यह बात विदित होती है कि निमित्त उपादान में कार्य जबरदस्ती कर देता है, यों ही सभी निमित्तों में क्यों नहीं यह कला है कि वह उपादान में कार्य जबरदस्ती कर दे, ऐसी एक जिज्ञासा बनती है।

**निमित्त में उपादान को बलात् परिणमाने की शक्ति न होने का समाधान**—अब उक्त जिज्ञासा के समाधान में प्रथम तो यह बात समझना है कि अग्नि ही जल को जबरदस्ती गर्म नहीं करती, चुम्बक भी लोहे को बलात्कार नहीं खींचता, इस सम्बंध में और स्पष्टीकरण करेंगे। जब ऐसे पदार्थों में जिनमें जबरदस्ती सी नजर आती है वे भी उपादान के कार्य का बलात्कार नहीं करते। तो अन्य निमित्तों के सम्बंध में फिर पूछना ही क्या है? अग्नि पानी को गर्म नहीं करती। किन्तु अग्नि योग्य सन्निधान में हो तो उसका निमित्त पाकर पानी स्वयं शीत पर्याय को छोड़कर उष्ण पर्याय में आ जाता है। वस्तु कौन कितनी है? यह बात दृष्टि में रखते हुए यह समाधान सुनना होगा। पानी स्वयं ही अग्नि का सन्निधान पाकर शीत पर्याय को छोड़कर उष्ण पर्याय में आया है। अग्नि ने पानी में उष्ण पर्याय उत्पन्न नहीं की, इसी प्रकार चुम्बक लोहे को खींचता नहीं है। चुम्बक में लोहे को खींचने की शक्ति है यह बात तब कही जाती है कि जब लोहा चुम्बक का निमित्त पाकर स्वयं खींच जाया करता है। तो लोहे में चुम्बक की ओर खींच जाना निरखकर कहा जाता है कि चुम्बक में लोहे को खींचने की शक्ति है। इस सम्बंध में दो बातों को ध्यान में लायें। चुम्बक में तो है आकर्षण पाने की शक्ति, जैसी कि जिज्ञासा में बात आयी थी और लोहे में है आकर्ष्यशक्ति याने खींच जाये इस प्रकार की शक्ति। अब इन दोनों का मुकाबले में विचार किया जाये तो यह बात अधिक स्पष्ट होगी कि लोहे में खींच जाने की

शक्ति है। क्योंकि क्रिया लोहे में हुई। और चुम्बक में खींचने की शक्ति है यह बात नहीं विदित हुई। तो यह औपचारिक बात है और लोहे में आकृष्ट हो जाने की शक्ति की बात स्पष्ट बात है। इस प्रसंग को इन शब्दों में कहा जायेगा कि लोहा चुम्बक का निमित्त पाकर खींच जाता है। इसी बात को थोड़े शब्दों में संकेत भाषा में यह बताया गया है कि चुम्बक लोहे को खींचता है। सांकेतिक भाषा और स्पष्ट भाषा—जैसे इन दो में अन्तर है। सांकेतिक भाषा का जो अर्थ है वही संकेत न बने ऐसी भी स्थिति होती है, पर स्पष्ट भाषा का वही अर्थ है और वही कहा गया है। तो चुम्बक लोहे को जबरदस्ती खींचता नहीं है, किन्तु चुम्बक का योग्य सन्निधान पाकर लोहा अपनी क्रियावती शक्ति के परिणामन में चुम्बक की ओर खींचने लगता है। देखो सभी द्रव्य किन-किन क्रियाओं में परिणत हुआ करते हैं। कोई किसी की परिणति नहीं कर सकता। निमित्त नैमित्तिक सम्बंध है, पर वहाँ पर भी किसी द्रव्य ने किसी में क्रिया नहीं की। लोहे की क्रिया लोहे में हुई। निमित्त चुम्बक का सन्निधान है। चुम्बक ने लोहे की ओर लोहे ने चुम्बक की क्रिया नहीं की, किन्तु ऐसा ही योग है कि लोहे के खींचकर आगे चले जाने में चुम्बक जैसा पदार्थ निमित्त होता है।

बलात्कार जैसा दिखने में आने वाली घटना में भी निमित्त की उपादान में अकिंचित्करता-जहाँ कहीं बहुत अधिक बलात्कार की बात भी दिख रही हो वहाँ रंच भी बलात्कार नहीं है। जैसे किसी मल्ल ने छोटे मल्ल का हाथ पकड़कर फेंक दिया तो देखने में तो यह बात आयेगी कि देखो इस बड़े मल्ल ने छोटे मल्ल को खींचकर फेंक दिया। इस स्थिति में भी बड़े मल्ल ने छोटे मल्ल में कोई क्रिया नहीं की। जो वस्तु जितनी है उतनी ही दृष्टि में रखकर समझना है। हुआ क्या उस प्रसंग में कि बड़े मल्ल की आत्मा ने अपने में उस प्रकार की कषाय की, इच्छा की। और इस तरह का परिस्पंद हुआ उसका निमित्त पाकर उसके शरीर में वायु चली, उसका निमित्त पाकर शरीर के उस ढंग से अंग चले। उस ढंग से चलते हुए अंग के बीच वह छोटा मल्ल था तो उन चलते हुए बड़े मल्ल के शरीर के अंगों का निमित्त पाकर छोटे मल्ल का शरीर स्वयं अपनी उस क्रियावती शक्ति के कारण खिंचा फीका दूर गया। एक पदार्थ ने किसी दूसरे पदार्थ की क्रिया नहीं की। यह वस्तु स्वरूप सर्वत्र अमिट है। कोई भी निमित्त उपादान में बलात्कार नहीं करता, न अपना गुण देता है, न कोई अपना परिणामन देता, किन्तु योग्य उपादान निमित्त के सन्निधान में एक अपनी विशेषता प्रकट कर लेते हैं। यह सब रहस्य केवल इस सूत्र में पूरा समाया है कि 'निमित्तं प्राप्य उपादानं स्वप्रभाववत्' निमित्त को पाकर उपादान अपने प्रभाव वाला हो जाता है। यह तथ्य व्यवहार की अनेक घटनाओं में घटित कीजिए।

अपनी घटनाओं में वस्तु स्वातंत्र्य का उपयोग करने का लाभ-वस्तु स्वातंत्र्य के तथ्य का फायदा उठाने के लिए अपने पर बीतने वाली घटनाओं में इसको घटित कीजिए। मोह घटेगा। मुझमें कोई यदि प्रेम जगता है तो उसकी ही मलिनता की योग्यता से उस प्रकार के कर्मोदय का निमित्त पाकर किसी अन्य वस्तु को आश्रयभूत बनाकर मेरा प्रेम परिणामन मेरे में ही उत्पन्न होता है और वह परिणामन उत्पन्न होकर मेरे में ही समाप्त हो जाता है। यों ही दूसरे लोग यदि ऐसा देख रहे हैं कि यह मुझ पर बड़ा अनुराग रखता है तो वहाँ भी यही स्थिति है कि वे घर के स्वजन आदिक लोग अपनी योग्यता से, अपनी कषाय से, अपनी इच्छा से

अपने उस कर्मोदय का निमित्त पाकर राग परिणमन कर रहे हैं। और उस राग परिणमन में इसका आश्रयभूत में बन गया हूँ। मैं नहीं बन गया, किन्तु उस प्रकार के उनके राग परिणमन में ये आश्रयभूत हुए हैं। सो यहाँ उपचार से कहते हैं, यों कि हमारा आपमें बहुत अनुराग है। उनका परिणमन उन ही में है और उन ही में समाप्त होता है। उनसे बाहर में उनके परिणमन की गति नहीं है, तब कोई पदार्थ किसी अन्य पदार्थ से कुछ भी सम्बंध नहीं रखता। वस्तु स्वरूप को देखो—सबका अपना-अपना स्वरूप किला अत्यन्त मजबूत है जो त्रिकाल भी किसी के द्वारा ढाया नहीं जा सकता। कितनी भी परिस्थितियाँ हुई अनादिकाल से इस जीव की, निगोद जैसे भव में गया, जहाँ ज्ञान कुछ है भी, यह समझ में नहीं आया, इतना जड़ बन गया। एक श्वास में 18 बार जन्म मरण होना। भला सोचिये कि एक सेकेण्ड में करीब 23 बार जन्म ले और मरण करे यह कोई व्यवहार में लगती सी बात है क्या, पर होता है ऐसा। तो वह स्थिति एक जड़ जैसी स्थिति बन गई, किन्तु वहाँ भी चेतन जड़ नहीं हो सका और आखिरकार आज हम आप इस मनुष्य भव के रूप में इतने बुद्धिशाली इस समय नजर आ रहे हैं। वही तो चेतन हैं जो कभी निगोद अवस्था में थे, लेकिन कितने ही निमित्त सन्निधान हों और नैमित्तिक परिणमन हो जायें, फिर भी जो पदार्थ जिस जाति का है, जिस असाधारण भाव को लिए हुए है उसका परित्याग कभी नहीं होता। तब यह बात आयी कि एक द्रव्य का दूसरे द्रव्य के साथ त्रिकाल भी कोई सम्बंध अथवा अभेद नहीं है।

### प्रश्न-288

**निमित्त की उपादान से बहिःस्थिति**—व्यवहार में यह बात देख रहे हैं कि आग ने पानी को जबरदस्ती गर्म कर दिया। भले ही चूल्हे पर बटलोही रख दी और वहाँ यह सोचे कि अभी गर्म न हो तो किसी के सोचने से वहाँ रुक जायेगा क्या? आग तो जल को गर्म कर ही देगी। और यह बात यों भी समझ में आ रही है कि आग के निमित्त बिना या आग जैसे संताप वाले पदार्थ के निमित्त बिना जल गर्म नहीं होता, और चुम्बक बिना लोहे का खींचना नहीं होता, इतने पर भी यह बात अमिट है कि निमित्त उपादान के स्वरूप से बाहर ही रहता, अग्नि जल से दूर ही दूर बनी हुई है। अग्नि जरा जल के निकट जाकर गर्म करने की चेष्टा तो करे, अग्नि बुझ जायेगी। अग्नि जल में आकर जल को गर्म करती है, ऐसा क्या कहीं होता है? यदि आग जल में आये तो आग ही न रहेगी। तो देखो जल के स्वरूप से बाहर ही तो रही आग, चुम्बक भी लोहे से बाहर ही तो है, लोहा भी चुम्बक से बाहर ही तो है, खींच जाने पर भी, मिल जाने पर भी एक प्रदेश मात्र भी लोहा चुम्बक में नहीं गया, चुम्बक लोहा में नहीं गया। तो निमित्त सब ही उपादानों से बाहर ही बाहर रहता है। हवा चली और पत्ते उड़े तो उस प्रसंग में भी हवा पत्तों में रंच भी नहीं गई और पत्ते हवा में रंच भी नहीं हैं। साधारणतया ऐसी बातों में लोग शीघ्र विश्वास नहीं कर सकते। जब हवा की इतनी तीव्र प्रेरणा है कि पत्ते नीचे से उड़े-उड़े फिर रहे तो हवा ने पत्तों को उड़ाया, यह कैसे गलत कहा जा सकता है? हवा पत्तों में पहुंची यह बात गलत कैसे है? भले ही ऐसा नजर आये, मगर पत्ते कितने हैं, क्या स्वरूप है, कितने अणुओं का स्कंध है, कितने में वह अपना निर्माण बनाये हुए है, और हवा का क्या स्वरूप है? इन दोनों पर दृष्टि देने से

ऐसे कठिन निमित्त नैमित्तिक सम्बंध के बीच भी पत्तों में पत्ते ही हैं, हवा में हवा ही है। उड़ाता भी जाये तो हवा हवा में उड़ रही है, पत्ता पत्ता में उड़ रहा है। ऐसा वस्तु का स्वातंत्र्य है। जिस स्वातंत्र्य को दृष्टि में लेने से मोह ममत्व दूर हो जाता है।

**मोही की अज्ञान चेष्टा—**मोटे रूप से भी देखो तो यहाँ लौकिक जनों से, स्वजन से, संतान से, भाई बंधु से प्रीति कर रहे हैं, उनके वे कुछ हैं क्या? मोह अंधेरा ऐसा है किलग रहा है कि ये ही तो मेरे सर्वस्व हैं, यह ही तो मेरी सारी दुनिया है, ये मेरे भाई नहीं, ये मेरे बच्चे नहीं तो फिर कौन हो जायेंगे? और दूसरे कोई बात नहीं मानते, दूसरों पर हमारा अधिकार नहीं जमता तो दूसरे मेरे कैसे हो जायेंगे? ये ही हैं मेरे सब कुछ। तो भाई अनन्तानन्त जीवों में से अटपट कुछ जीव घर में आ गए। एक कल्पना यह करो कि ये न आये होते, इनके बजाय और कोई जीव आये होते तो क्या आपको यह अन्तर होता कि उनमें मोह न होता या कम होता? दूसरी बात यह है कि घर के लोग जो अधिकार में रहना चाहते और रह रहे हैं वे अपनी कषाय से अपनी इच्छा से, अपने में शान्ति इस तरह आयेगी, सुख यों मिलेगा, इन सबका हिसाब उनमें बना हुआ है। उन सबके कारण वे आपके अधिकार में हैं, आज्ञा में हैं, बात मानते हैं। वस्तुतः वे आपकी आज्ञा नहीं मानते, न आपके अधिकार में हैं, न आपकी बात मानते हैं। प्रत्येक पदार्थ अपने आपके स्वरूप में, परिणामन में, सत्त्व में स्वतंत्र है, किसी का किसी अन्य के साथ रंच सम्बंध नहीं है।

**निर्णय में हित व अहित दोनों के सम्पर्क की संभावना—**कोई निर्णय होता है तो वह निर्णय हित के लिए भी प्रेरणा दे सकता है और पक्ष पुष्ट करने के लिए भी प्रेरणा दे सकता है। उपादान और निमित्त में परस्पर निमित्त नैमित्तिक सम्बंध है, यह निर्णय इस हित के लिए भी प्रेरणा देता है कि आखिर निमित्त नैमित्तिक सम्बंध ही तो कर लो। कर्ता कर्म भाव का सम्बंध तो नहीं। या अभिन्न हो जाने की बात तो न कुछ रहे तो दोनों अपने-अपने स्वरूप में और दूसरे के स्वरूप से बाहर। यह बात भी निमित्त नैमित्तिक सम्बंध की चर्चा में जानी जा सकती है। यह तो है हित के लिए प्रेरणा देने वाला निर्णय और यों भी पक्ष पुष्ट किया जा सकता कि देखो—निमित्त नैमित्तिक भाव कैसा डटकर है कि निमित्त के बिना नैमित्तिक हो तो ले। निमित्त ने ही तो सब कुछ किया। यों पर का सम्बंध, पर का कर्तृत्व वाले पक्ष की बात भी पुष्ट की जा सकती है। जो सज्जन हैं वे प्रत्येक परिस्थितियों में अपनी चतुराई रखते हैं और जो मूढ़ हैं वे भली बुरी घटनाओं में अपनी मूढ़ता ही प्रकट करते हैं, तभी तो कहावत में कहते हैं कि पंडित शत्रु भी भला, पर मूर्ख मित्र भी भला नहीं। जिसको हम मित्र समझ रहे, जिसको समझा कि यह मेरे हित में काम आयेगा उस मूढ़ की मूढ़ता हमारी बरबादी का कारण बनेगी और जिसे हम शत्रु समझ रहे हैं जिससे हम कुछ भय किया करते हैं वह पंडित, तो वह पंडित कभी किसी समय बरबादी के निकट भी आ जाये तो वह भी हमारी रक्षा कर देगा। तो यह सब उपादान की योग्यता से ही तो सम्बंध रखता है।

परिणति में परिणन्ता की कला का दर्शन—निमित्त और उपादान में परस्पर ऐसा निमित्त नैमित्तिक सम्बंध होने पर भी यह बात निर्णय में रखिये कि है सर्वत्र उपादान की कला। कुछ उपादान किसी पदार्थ को सामने पाकर निमित्त पाकर किस प्रकार की परिणति से परिणम जाये, यह बात उपादान में योग्यता में पड़ी हुई है। इतनी बात अवश्य है कि ऐसा कार्य रूप परिणमन होने के लिए इस तरह का पदार्थ निमित्त होता है। तो निमित्त का करना धरना इस सम्बंध में इतना ही है कि वह सामने है, उपस्थित है। जैसे आप कुर्सी पर बैठ गए, तो कुर्सी ने क्या कला की जो आपको बैठाला? वह तो ज्यों की त्यों पड़ी हुई है। आप में यह कला है कि ऐसी बलिष्ठ पुष्ट कुर्सी का आश्रय पाकर आप बैठ जाते हैं। तो जब कला की बात कही जायेगी तो परिणमने वाले में कला नजर आयेगी। निमित्त तो जिस रूप रंग आकार शक्ति वाला है, स्वयं के लिए स्वयं की सत्ता के लिए, बस उसकी कला उसमें उसकी है। और यह कि उपादान कैसे पदार्थ का निमित्त पाकर किस रूप परिणम जाये, यह बात उपादान में है।

कार्य के अन्तरंग और बहिरंग कारणों में परस्पर भिन्नता—किसी भी विभाव कार्य में दो कारण हुआ करते हैं—निमित्त कारण और उपादान कारण। कार्य जिसमें होता है उसे तो कहते हैं उपादान कारण और उस उपादान कारण में कार्य होने के लिए जिन-जिन बाह्य पदार्थों की आवश्यकता हुई थी वे सब निमित्त कारण कहलाते हैं। तो निमित्त कारण का उपादान कारण के साथ कोई सम्बंध है या नहीं? और क्या स्थिति है, क्या तथ्य है? इस बात को समझ लेना आत्म कल्याण के लिए कितना आवश्यक है, यह बात इस प्रसंग से समझ लीजिए कि निमित्त और उपादान में कर्ता कर्म का सम्बंध माना जाता है तो स्वस्वामी सम्बंध भी मान लिया जायेगा, एक दूसरे का कुछ है, यह बात भी उसके निश्चय में आ जायेगी तो मोह का टूटना फिर कैसे बन सकेगा? यदि हम आप अपने से सम्बंधित घर द्वार कुटुम्ब मित्रजन समाज आदिक अनेक कार्यों में सम्बंध मानें।

मैं करने वाला हूँ, इसने मुझे यों किया, मैं इसका मालिक हूँ, यह मेरी चीज है, यह बात जब हृदय में बैठ जायेगी तो मोह टूटने का फिर साधन क्या रहा? और मोह जब तक रहेगा तब तक दुर्गति है, जन्म मरण है। कोई इसका सहाय नहीं है। पूछने वाला भी नहीं है। तो संकटों से मुक्ति पाने के लिए मोह का टूटना आवश्यक है। और मोह के छोड़ने के लिए यह वस्तु स्वतंत्रता का परिज्ञान करना अतिआवश्यक है। भगवान की भक्ति तो अच्छी प्रकार से तैयार हुए हृदय में प्रगति का बीज बो सकेगी। अगर किसी की कुछ तैयारी ही न हो, वस्तु की स्वतंत्रता समझे बिना चित्त में वह तैयारी आ ही नहीं सकती। तो बिना तैयारी वाला पुरुष भगवद् भक्ति को पा कैसे लेगा? जो ज्ञानी हो, उस साधना में तैयार बैठा हो उसके लिए फिर प्रभु भक्ति आदिक बातें प्रगति में सहायक बनेंगी, पर जो अज्ञानी जन हैं, मोहीजन हैं, जिन्हें वस्तु स्वरूप का परिचय ही नहीं है उनके लिए तो उनका भगवान क्या है और उनकी भक्ति भी क्या है? वे सब बातें भी विचित्र होंगी, संसार वाली ही होंगी। तो हम आपको कल्याण के लिए वस्तु की स्वतंत्रता का परिज्ञान कर लेने का बहुत

महत्त्व है, इसी सम्बंध में यह चर्चा चल रही है कि उपादान के कार्य के लिए अनेक निमित्त हुए, इस पर भी निमित्त का कुछ भी उपादान में पहुंचता नहीं है।

**वस्तु स्वरूप में विशिष्टाद्वैत का दर्शन**—देखिये कैसी विचित्र बात है कि यह उपादान अनुकूल निमित्त के सन्निधान में स्वयं अपने में प्रभावित हो जाता है। बात सर्वत्र यही है। यदि कोई देहाती पुरुष किसी कार्य वश न्यायालय में पहुंचता है। जाना ही पड़ता है, प्रथम ही बार गया तो एक देहाती अथवा कमआने वाला बड़े भय और शंका सहित उस कचहरी में प्रवेश किया, वहाँ एक तो अनजानी जगह, दूसरे-अफसर के सामने पहुंचने की बात। सभी बातों से उसका दिल काँपने लगा और काँपता हुआ, घबड़ाता हुआ वह पहुंचा, तो यह बतलाओ कि उसकी घबराहट या जो कुछ भी उसमें बात बन रही है वह क्या जज के असर से बन रही है? जज ने उसमें क्या डाल दिया? जज ने उसमें अपनी किरण फेंका या उसका कोई द्रव्य गुण उस देहाती में पहुंचा। तो पर द्रव्य से कुछ नहीं आया। यह ही स्वयं अपनी योग्यता से अपने आप में अर्थ लगाकर, निमित्त बनाकर स्वयं घबड़ा गया। इसने अपना धैर्य खोया। तो यह प्रभाव, यह असर, ये सब उसकी योग्यता से है। निमित्त जरूर ऐसा है कि ऐसी योग्यता वाले पुरुष में जो घबराहट की बात बनी तो ऐसे साधन का, जज का, बड़ी बात का सन्निधान पाकर हुआ है। तो देखना यहाँ यह है प्रधान रूप से कि प्रत्येक वस्तु परिपूर्ण है और उसका अपने आपमें उत्पाद व्यय ध्रौव्य है, इस कारण एक वस्तु का दूसरी वस्तु के साथ सम्बंध नहीं। विशिष्टाद्वैत का दर्शन करना है। कुछ लोग तो मानते हैं सर्वाद्वैत अर्थात् जगत में जितने भी चराचर पदार्थ हैं सब एक ब्रह्म मात्र हैं, सब एक चीज हैं और सर्वाद्वैतपन तो नहीं है। किन्तु विशिष्टाद्वैतपन अवश्य है। प्रत्येक पदार्थ अपने आपके प्रदेश में जितना है उतना ही है। उसमें दूसरी चीज नहीं है। तो प्रत्येक वस्तु अद्वैत रूप हुई। अनन्तानन्त पदार्थ अद्वैत रूप हैं। किसी भी पदार्थ में किसी दूसरे का सम्बंध नहीं। तो इस विशिष्टाद्वैत के दर्शन में मोह के रहने की गुंजाइश नहीं रहती।

**एक पदार्थ का अन्य पदार्थ में कुछ भी करने की अशक्यता**—भैया! काम भी मात्र अपना यह पड़ा है कि मोह मिटे। दुनिया में ये सब चीजें अनादि से हैं, अनन्त काल तक रहेंगी, कभी किसी परिणति में हैं, कभी किसी स्थिति में हैं, उनका जो कुछ परिणमन है वह उनके उपादान में होता है। यह जीव तो बाह्य पदार्थ में कुछ करने के लिए असमर्थ है, कुछ कर ही नहीं सकता। इसकी तो मन जैसी बुरी दशा हो रही कि जैसे मन किसी भी विषय का भोग करने में समर्थ नहीं है, स्पर्श का भोग करेगी स्पर्शन इन्द्रिय, रस का भोग करेगी रसना इन्द्रिय, गंध का भोग करेगी घ्राणइन्द्रिय, रूप देखने का भोग करेगी चक्षुइन्द्रिय, शब्द का उपभोग कर्णइन्द्रिय करेगी। तो मन के वश का तो कुछ नहीं है। लेकिन इस उपभोग करती हुई इन्द्रिय को देखकर समझकर यह मन व्यर्थ खुश हो रहा है। तो इसी तरह मोही जन करने में कुछ समर्थ नहीं, पर का क्या करेंगे? पर पुण्य के अनुसार माफिक कुछ कार्य बन रहा है, तो यह मोही यहाँ व्यर्थ ही खुश हो रहा है। किसी भी पदार्थ के साथ किसी अन्य का रंच सम्बंध नहीं है। यह इतनी बात समझ में आये तो अभी ही आनन्द मिले। आनन्दमय तो स्वरूप है इस जीव का। इसे आनन्द पाने के लिए कुछ यत्न नहीं करना है। वह



तो स्वरूप ही है। अब यदि कोई अपनी स्वरूप महिमा की ओर न आये, स्वरूप को भूल जाये तो परदृष्टि करेगा, बस क्लेश होने लगता है। क्लेश का उपाय मिटा लीजिए—आनन्द तो अपने आप ही है। उपाय करना है क्लेश मिटाने का। आनन्द पाने का उपाय करने की जरूरत नहीं। क्योंकि वह तो हमारे स्वरूप में ही मौजूद है। तो क्लेश हो रहा है सब मोह जाल का और मोह जाल मिट सकेगा इस वस्तु की स्वतंत्रता के ज्ञान से। उसकी ही चर्चा इस प्रसंग में चल रही है।

एक में अन्य की अकिंचित्करता का एक पौराणिक उदाहरण—सुकौशल ने जवानी में प्रारम्भ में ही घर द्वार सब तज दिया। उस समय लोग मना रहे थे कि अरे तुम्हारी स्त्री के गर्भ है, बच्चा हो जाने दो, बड़ा हो जाने दो, राजतिलक उसका कर देना, फिर विरक्त हो जाना, लेकिन यह सब समझाना वहाँ व्यर्थ हो रहा। वहाँ वस्तु की स्वतंत्रता का इतना स्पष्ट भान है कि वहाँ इस अज्ञान अंधकार की कोई गुंजाइश ही नहीं है। मैं इसका कुछ कर दूंगा, मैं इनको सुखी करता हूँ, दुःखी करता हूँ आदि, ऐसा सोचने में कोई निर्दयता का दोष नहीं है। मोहीजन यों सोचने लगते हैं कि बड़ी निर्दयता की। ऐसी स्त्री को ऐसे संकट में छोड़ दिया, ऐसे घरबार को छोड़ दिया। यह कोई छोड़ने की आयु थी, अरे कुछ अपनी संतान पर दया नहीं आयी।...लेकिन उस विरक्त पुरुष की अन्तः भूमिका को तो देखो—वहाँ स्पष्ट प्रकाश है कि प्रत्येक जीव अपने उत्पाद व्यय स्वभाव से ही उत्पन्न और विलीन होते रहते हैं। नवीन-नवीन अवस्थाएँ उसमें उत्पन्न होती रहती है। और उसमें पुण्य पाप कारण होता है। ऐसी स्पष्ट स्वतंत्रता का भान है वहाँ तो कोई किसी के कुछ परिणामन को कर ही नहीं सकता। सब अकिंचित्कर हैं। ऐसे ज्ञान प्रकाश के बीच निर्दयता की बात कहाँ से आ सकती है? निर्दयता भी राग द्वेष में बनती है और दया भी राग द्वेष के बीच बनती है। दया के लिए राग की प्रधानता है और निर्दयता के लिए रागी जीव के द्वेष की प्रधानता है, पर जहाँ राग द्वेष नहीं, स्पष्ट परिचय है उस जीव के निर्दयता की बात नहीं कही जा सकती।

अपने पर बीतने वाली घटनाओं में वस्तु स्वातंत्र्य के उपयोग के अभ्यास की आवश्यकता—यदि यह अभ्यास बन जाये कि हमारी अपने दिन भर की सैकड़ों घटनाओं में उपादान निमित्त की दृष्टि बनी रहें और समझते रहें कि यह तो इतना ही कार्य कर सका, इतना ही कार्य हुआ। एक का दूसरे में कुछ कार्य नहीं गया ऐसा अभ्यास करते रहें अपने जीवन की रोज-रोज की घटनाओं में तो वहाँ भी आपका ध्यान है, धर्म साधन है। धर्म साधन चाहने वाले पुरुष का सर्वत्र धर्म साधन होता है। कोई पुरुष बच्चे को गोद में लेकर मोही आसक्त होकर खिलाता है तो कोई पुरुष बच्चे को गोद में लिए हुए, उस बच्चे की द्रव्य गुण, पर्यायों को जानते हुए सोच रहा है कि इसका आत्मा बिल्कुल भिन्न है, मैं आत्मा भिन्न हूँ, मैं इसका कुछ करने में समर्थ नहीं। बच्चे को यदि बुखार है, फुँसी है, तकलीफ है, उसमें मैं कुछ भी करने में समर्थ नहीं हूँ। मेरा आराम, मेरा सुख, मेरा दुःख, मेरे पुण्य पाप के अनुसार होता है और जगत में जैसे अनन्त जीव हैं उसी भाँति यह भी अन्य जीव है, ऐसी कोई धारणा बनाये, उस पुत्र को गोद में लिए हुए की हालत में तो उसको रोकने कौन आयेगा? धर्म साधना चाहने वाले पुरुष को सर्व स्थितियों में धर्म साधना का अवसर है, एक लगन की

जरूरत है, एक आत्मदया की आवश्यकता है कि मेरे पर संकट जन्म मरण का है, यह टल जाये तो सदा के लिए मेरा कल्याण हो जाये, ऐसी भावना यदि अपने आपकी दया की बन गई तो वह सभी जगह से धर्म साधना की बात प्राप्त कर लेगा। यह दया भी किसको होगी, जिसको कि वस्तु की स्वतंत्रता का कुछ परिचय हुआ हो। मैं हूँ, अकेला हूँ, अकेला ही जन्म मरण करता हूँ, इसके जन्म मरण के करने में और मिटाने में कोई दूसरा साथी नहीं है, ऐसा भान जब स्वयं के बारे में हो तब तो यह दया उत्पन्न होगी कि मेरे जन्म मरण के संकट टलें। थोड़ी यह दया चाहिए और इसके आधार से फिर वस्तु की स्वतंत्रता का उपयोग चाहिए, फिर इसका हित होने में कोई विलम्ब नहीं है।

**संसार संकटों से छुटकारा की विधि बनने पर छुटकारा की अवश्यंभाविता—देखो** – जो कार्य जिन साधनों से बन जाता है वह बनता ही है। जैसे मिट्टी के गोल-गोल ढक्कन के भीतर बारूद वगैरह भरकर जो फटाके तैयार किए जाते हैं उनमें होता क्या है? जैसे ही उसमें आग लगाई गई वह फूट गया तो वहाँ बात यह है कि जिस निमित्त सन्निधान में जिस योग्यता का पदार्थ का जो हुआ सो हो गया। वह तो होकर ही रहेगा। अगर नहीं फूटता है वह फटाका तो समझिये कि आपको निमित्तजोड़ने में गलती हुई है या उसमें योग्यता में कमी है। योग्यता भी हो और निमित्त सन्निधान भी हो और कार्य न हो, यह कैसे होगा? जो बात जिस विधि से होने वाली है वह उस विधि से होती ही है। तो संसार के संकटों से छुटकारा पाने की विधि यह है कि अपने आपको केवल दृष्टि में रख लेना। मैं केवल शुद्ध चैतन्य प्रकाश मात्र हूँ, केवल चित्प्रकाश हूँ, अकेला हूँ, परिपूर्ण हूँ, अपने में पूरा ही सर्वस्व हूँ, ऐसी दृष्टि कोई बनाये और ऐसा ही उपयोग में रहे तो कर्म उसके झड़ने ही पड़ेंगे, कर्म दूर होंगे ही, मुक्ति उसे प्राप्त होगी ही। फिर क्यों न मिटेंगे संकट ? जिस विधि में जो बात होती है वह उसमें होगी ही। तो अपने आपकी तैयारी अगर इस ढंग की होती है तो उसमें कोई संदेह नहीं रहता कि उसका कल्याण न हो। तब समझिये कि हम उत्कर्ष में आये। अपना उत्थान पायें, सदा के लिए शाश्वत शान्ति पायें, उसका उपाय यह है और कितना सुगम है? अपने आपको समझाने की जरूरत है। और ऐसी दृढ़ समझ की जरूरत है, फिर कोई कुछ बहकाये पर बहक में न आये, इतनी दृढ़ता के साथ वस्तुस्वरूप को समझने वाले पुरुष को संकट कहाँ होते हैं? आनन्द का उपाय यहाँ है, दृष्टि में है, ज्ञान प्रकाश में है, लोग कुल परम्परा से धर्म का साधन तो करते हैं मगर चित्त में यह बात रखे हुए हैं कि धर्म साधन की बात फोकट समय की है, कभी काम से समय बचे तो थोड़ा धर्म भी कर आयेंगे, मंदिर भी हो आयेंगे। यह बात नहीं आती कि मेरा खास काम है धर्म साधन, जिसके बिना शान्ति नहीं मिल सकती। और फिर इसमें नहीं रहा जाता है तो अन्य काम करने पड़ते हैं। वे है फोकट के काम। करने पड़ते हैं, मगर इस जीवन में मुख्य काम धर्म साधना का है। तत्त्व ज्ञान हो, उसका उपयोग हो, इस विधि से अगर चलेंगे तो संकट क्यों न छूटेंगे? छूटने ही होंगे। तो वस्तु के स्वतंत्र स्वभाव के परिचय की यह महिमा है, इसी कारण निमित्त उपादान के प्रसंग में ये सब बातें लम्बी की जा रही हैं, उसे स्पष्टतया ज्ञान में लिए जाने का यत्न किया जा रहा है।

**प्रश्न-289**

निमित्त नैमित्तिक सम्बंध होने पर भी निमित्त की उपादान में अकिंचित्करता—पदार्थों के जब कोई परिणमन होता है तो वहाँ कोई निमित्त होता ही है, इस बात को सुनकर एक जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि जब निमित्त की सन्निधि अत्यन्त आवश्यक रही तब फिर यह क्यों कहा जा रहा कि निमित्त का उपादान में कुछ भी नहीं गया? निमित्त के साथ औपचारिक सम्बंध भी हो, बाह्य संयोग मात्र सम्बंध भी हो तब भी सम्बंध तो है ही। किसी रूप का सम्बंध कुछ मायने तो रखता है सो इतना सम्बंध तो उपादान में कुछ करता ही होगा, ऐसी एक जिज्ञासा उत्पन्न होती है। समाधान उसका यह है कि निमित्त के असन्निधान में तदनुरूप परिणमन नहीं होता और योग्य उपादान का अनुकूल निमित्त सन्निधान में तदनुरूप परिणमन होता, इतनी बात भर को यदि निमित्त का कुछ करना कहा जाये तो कह लीजिये, परन्तु इससे यह बात नहीं सिद्ध होगी कि निमित्त का द्रव्य, गुण, पर्याय, प्रभाव, प्रदेश आदि कुछ भी उपादान में जाता है। निमित्त के सन्निधान में उपादान विपरिणत होता है सो यह उपादान की कला है कि वह अनुकूल निमित्त को पाकर अपना प्रभाव प्रकट कर लेता है। वस्तु स्वातंत्र्य व निमित्त नैमित्तिक सम्बंध दोनों का निर्णय रखिये। निमित्त नैमित्तिक सम्बंध तो एक ऐसी चीज है जहाँ यह प्रतीत होता है कि निमित्त उपादान में कुछ भी नहीं करता, और तथ्य यह है कि निमित्त उपादान में कुछ नहीं करता, फिर भी निमित्त बिना कार्य होता नहीं। जब उपादान में ही ऐसी कला पडी है कि वह इस प्रकार के निमित्त को पाकर अपने में कार्य बनायेगा तो इससे ही यह साबित हुआ कि निमित्त के अभाव में उस प्रकार का कार्य बन सका। इतने पर भी चूँकि पदार्थ सब स्वतंत्र सत् हैं अतएव सबका अपने आप परिणमन होता है। कोई किसी अन्य पदार्थ में द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, पर्याय, शक्ति, असर कुछ भी नहीं सौंपता है। सर्वत्र उपादान की ही विशेषता है कि वह किस प्रकार का कब कैसे सान्निध्य में किस रूप परिणम जाये? कहीं निमित्त व्यवस्था अटपट नहीं है किरोटी बनती है आटा से और कभी धूल से रोटी बनने लगे। इससे जाहिर है कि निमित्त नैमित्तिक सम्बंध स्पष्ट है। लोग रसोई बनाने के लिए वैसे ही आरम्भ करते हैं, वैसे ही साधन जुटाते हैं और वैसे ही क्रिया करते हैं तो उसका एक नियत सम्बंध रहा ना। तो निमित्त नैमित्तिक सम्बंध है, निमित्त की अनुपस्थिति में उस प्रकार का कार्य नहीं बन सकता, तिस पर भी प्रत्येक वस्तु का स्वातंत्र्य अपने आप में बराबर है। किसी भी द्रव्य की परिणति से, शक्ति से, योग्यता से कोई अन्य परिणमन नहीं करता। निमित्त उपादान के तथ्य के परिज्ञान से मोह के टूटने में बड़ा बल व सहयोग मिलता है। जब वस्तु सर्वथा अपने आपमें स्वतंत्र जंची, किसी का किसी के साथ सम्बंध नहीं प्रतीत हुआ तो इस जीव के मोह सहज सुगम रूप से छूट जाता है। मोह अज्ञान का अँधेरा एक बहुत बड़ी विडम्बना है, जिसमें यथार्थ सूझता नहीं और आकुलतायें बहुत बन जाती हैं, वे सब उपद्रव इस तत्त्वज्ञान से मिट जाया करते हैं।

**प्रश्न-292**

**उपादान शक्ति व निमित्तत्वशक्ति का विश्लेषण**—उपादान में अपनी योग्यता चाहिए और उसके लिए इस प्रकार का निमित्त चाहिए। निमित्त में निमित्त रूप होने की शक्ति है और उपादान में योग्यता है। अब यहाँ दो बातें समझना है—उपादान में उपादान की शक्ति और निमित्त में निमित्त होने की शक्ति। इसका भाव क्या है? तो सुनो। निमित्त में निमित्त होने की शक्ति है, ऐसा जो कुछ कहा गया सो निमित्त होने की शक्ति तो उपचार से कही जायेगी। और निमित्त में स्वयं अपने आपमें जो योग्यता है, जो अपने गुणों की परिपूर्णता है वह उसका यथार्थ है। जैसे एक पुष्ट कुर्सी पर कोई मनुष्य बैठ जाता है तो मनुष्य के बैठने पर वह कुर्सी निमित्त हुई तो क्या यह कहा जायेगा कि कुर्सी में मनुष्य को बैठालने के निमित्त की शक्ति है। कुर्सी में निमित्तत्व शक्ति है। कहते तो हैं ऐसा लोग, मगर वह निमित्त उपादान का जो एक नियत क्रम है, सम्बंध है उसे समझाने के लिए कहते हैं। निमित्त में जैसे कुर्सी में रूप यथार्थ है, रस है, गंध है इसी प्रकार क्या उसमें मनुष्य को बैठालने का निमित्त होने रूप भी कोई गुण पर्याय है। उसमें जो कुछ है सो है। अब इस ढंग से देखते हैं तो निमित्त मालूम होता है, ऐसे तो वह कुर्सी न जाने कितनी बातों का निमित्त है? केवल एक मनुष्य बैठने भर की बात तो नहीं है और फिर मनुष्यों में भी सैकड़ों नाम वाले मनुष्य हैं और उन्हीं सैकड़ों हजारों के बैठने में निमित्त है तो नाम लेकर भी निमित्त शक्ति के भेद बना लो। यह फलानेचंद के बैठालने में निमित्तत्व रखता है, फलाने लाल को बैठालने में निमित्तत्व रखता है। सो तो नहीं। तो निमित्त शक्ति की बात तो औपचारिक है, पर उपादान में जो योग्यता शक्ति है वह वास्तविक है। देखिये—जैसे उस कुर्सी में रूप, रस, गंध, स्पर्श के अविभाग प्रतिच्छेद हैं, हीनाधिकता भी है। हल्का रंग, तेज रंग, हल्का ठंड, तेज ठंड, तो इस प्रकार उसमें रूप, रस आदिक के अविभाग प्रतिच्छेद हैं, यों क्या निमित्त शक्ति के भी अविभाग प्रतिच्छेद होते हैं? नहीं। तब समझना चाहिए कि निमित्तत्व शक्ति औपचारिक है। वह ऐसे पदार्थों के लिए निमित्त हो जाती है, यह बात लेकर उसमें निमित्त शक्ति का उपचार किया है।

**निमित्तत्व शक्ति की प्रतिजीवी धर्मरूपता**—अथवा यों कह लीजिए कि निमित्तत्व शक्ति प्रतिजीवी धर्म है। जिस धर्म के अविभाग प्रतिच्छेद नहीं होते और धर्म नजर आते हैं तो मालूम तो होता है कि इस कुर्सी में निमित्त होने की शक्ति है, कहीं किसी सूख रहे कपड़े में तो नहीं है। तो मालूम होती है निमित्तत्व शक्ति, मगर अविभाग प्रतिच्छेद उसका नहीं है। तो जो धर्म ऐसा है कि अविभाग प्रतिच्छेद से शून्य है, पर धर्म है, इसके माने बिना व्यवस्था नहीं बनती, वह प्रतिजीवी धर्म कहलाता है। और प्रतिजीवी धर्म जो कोई होते हैं वे किसी के सद्भाव रूप होते हैं। जैसे घड़े में कपड़े का नास्तित्व है। मानना तो पड़ेगा। क्या यह कहा जा सकता है कि घड़े में कपड़े का नास्तित्व नहीं है। नहीं है तो अर्थ है कि घड़ा कपड़ा बन गया। तो घड़ा में कपड़े का नास्तित्व है, पर उस नास्तित्व के अविभाग प्रतिच्छेद क्या? अभी घड़े में कपड़े का नास्तित्व कम है, अब अधिक है, ऐसा अविभाग प्रतिच्छेद नहीं है, तब वह प्रतिजीवी धर्म है, लेकिन कपड़े का नास्तित्व घट के अस्तित्व रूप है। यदि किसी अन्य के सद्भाव रूप हो, कुछ हो तो वह अनुजीवी धर्म नहीं है। तो निमित्त में निमित्तत्व शक्ति प्रतिजीवी धर्म मानकर चलें तो अर्थ क्या हुआ कि उपादान में जैसी कला है, उस रूप यहाँ

निमित्तत्व शक्ति है। यहाँ कोई प्रश्न कर सकता है कि निमित्तत्व शक्ति के भी तो अविभाग प्रतिच्छेद समझ में आते हैं।

देखो—कोई तेज गर्म आग हो और उस आग पर रख दो पानी भरी बटलोई तो वह 10 मिनट में तेज गर्म बन जायेगा, और कोई कम गर्म आग है, और उस पर पानी के बर्तन को रखा जाये तो वह 20 मिनट में गर्म हो पायेगा। तो देखो—यह आग किसी पानी को 20 मिनट में गर्म करने का निमित्तपना रख रहा और कोई आग किसी पानी को 10 मिनट में गर्म बना देने का निमित्तपना रख रहा तो निमित्त में निमित्तत्वशक्ति के अविभाग प्रतिच्छेद हो गए ना? ऐसी शंका करना यों युक्त नहीं है कि यह निमित्तत्व शक्ति के आधार पर भेद नहीं है। किन्तु पानी में ही स्वयं ऐसी योग्यता है कि वह वैसा निमित्त पाकर अपना काम करेगा। इस निर्णय पर यह बात समझना होता है। आग जब ज्यादा गर्म है तो आग ही में उष्णता के अविभाग प्रतिच्छेद अधिक हैं, उस समय यदि जल गर्म किया जाये तो वह जल्दी गर्म होता है, और जब आग कम गर्म है तो उसमें गर्मी के अविभाग प्रतिच्छेद कम है तो यह अग्नि में ही बात हुई, तो वह निमित्त की ही विशेषता रही, किन्तु निमित्तत्व शक्ति के अविभाग प्रतिच्छेद कम अधिक नहीं, अथवा वहाँ जल की ही विशेषता है कि वह कितनी गर्म आग हो तो कितनी देर में अथवा कितना जल्दी गर्म हो, यह तो है आग की तीव्रता और मंदता पर विचार करें और कहीं आग उतनी ही है जो किसी जल को जल्दी गर्म कर देती है और ठंडे जल को देर में गर्म कर पाती है, तो यह भी जल की योग्यता पर निर्भर है कि कितना गर्म या ठंडा योग्य जल किस निमित्त को पाकर, कितनी देर में गर्म बन सके, यह बात निमित्त उपादान के बीच यथार्थ है, पर निमित्त में निमित्तत्व शक्ति ढूँढना और उसके अविभाग प्रतिच्छेद ढूँढना ये रूप, रस आदिक शक्तियों की तरह नहीं विदित होते। जैसे किसी मनुष्य का यह घर है तो मनुष्य में जो रूप, रंग, लम्बाई, चौड़ाई है वह तो यथार्थ है, वह मनुष्य में ढूँढने से मिल जायेगी। उस मनुष्य को निरखते हैं तो रूप भी समझ में आयेगा, आकार वगैरह सब ज्ञान में आ जायेगा, पर यह इस घर का मालिक है, यह बात उस मनुष्य में नहीं पायी जाती। उस मनुष्य को सिर से पैर तक निरखने पर भी यह पहचान न हो सकेगी कि यह पक्के मकान वाला आदमी है या कच्ची झोंपड़ी वाला। तो जैसे उस सम्बंध को औपचारिक बात कह दी जाती है ऐसे ही निमित्तत्व शक्ति की बात औपचारिक है। हाँ यहाँ बात कुछ विशेष है उस दृष्टान्त से कि यहाँ केवल नियत सम्बंध है कि कैसा पदार्थ किस निमित्त को पाकर किस रूप परिणमेगा।

### प्रश्न-293

निमित्त शक्ति की औपचारिकता का कारण-यहाँ तक यह बात समझ में आयी कि निमित्तत्व शक्ति काल्पनिक है और निमित्त हो जाने की बात तथ्यभूत है। तो यह शंका होना प्राकृतिक है कि जब कोई पदार्थ निमित्त होता है तो उसमें निमित्तत्व शक्ति को काल्पनिक क्यों कहा गया? निमित्त भी सच है तो उसमें निमित्त होने की शक्ति भी सच होनी चाहिए। बात यह है, अन्तर यों पड़ गया कि किसी भी निमित्त में स्वयं पदार्थ की

ओरसे निमित्तपना नहीं है। जैसे कुर्सी को निरखकर नीचे ऊपर सब कुछ देखकर कोई उसमें निमित्तत्व शक्ति के निर्णय बनायेगा क्या? वह निर्णय बनता है निमित्त होने की विधि निरखकर। अतः कोई पदार्थ न स्वयं निमित्त है और न स्वयं उसमें निमित्तत्व है, चीज है वह, उसका हिसाब लगाया जाता है कि इतनी बलिष्ठ कुर्सी है, अमुक चीज है, इस-इस काम में आ सकती है, यह उसका हिसाब लगाना हुआ। पर जैसे उसमें रूप, रस, गंध, स्पर्श पाये जा रहे हैं, सद्भाव रूप हैं, इसी तरह उसमें निमित्तत्व शक्ति कोई सद्भाव रूप है क्या, सो बात नहीं। तो जब प्रत्येक पदार्थ पर का अकर्ता है तो स्वयं उसमें निमित्तत्व भी नहीं है, देखिये—वह बात तो सत्य है ना कि कोई पदार्थ किसी दूसरे पदार्थ का परिणमन नहीं करता। किसी अन्य पदार्थ के परिणमन रूप से नहीं परिणम जाता। तो अकर्ता हुआ। तो जब निमित्त उपादान का अकर्ता है परमार्थ दृष्टि से, तब फिर उसमें निमित्तत्व शक्ति कैसे पारमार्थिक कहलायेगी, जिसके कि अविभाग प्रतिच्छेद हों। इस कारण जब उपादान किसी को निमित्त करके परिणमता है तो वह निमित्त कहलाता है।

देखिये—इस प्रसंग में बराबर यह बात ज्ञान में आती होगी कि हम समझ तो रहे हैं कि यह बेन्च इतनी पुस्तकों के रखने में निमित्त हो सकती है। समझ रहे हैं आप, पर हिसाब लगाकर समझ रहे हैं, युक्ति और गणित लगाकर समझ रहे हैं। इस बेन्च के रूप, रस, गंध, स्पर्श की तरह निमित्तत्व शक्ति भी पड़ी हुई है और जिसके अविभाग प्रतिच्छेद होते हों सो बात नहीं। कुछ ऐसा भी समझ में आयेगा कि यदि कमजोर बेन्च है तो यह इतनी पुस्तकों के रखने में निमित्त हो सकती, कम पुस्तकों को रखने में निमित्त होगी, ऐसा भी हिसाब लग जाये, इतने पर भी इस बेन्च में रूप, रस आदिक शक्तियों की तरह निमित्तत्व शक्ति सद्भाव रूप हो, सो बात नहीं। उपादान जब स्वयं जिस परिणमन के अयोग्य है तब उस परिणमन में यह निमित्त भी नहीं हो पाता। हाँ इतनी बात अवश्य है कि उपादान निमित्त को पाये बिना विभावरूप परिणम नहीं सकता। यह निमित्त और उपादान में परस्पर किस प्रकार होने का नियम है उसकी बात है, पर निमित्तभूत पदार्थ में रूप आदिक की तरह निमित्तत्व शक्ति नहीं है, यह तो परिणमते हुए द्रव्य की विशेषता है कि वह किस निमित्त को पाकर अपने में किस प्रकार का विभाव बना ले?

**सांकेतिक वाक्यों का भाव**—आज के इस प्रसंग में यह बात दिखाई गई कि निमित्तभूत पदार्थ बिल्कुल पृथक है उपादान से। तब मेरा उससे सम्बंध कुछ नहीं है और इसी कारण उसमें निमित्तत्व शक्ति कोई पारमार्थिक नहीं है, किन्तु जब यह मेल है और ऐसी विज्ञान सिद्ध बात है कि इस प्रकार का पदार्थ उपादान अमुक पदार्थ का निमित्त पाकर अमुक कार्य अपने में करेगा। इसको संक्षेप में कहने के लिए हम निमित्त पदार्थ में निमित्त शब्द से वाक्य बना लेते हैं। कुम्हार ने घड़ा बनाया, जीव ने कर्म बंध किया, कर्म ने सुख दुःख दिया, आदिक कितनी ही बातें हम बहुत जल्दी बोलते हैं और ज्ञानी पुरुष उसका अर्थ यथार्थ समझते हैं अज्ञानी पुरुष उसका अर्थ विपरीत करते हैं। अज्ञानी पुरुष तो जो कहा गया वैसा ही सीधा अर्थ लगाते हैं पर वह सांकेतिक भाषा है। उसमें सीधा अर्थ नहीं बसा। जीव ने कर्म बाँधा, इसका अर्थ यह नहीं कि जीव ने कर्म बाँध लिया, कर्म बंधन रूप जीव परिणम गया। जीव तथा कर्म एक हो गए आदिक। अर्थ वहाँ इतना है कि

जीव के कषाय भाव का निमित्त पाकर जो कर्म रूप न थी ऐसे विस्रसोपचय कार्माण वर्गणा कर्मरूप परिणत हो गई। देखिये, विनती पढ़ते हुए में जब ये शब्द बोले जाते कि अंजन जैसे पापी पुरुषों को हे प्रभो! आपने तार दिया, और विनतियों में कभी तो यह हो जाता कि कर तो रहे महावीर स्वामी की स्तुति, मगर कहते हैं कि हे भगवान! तुमने सीता के अग्नि कुण्ड को जल बना दिया। अब देखिये सीता तो हुई थी महावीर स्वामी के लाखों वर्ष पहले। जब उस समय महावीर स्वामी थे ही नहीं तो अग्नि कुण्ड को जल कैसे बना दिया? लेकिन भक्ति में आकर भक्त ऐसा भी कह डालता है। वहाँ वीर प्रभु कहकर सिद्धार्थ के नन्दन महावीर को न लेना किन्तु वीर जिनेन्द्र का जैसा स्वरूप है सबकी स्तुति हो रही है और फिर वहाँ किसी जिनेन्द्र ने अग्नि को जल बना दिया हो सो बात नहीं है, किन्तु सीता ने जिनेन्द्र देव का ध्यान किया, उससे सीता के परिणाम निर्मल हुए, सीता भक्ति रस में डूब गई, पुण्य का उदय सामने आया, और कुछ निमित्त ऐसा मिल गया कि उसी समय जो देव कहीं जा रहे थे उन्होंने इस धर्मात्मा का संकट टाला। अग्नि जल रूप में हो गई। यह उसका भाव है। मगर इतने लम्बे भाव को संकेत में कहने की यही पद्धति है, इस कारण निमित्त की बात कही जाती है। वस्तुतः प्रत्येक पदार्थ परिपूर्ण स्वतंत्र सत् है।

**निमित्त उपादान के सम्बंध के कुछ निर्णय**—अब तक निमित्त उपादान के सम्बंध में इतनी बातों का परिचय मिला कि उपादान में कोई विभाव कार्य होता है तो वह किसी पर निमित्त के सन्निधान में ही होता है। निमित्त के सन्निधान बिना विभाव परिणमन नहीं होता। दूसरी बात निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध होने पर भी निमित्त का द्रव्य गुण पर्याय प्रभाव कुछ भी उपादान में नहीं जाता। तीसरी बात उपादान में ही स्वयं ऐसी कला है कि वह निमित्त को पाकर अपनी परिणति से अपने में नवीन पर्याय का उत्पाद रूप प्रभाव बना ले। चौथी बात—निमित्त के जो अनेक प्रकार के नाम दिए जाते हैं प्रेरक निमित्त, कारक निमित्त, ज्ञायकनिमित्त आदि, वे दृष्टियों से उनके भेद हैं। उसके मायने यह नहीं है कि प्रेरक निमित्त उपादान में कुछ कार्य करता हो और अन्य निमित्त कम कार्य करता हो, कभी न करता हो। सभी निमित्तों में एक ही सिद्धान्त है कि किसी भी निमित्त का, किसी भी परद्रव्य अन्य द्रव्य में कुछ भी प्रदेश गुण पर्याय नहीं जाता। ऐसी चर्चायें चलते-चलते अभी यह चर्चा की गई थी कि किसी भी प्रकार निमित्त हुआ, तथ्य तो है यह और इसके फल में यह बात सिद्ध होगी कि निमित्त में निमित्तत्व शक्ति है। तो निमित्तत्व शक्ति के सम्बन्ध में यह स्पष्ट किया कि पदार्थ में स्वयं के रूप रस आदिक शक्तियों की तरह निमित्तत्व शक्ति नहीं है। वह तो एक पदार्थ है, पड़ा हुआ है। उपादान में स्वयं यह बात है कि ऐसे पुष्ट निमित्त को पाकर उपादान अपना प्रभाव प्रकट करता है। फिर भी वह निमित्त है। सो निमित्तत्व शक्ति भी माननी तो होगी। तो उस निमित्तत्व शक्ति को उपचार से कह दिया जाता है। परमार्थतः कोई अविभागप्रतिच्छेद वाली निमित्तत्व शक्ति पड़ी हुई हो सो बात नहीं है।

**औपचारिक निमित्तत्व शक्ति का भावार्थ**—कोई इसमें ही सन्तोष कर ले कि चलो औपचारिक निमित्तत्व शक्ति रही, आखिर रही तो। उस निमित्त में औपचारिक निमित्तत्व शक्ति मान लिया तो उसमें कोई हानि नहीं। उत्तर उसका यह है कि हाँ ठीक बात है, मान लीजिए औपचारिक निमित्तत्व शक्ति, कोई हानि नहीं, मगर उसका

अर्थ इतना ही होगा कि अमुक पदार्थ इन कार्यों के लिए निमित्त हो सकता है। इसका अर्थ यह न होगा कि जैसे पदार्थ में ज्ञान दर्शन रूप रस आदिक शक्तियाँ है उसी प्रकार कोई अनुजीवी निमित्तत्व शक्ति है। यह अर्थ न बनेगा। हाँ एक हिसाब की बात युक्ति की बात कि ऐसे पदार्थ ऐसे ऐसे कार्यों में निमित्त होते हैं यह बात जरूर सिद्ध होती है, और औपचारिक एकत्व शक्ति की बात भी यदि कहते हो तो ऐसी निमित्तत्व शक्तियाँ तो अनगिनती माननी पड़ेंगी जिनमें कुछ तो कल्पना में आ जातीं, कुछ कल्पना में नहीं आतीं। जैसे एक दीपक जल रहा रात्रि के समय तो उस जलते हुए दीपक के अवसर में कितनी बातें हो रहीं? घर के लोगों को, महिमानों को वह दीपक सुहा रहा है, चोरों को वह दीपक बुरा लग रहा है। क्योंकि प्रकाश में चोरों की चाल नहीं चल सकती है। वह दीपक किसी को बुरा लग रहा, किसी को अच्छा लग रहा, ऐसी क्या अनेक निमित्तत्व शक्तियाँ हैं? किसी को बुरा लगने रूप शक्ति, किसी को भला लगने रूप निमित्त शक्ति। ऐसी तो काल्पनिक शक्तियाँ अनगिनते मानी जायेंगी। तो वस्तुतः अविभागप्रतिच्छेद वाला, जिसमें कि उत्पाद व्यय होता रहे ऐसी शक्ति कोई वास्तविक निमित्तत्व नाम की नहीं है, किन्तु वह उसका एक हिसाब है, एक विज्ञान है कि ऐसे ऐसे पदार्थ इन पदार्थों के परिणमन में निमित्त होते हैं।

द्रव्य कर्म में निमित्तत्व की विशेषता और वस्तु स्वरूप के मूलसिद्धान्त का अभंग—अब इस निमित्त उपादान के प्रसंग में एक अंतिम चर्चा आ रही है कि बाह्य पदार्थों में निमित्तपना अथवा निमित्तत्व शक्ति नहीं है तो मत रहो लेकिन सभी पदार्थों में यह सिद्धान्त न लगाया जा सकेगा। द्रव्य कर्म में तो निमित्तत्व स्वयं है और इस दृष्टि से बाह्य पदार्थों की अपेक्षा द्रव्य कर्म में कुछ विशेषता है। अमुक अनुभाग और प्रकृति वाला कर्म कितनी डिग्री कषाय के होने में निमित्त है, यह बात वहाँ पायी जाती है। और वहाँ ऐसा नहीं है कि आत्मा कषाय करे तो उस समय में इस कर्म पर निमित्तपने का आरोप किया जाय। अरे वह कर्म तो निमित्त रूप होगा, यह निश्चय बंध के काल में ही हो गया। जब जीव ने कषाय की, कर्म बन्ध हुआ तो उस समय चार प्रकार का बंध हुआ—प्रकृति बंध, स्थिति बंध, प्रदेश बंध और अनुभाग बंध। अनुभाग बंध का क्या अर्थ है? उसमें अनुभाग के अविभागप्रतिच्छेद नियत हो जाते हैं। इतनी डिग्री का फल देने की शक्ति इसमें है, उसी का नाम अनुभाग है। तो जब अनुभाग की बात उसमें बन गई तो वह निमित्त है, यह बात पहिले से ही सिद्ध हो गई। तो द्रव्य कर्म का प्रकृति, स्थिति, अनुभाग का विभाग विपाक काल से पहिले ही हो गया। आज किसी ने कर्म बांधा और अरबों वर्ष बाद उसका फल मिलेगा अरबों वर्ष बाद अनुभाग फलित होगा इस कर्म के उदय के कारण, लेकिन उसके पहिले निमित्त की सारी अवस्था फिट हो गयी। यह इतने अनुभाग वाला है, इतनी स्थिति वाला है, इतने परमाणुपुञ्ज उदय में आयेंगे। सब बात पहिले से बन गई है। ऐसे कुछ अन्य पदार्थों से इस कर्म निमित्त में विशेषता है, लेकिन मूल सिद्धान्त यहाँ भी भंग नहीं होता। कर्म का द्रव्य गुण पर्याय कुछ भी तो जीव में प्रवेश नहीं करता। जीव ही स्वयं ऐसी योग्यता वाला है कि ऐसा कर्मोदय होने पर जीव अमुक अमुक कषाय रूप परिणमे। रही निमित्तत्व शक्ति की बात तो वहाँ भी निमित्तत्व शक्ति औपचारिक है, निमित्त होना औपचारिक नहीं है।



निमित्त की अनौपचारिकता व निमित्त शक्ति की औपचारिकता—जैसे कोई पुरुष कुर्सी पर बैठ गया तो उसके बैठने में कुर्सी निमित्त है, यह कोई औपचारिक बात नहीं है, तथ्य की बात है कि वह कुर्सी का निमित्त पाकर बैठ गया। मगर यह निरखना कि इस कुर्सी में अमुक को बैठाने की निमित्तत्व शक्ति पड़ी है यह शक्ति औपचारिक है। रूप, रस आदिक की तरह उसमें निमित्तत्व शक्ति नहीं पड़ी है। हाँ हिसाब जरूर लग गया है कि इतनी लम्बी चौड़ी पुष्ट कुर्सी बैठने में निमित्त बनती है। इसी प्रकार कर्म बंध में भी जो कुछ बात बनी, अनुभाग बना, स्थिति बनी वह कर्म की चीज कर्म में बंधी और वे कर्म कषाय अनुभाग में निमित्त है, यह भी सिद्ध है, यह कोई उपचार की बात नहीं है, लेकिन उसमें निमित्तत्व शक्ति पड़ी हुई है इसलिए कोई अलग से शक्ति वहाँ अनुजीवी नहीं है, और वैसे तो कोई भी शक्ति बिना परिणामे नहीं रहती। निरन्तर उसका परिणामन होता। रूप शक्ति है तो उसका व्यक्त रूप निरन्तर रहेगा। हरे से पीला हुआ, पीला से लाल हुआ, कुछ भी हुआ, न हुआ, वही रहे, प्रति समय उसमें परिणामन होगा ही। सो यदि ऐसी निमित्तत्व शक्ति है तो क्या उसका निरन्तर परिणामन होता है? क्या होता है? चीज है, खैर जिस विशेषता को लिए जो पदार्थ है वह उस विशेषता रूप में है। तो निमित्तत्व शक्ति कोई पृथकभूत नहीं। हाँ ऐसी ऐसी परिस्थिति वाला, ऐसे अनुभाग वाला कर्म इस प्रकार के कषाय भाव में निमित्त होते हैं यह भी प्राकृतिक व्यवस्था है। जैसे कोई मजबूत कुर्सी बैठने में निमित्त हो सकती है। बस कुर्सी जो है उसका वर्णन है, उसमें निमित्तत्व शक्ति ही नहीं है, किन्तु निमित्त अवश्य है। ऐसे ही अनुभाग सहित भी कर्म है तो वह निमित्त है, उसका सही-सही बड़ा प्ररूपण भी चलता है। इन सब प्रकरणों से हमें इस शिक्षा पर आना है कि हमारी घटना में आश्रयभूत अथवा काल्पनिक या साक्षात् जो भी निमित्त पड़ता है वे सभी के सभी पदार्थ उसके सत्य स्वरूप से भिन्न हैं। मैं केवल अपने आपके असाधारण गुणमय हूँ। अपनी ही चेतना स्वरूप मात्र हूँ और हूँ ना, इस कारण निरन्तर परिणामता रहता हूँ। जैसी योग्यता है उसके अनुसार निरन्तर परिणामता रहता हूँ। अब इस मेरी दुनिया में किसी दूसरे का क्या हस्तक्षेप? किसी दूसरे पदार्थ से मेरा क्या सम्बन्ध? सबका स्वरूप, प्रत्येक का स्वरूप उस प्रत्येक की पूरी दुनिया है। उससे बाहर मेरा कुछ नहीं। यह है वस्तु स्वरूप का स्पष्ट परिचय। जो इस श्रद्धा में आ जायगा उसके संसार के सब संकट टल जायेंगे और जो इस श्रद्धा से च्युत है अतएव बाह्य पदार्थों में अपने लगाव का सम्बंध रखता है वह जीव इस संसार में संकट सहता ही रहेगा।

**स्वरूप परिज्ञान से उपलब्धव्य शिक्षण**—हमको स्वरूप परिचय से यह ही शिक्षा लेनी है कि जैसे कोई धन कमाता है तो किसलिए? खुद खर्च करे, दूसरे के उपकार में लगाये और संतुष्ट रहे, तृप्त रहे, और धन कमाकर रखे और यह ही काम न किया जाय और ममता बढ़ाई जाये कि यह तो बच्चों के लिए है, हमें इसमें कुछ नहीं खर्च करना है, नहीं तो बच्चे लोग दुःख पायेंगे। तो धर्नाजन का इतना श्रम जो किया है उसके केवल कष्ट ही कष्ट रहा फोकट का। यों ही समझियें कि हम धार्मिक ज्ञान करते हैं, ज्ञान किया, श्रम करके वस्तु स्वरूप को जाना, अब जानने के बाद उसको मानें नहीं और उसको अपने आप में घटित न करे, अपने आपमें उसका प्रयोग रूप न दें तो इस ज्ञान के श्रम को फोकट न कहा जायेगा तो इतना तो कहा ही

जायेगा कि इस समय सफल नहीं हुआ। हम अपने आपकी घटना पर विचार करते रहें कि इस प्रसंग में देखो मेरा पर में कुछ नहीं गया, पर का मेरे में कुछ नहीं आया, कैसा खेल बन गया कि यह मैं इस प्रकार के कषायों में लग गया हूँ। पर से मेरा बिगाड़, सुधार, परिणमन कुछ नहीं। मैं ही ऐसी योग्यता में हूँ, मलिनता में हूँ, अज्ञान में हूँ, मैं स्वयं राग इस प्रकार का बनाता हूँ और दुःखी होता हूँ। इस संसार में अपने आपके स्वरूप का सम्यक् बोध, सम्यक् श्रद्धान और स्वरूप में रमण करने का यत्न, यह तो मेरे लिए शरण है और इसके अलावा अन्य कोई भी बात मेरे लिए शरण नहीं है। मोहियों को यह साहस नहीं बन सकता कि चीज जब न्यायी है, छूटी हुई है, छूट जाना है, कुछ मतलब नहीं, कुछ सम्बंध नहीं, तो उसके विषय में उपयोग फंसाये रहना, तृष्णा का रंग रंगे रहना, यह किसके लिए है? इसे छोड़ें। जब भिन्न ही वस्तु है तो एक बार झटके से एकदम अलग होकर अपने को स्वयं केवल निरख तो लें, यह साहस मोही अज्ञानी जनों से नहीं हो सकता।

**आश्रयभूत निमित्त से याथात्म्यपरिचय की उपयोगिता**—किसी भी घटना में, निमित्त के प्रसंग में दो तरह के निर्णय हैं, और दो तरह के निमित्त काम आते हैं, व्यवहार में आते है, एक तो निमित्तभूत वास्तविक और दूसरा आश्रयभूत। यह जीव निमित्त भूत कर्मों को नहीं जानता, न उन पर दृष्टि होती और आश्रयभूत निमित्त पर इसका झुकाव है, दृष्टि है, अपनाते हैं और उसी में ये दुःखी होते हैं। खुद की गलती, खुद की योग्यता और खुद का दुःखी होना, यह अपने आपकी करतूत से चल रहा, और यह उपयोग उस बाह्य पदार्थ पर राग और द्वेष रख रहा। अमुक ने यों किया, अमुक का यों बर्ताव हुआ, अमुक ऐसा परिणाम रखता है, अमुक ऐसी त्रुटि में है, इसने मुझे यह दुःख पैदा किया। अरे बाह्य पदार्थ ने हममें कुछ भी नहीं किया। हम ही स्वयं कल्पनायें करके अपने आप में दुःखी हुए। सुख शान्ति के लिए इस जीव ने अनेक उद्यम किये। धन संग्रह करना, इज्जत बढ़ाना, परिचय बनाना आदिक अनेक तरह के इस जीव ने अपनी शान्ति के लिए उद्यम किए । मगर अपने जीवन में देखो—जब से जन्म हुआ इस भव में, तब से लेकर अब तक इतना उद्यम करने पर भी किसी भी समय वास्तविक शान्ति नहीं मिली। जब बच्चे थे तब बच्चों जैसी कल्पनायें बनाकर दुःखी होते थे, हमें यह चीज नहीं मिली, हमको यह दुःख है, हमारा यह अपमान है, अनेक बातें तब भी गढ़ते रहते थे, दुःखी होते थे और उस समय यह सोचते थे कि देखो यह बड़े है, बाबा है, पिता है, चाचा है, इनसे हम जब पैसा माँगते हैं तब देते हैं, ये लोग हमसे बहुत अच्छे हैं, बहुत सुखी हैं। हमको इनसे पैसा माँगना पड़ता, इनसे आशा करनी पड़ती। ये हमें सुख से, लाड़प्यार से रखे तो इनकी मर्जी है। ये सब बातें क्या बच्चे लोग नहीं जानते? और उनके चित्त में यह बात समायी हुई रहती है कि हमको इतना बड़ा होना चाहिए तब हमारी शान रहेगी। हम जैसे बच्चों को तो ये बड़े लोग जरा-जरा सी बातों में डांट देते, हाथ पकड़कर झकझोर देते, हम पर हुकुम चलाते। हम भी इनकी भाँति बड़े होते तो अच्छा था। बच्चे लोग तो यह सोचते हैं कि ये सुखी होंगे। ये ही बच्चे जब बड़े हो गए तब सोचने लगे कि बचपन अच्छा होता है। यहाँ कितना कष्ट, कितनी चिन्तायें, कितने यहाँ यहाँ के ख्यालात करने पड़ते। बूढ़े हुए तो बुढ़ापे में वही चीज बढ़ती है जिसके बढ़ने का

जिन्दगी में संस्कार बनाया हो। जवानी में अगर तृष्णा का रंग लगा हुआ तो बुढ़ापे में तृष्णा बहुत बढ़ती है। जवानी में ज्ञान का रंग जमा हुआ हो तो बुढ़ापे में ज्ञान का प्रकाश बहुत अधिक फैलता जाता है। जो जवानी में बात चाही हो उसी का रंग बुढ़ापे में फैलता है। फल क्या होता है कि अगर तृष्णा में जवानी व्यतीत की तो बुढ़ापे में तृष्णा बढ़ती है। और सामर्थ्य जब नहीं है तो उसके संकट कई गुने बढ़ते जाते हैं।

जीवन की घटनाओं से उपलभ्य मार्ग—भैया! जिन्दगी की घटनाओं को निरखकर कुछ तो चेतना है। समझना चाहिए कि जिस पद्धति में बहे जा रहे हैं ये लोग, वह पद्धति अंधकार है, विडम्बना है, उसमें शांति का नाम नहीं है। तो इस जीव ने शान्ति के लिए अनेक प्रयत्न कर डाला। इस प्रयत्न में दो चार जीवों को मान लिया कि ये मेरे हैं तो अपना तन, मन, धन, वचन सब कुछ इन चार जीवों के लिए न्योछावर है, ये ही मेरे सब कुछ हैं, और घर के उन चार जीवों के अतिरिक्त अन्य कोई पड़ौसी हो, समाज का हो, देश का हो, कोई हो, ये तो गैर हुए। इनके लिए अगर कुछ लग गया फिर तो उसका हिसाब है, इस पर इतना एहसान है, उनके लिए अगर कुछ शारीरिक श्रम लग गया तो यह एहसान है। गैर लोगों को तो ऐसा फेंका कि ये कुछ चीज नहीं हैं, मगर यह समझें कि यह कितनी बड़ी विडम्बना है, कितना घना अंधकार है कि इसमें स्वयं की बरबादी होती जाती है। तो दो प्रकार के निमित्त है अपने विभावपरिणमन में, कषायपरिणमन में। एक तो साक्षात् निमित्त, दूसरा आश्रयभूत निमित्त। तो ये सब धन सम्पदा वैभव लगे, ये सब आश्रयभूत निमित्त हैं। इनमें राग होता है, तो सामने जो बात मिली, जो कल्पना में आया, बस उसका उपयोग बनाया और राग बढ़ाया। तो बाह्य पदार्थों से हमारा रंच मात्र सम्बंध नहीं है। यह शिक्षा लेना है निमित्त और उपादान के यथार्थ स्वरूप समझने से।

आरोपित निमित्त व वास्तविक निमित्त का विश्लेषण—देखिये—ये बाह्य समागम आरोपित निमित्त कहलाते हैं, क्योंकि इनके साथ नियत सम्बंध नहीं है कि मूर्ति का दर्शन हो तो भाव सुधरे। क्योंकि कोई विधर्मी द्वेषी उस मूर्ति को देखकर द्वेष करता है तो उस मूर्ति का दर्शन करने वाले से सम्बंध तो न रहा कि यह अच्छा भाव पैदा करेगी। दर्शन करने वाले की योग्यता पर बात है। यदि वह इस योग्य है, उसका कुछ भाव स्वरूप है तो मूर्ति का दर्शन करके अपना भाव अच्छा बना लेते हैं। तब मूर्ति आरोपित निमित्त हुई, वास्तविक निमित्त नहीं हुई, इतना विशुद्धभाव होने में। तब वास्तविक निमित्त क्या हुआ? मोहनीय कर्म का क्षयोपशम। इसी प्रकार जब क्रोध, मान आदिक जगते हैं तो वहाँ भी यह बात निरखना है कि जिस जीव को देखकर, जिसकी प्रवृत्ति निरखकर क्रोध जगा है वह आरोपित निमित्त है, वास्तविक निमित्त नहीं है। वास्तविक निमित्त तो क्रोध प्रकृति का उदय है। यह भी निमित्त नैमित्तिक सम्बंध है। कहीं कर्म का द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव मेरे आत्मा में नहीं पहुंचता।

निमित्त उपादान सम्बंधी इन सब परिज्ञानों का प्रयोजन यह किया जाय कि जब पदार्थ प्रति प्रसंग में परस्पर भिन्न हैं तो मैं उनमें अपनायत क्यों करूँ, मैं अपने को केवल देखूँ। मैं केवल विशुद्ध चैतन्य मात्र हूँ

और सत्त्व के कारण निरन्तर परिणमता रहता हूँ। यह मेरे में तथ्य है। इसके आगे हम बढ़ें, राग किया, कल्पना किया कि बस हम स्वयं (अपने आप) फंस गए। तो अपने आपको निरखना अपने कैवल्य स्वरूप में रत रहना बस यही मात्र एक शिक्षा लेना है और इस ही प्रकार का उद्यम करना है, तो इस उद्यम से शान्ति मिलेगी। इसके अतिरिक्त अब तक जितने भी उद्यम कर डाले वे सब धोखा ही रहे। यह जीव जिस कषाय भाव के वश होकर अपना सुख खोकर पर में व्यासक्त होता है, अरे वह कषाय भाव ही जीव का स्व नहीं है, वह तो नैमित्तिक भाव है। यद्यपि हुआ वह जीव में ही, किन्तु जीव के सहज स्वभाव के कारण ही हुआ हो, सो बात नहीं। जैसे दर्पण के सामने जो हाथ आदि पदार्थ आया सो उस हाथ के आकार फैलाव में अनुरूप दर्पण में छाया हुई। यद्यपि वह छाया दर्पण में हुई, फिर भी दर्पण के सहज स्वरूप के कारण नहीं हुई। वह छाया नैमित्तिक है, उसका अन्वय व्यतिरेक हाथ आदि के साथ है जिसका कि सन्निधान पाकर छाया रूप परिणमन हुआ है। दर्पण में तो सहज स्वच्छता है। यों ही अपने में निरखें कि जो कषायभाव उदित हुआ है वह मेरा सहज स्वरूप नहीं है, नैमित्तिक भाव है, अनित्य है, नष्ट होने वाला है, मेरे स्वभाव के विपरीत है, मलिन भाव है, क्लेश का हेतुभूत है। इस कषायभाव से मेरा लगाव नहीं होना चाहिये। मैं तो केवल चैतन्य स्वरूप मात्र हूँ। यों अपने कैवल्य पर उपयोग देने में ही इन सब परिज्ञानों की सफलता है। हमारा कर्तव्य है कि अपने को सत्य समृद्ध शान्त निराकुल रखने के लिये अपने कैवल्य स्वरूप की उपासना करें।

॥अध्यात्मसहस्री प्रवचन द्वितीय भाग समाप्त॥

